गगनाञ्चल

वर्ष 20 अंक 4 अक्टूबर-दिसम्बर 1997
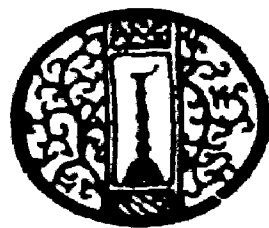
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशक

हिमाचल सोम
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नयी दिल्ली

संपादक
कन्हैयालाल नन्दन

सहयोगी संपादक
अजय कुमार गुप्ता, प्रेम जनमेजय (मानसेवी)

भारतीय सांस्कृतिक संबध परिषद् भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधो एव पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा संपुष्ट करने के उद्देश्य से 1950 मे परिषद् की स्थापना की गयी थी। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद् अन्य गतिविधियो के अतिरिक्त त्रैमासिक पत्रिकाए भी प्रकाशित करती है जो हिंदी (*गगनाञ्चल*), अंग्रेजी (*इंडियन-होराइजन्स, अफ्रीका क्वार्टरली*), अरबी (*सक़ाफ़त-उल-हिंद*), स्पेनश (*पपलेस-दे-ला-इंडिया*), फ्रेच (*रेकौंत्र अवेकलैंद*) और जर्मन (*इंडियन इन डेर जेजन्वार्ट*) भाषाओ में हैं। प्रकाशन सामग्री के लिए संपादक '*गगनाञ्चल*' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए :

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयी दिल्ली-110002

शुल्क दरें

एक अंक	*वार्षिक*	*त्रैवार्षिक*
रु. 25.00	रु. 100.00	रु. 250.00
US$ 10.00	US$ 40.00	US$ 100.00
£4.00	£ 16.00	£40.00

ISSN 0971–1430
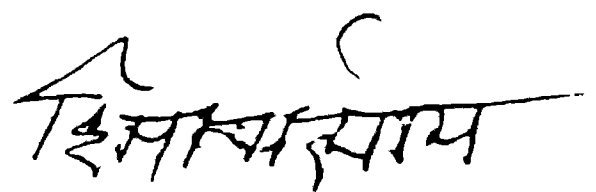
आवरण : जितेंद्र कुमार

मुद्रक : विमल ऑफसेट, 1/11804, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रकाशक की ओर से

मृत्यु जीवन का एक ऐसा सत्य है जिसे हर कोई झुठलाना चाहता है, परन्तु इससे बच नही सकता है। मृत्यु और जीवन को लेकर विद्वानों ने अनेक प्रकार की चर्चाएं की हैं, उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार रखे हैं, परन्तु इस अन्तिम सत्य के बारे में अन्तिम बात कोई नही कह पाया है। इसकी जितनी भी व्याख्याएं की गई हों, परन्तु लगता ऐसा ही है कि जैसे इसके बारे में अब भी कुछ कहना शेष है। गगनाञ्चल अपनी परम्परा के अनुरूप इस शाश्वत विषय पर एक और वैचारिक बिंदु अपने पाठकों के समक्ष रख रहा है। प्रस्तुत अंक मे प्रोफेसर नर्मदा प्रसाद गुप्त का विचारवान लेख 'लोक में मृत्यु' हमारे पाठकों को चिंतन का एक और आयाम देगा, मेरा विश्वास है। इस प्रकार के लेख हमें जीवन के यथार्थ को समझने मे तो सहायता करते ही हैं, अपने लोक जीवन को समझने में भी सार्थक भूमिका निभाते है।

गगनाञ्चल के स्वर्ण जयंती अंक, को सभी ने सराहा है, यह हमारे लिए संतोष का विषय है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में इसकी चर्चा और पाठकों के पत्रों ने हमारे उत्साह में वृद्धि की है। उपराष्ट्रपति श्री कृष्णकांत को जब यह अंक प्रस्तुत किया गया तो अत्यधिक व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने अंक की कुछ कविताओं को तत्काल पढ़ा और उस पर अपनी राय भी व्यक्त की। जैसा कि मैने इस अवसर पर कहा कि, हमारी विकसित होती संस्कृति और कलाएं हमारे इस विश्वास को बढ़ाती हैं कि हम निरंतर चहुंमुखी प्रगति कर रहे हैं। गगनाञ्चल का निरंतर प्रयास है कि इस प्रगति की ओर वह अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सके। इस क्रम में हम अपने सजग पाठकों से यह अपेक्षा भी रखते हैं कि वह अपने पत्रों के द्वारा हमें निरंतर अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराते रहें।

हिमाचल सोम
महानिदेशक

संपादक की ओर से

भारतीय स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती पर प्रकाशित 'गगनाञ्चल' के विशेषांक को जिस तरह से आपकी सराहना मिली है, उससे हमे हमारा श्रम सार्थक होने के सुख की अनुभूति हुई है।
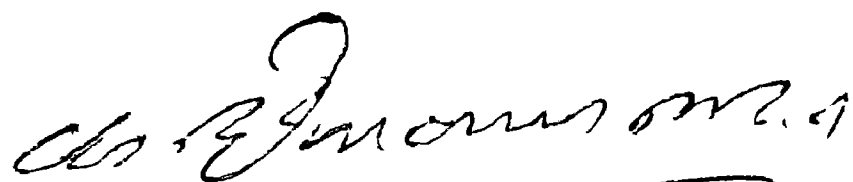
आपके पत्रो तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित गगनाञ्चल के प्रस्तुत विशेषांक पर की गई बेबाक टिप्पणियो ने हमारा उत्साह वर्द्धन किया है और हमें ऐसे आयोजन करते रहने को प्रेरित किया है। इसी उत्साह के परिणामस्वरूप हमने गगनाञ्चल का अप्रैल-जून 1998 अंक आज की हिदी कविता पर केंद्रित करने का निर्णय लिया है। हमे विश्वास है कि आपका सहयोग हमे पूर्ववत् मिलेगा। गगनाञ्चल की प्रकृति के अनुरूप हमारा प्रयत्न रहेगा कि आज की कविता की एक व्यापक तस्वीर आपने सामने रखी जा सके जो पूर्वाग्रहो और दुराग्रहों से मुक्त हो। आज के साहित्यिक माहौल मे साहित्य पर सभी पूर्वाग्रहो दुराग्रहो से मुक्त होकर चर्चा करना काफी कठिन होता जा रहा है, फिर ऐसा करना असंभव नही है.... और यही हमारे प्रयत्न का आधार है।

जब तक यह अंक आपके हाथों मे पहुंचेगा, नए वर्ष की सुनहरी किरणें आपके आगन में इद्रधनुषी रग बिखेर रही होगी। हमारी कामना है कि यह इंद्रधनुष सभी के आंगन में अपनी मुस्कान बिखेरे। आज के जीवन की आपाधापी मे हम लोग प्रकृति के रंगो को अपनी आंखों में सजोना भूल गए हैं, एक उपेक्षा सी प्रकृति के असीम रंगों के प्रति हमारे जीवन में व्याप्त हो गई। इस नए वर्ष में यदि हम प्रकृति को अपने जीवन का महत्वपूर्ण अंग बनाने का संकल्प ले पाएं तो हमारे तनावपूर्ण जीवन की अधिकांश समस्याएं समाप्त हो सकती हैं और जीवन सहज रूप से गतिमान हो सकेगा। गगनाञ्चल परिवार की शुभकामना है कि नव वर्ष आप सभी के जीवन में उल्लास, समृद्धि और शान्ति की त्रिवेणी प्रवाहित करे।

प्रस्तुत अंक में हमने कुछ ऐसे विषयो पर सामग्री देने की कोशिश की है, जिनपर आमतौर पर पढ़ने को नही मिलता। भारतीय भाषाओं से कुछ ऐसी रचनाएं हमने समाहित की हैं, जिनसे भारतीय रचनात्मकता और संस्कृति के व्यापक आयामों का खाका पाठकों के मन में उभरता है। मराठी के कथाकार (स्व०) जी०ए० कुलकर्णी की कथा सर्प को मैंने

इसी परिप्रेक्ष्य में देखा है। इसी व्यापकता में मैने मृत्यु संबंधी सोच की व्याप्ति को पाठको के सामने रखने की कोशिश की है।

बहरहाल अंक अपनी विविधता के साथ आपके सामने हैं। हमे आशा है कि, आप सबको यह अंक भी एक विशेषांक की तरह रुचिकर लगेगा।

कन्हैयालाल नन्दन
(संपादक)

अनुक्रम

कविताएं

साक्षात्कार

व्यंग्य

संस्मरण

व्यक्तित्व

संगीत

आलोचना

समीक्षाएं

गतिविधियां

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

अपनी स्थापना (1950) के समय से ही परिषद् का अपना वृहत् प्रकाशन कार्यक्रम रहा है जो पिछले कुछ वर्षों में काफी बढ़ गया है। परिषद् विभिन्न भाषाओं में 7 त्रैमासिक पत्र निकालता है। *इंडियन होराइजन्स* और *अफ्रीका क्वार्टरली* (अंग्रेजी), *गगनाञ्चल* (हिन्दी), *रेकौंत्र अवेकलैंद* (फ्रेंच), *पपलेस दे ला इंडिया* (स्पेनिश), *सक़ाफ़त-उल-हिंद* (अरबी) और *इंडियन इन डेर जेजनवार्ट* (जर्मन)। इन पत्रो के अतिरिक्त, परिषद् ने अनेक पुस्तके भी प्रकाशित की हैं जिन्हें पाठको ने खूब सराहा है और उनका कई बार पुनर्मुद्रण हो चुका है, सर्वाधिक प्रशंसित पुस्तके निम्न हैं :

	पुस्तक का नाम	लेखक/संपादक	मूल्य
1.	सत्य की खोज	वात्सलाव हावेल	600/–
2.	मुलाकात	"	300/–
3.	इमाम-उल-हिंद (भाग-3) हिन्दी (भाषण व लेख, भाग-3 का देवनागरी संस्करण)	सैयदा सैयदेन हमीद प्रो. मुजीब रिजबी	300/–
4.	इमाम-उल-हिंद (भाग-4), उर्दू (भाषण व लेख, भाग-2 का उर्दू संस्करण)	सैयदा सैयदेन हमीद डॉ. (श्रीमती) सुधा मेंहदी	300/–
5.	इंडियाज मौलाना: अबुल कलाम आजाद (भाग-1) अंग्रेजी (ट्रिब्यूट एंड अप्रेजल्स)	सैयदा सैयदेन हमीद	300/–
6.	इंडियाज मौलाना: अबुल कलाम आजाद (भाग-2) अंग्रेजी (चुनिदा भाषण एवं लेख)	सैयदा सैयदेन हमीद	300/–
7.	साइंस, सोशियलिज्म एंड ह्यूमेनिज्म	अरूणा आसफ अली	35/–
8.	इंडियन पोयट्री टुडे (भाग-3, पुनर्मुद्रण)	केशव मलिक	60/–
9.	पोयट्री फेस्टिवेल इंडिया	श्रीकांत वर्मा	80/–
10.	इंडिया एंड वर्ल्ड लिटरेचर	अभय मौर्यारू	225/–
11.	कंटम्परेरी रिलिवेन्स ऑफ सूफिज्म	एस.एस. हमीद	600/–
12.	*हैंडीक्राफ्ट्स ऑफ इंडिया (पुनर्मुद्रण)	कमलादेवी चट्टोपाध्याय	1000/–
13.	*इंडियन म्यूजिक (पुनर्मुद्रण)	बी.सी. देवा	200/–
14.	माइटियर दैन मैचट	हरीश नारंग	350/–
15.	महात्मा गांधी 125 ईयर्स	बी.आर. नंदा	600/–

16.	नामीबिया-इंडिया-फाइव डिकेड्स ऑफ सालिडेरिटी	टी.जी. रामामूर्ति	500/-
17.	*ग्लिम्सेज ऑफ संस्कृत लिटरेचर	ए.एन.डी. हक्सर	400/-
18.	*दि पेरेनियल ट्री	के. सच्चिदानंद मूर्ति	700/-
19.	*डायरेक्ट्री ऑफ कल्चरल ऑर्गनाइजेश इन इंडिया	के.सी. दत्त	1250/-
20.	ए कैटलॉग ऑफ अरेबिक बुक्स इन आजाद कलैक्शन (भाग-1)	जे.ए. वाजिद एवं एस. मासीहुल हसन	1050/-
21.	ए कैटलॉग ऑफ पर्शियन बुक्स इन आजाद कलैक्शन (भाग-2)	जे.ए. वाजिद एवं एस. मासीहुल हसन	595/-
22.	ए कैटलॉग ऑफ उर्दू बुक्स इन आजाद कलैक्शन (भाग-3)	जे.ए. वाजिद एवं एस. मासीहुल हसन	1020/-
23.	रीडिंग्स फ्राम इंडिया	जी.एन.एस. राघवन	180/-
24.	टूवर्डस ए साउथ एशियन कम्यूनिटी (पेपर बैक)	एल.एल. मेहरोत्रा	230/-
25.	टूवर्ड्स ए साउथ एशियन कम्यूनिटी (हार्ड बाउंड)	"	280/-

नोट : * तारांकित पुस्तकों पर 40 प्रतिशत की विशेष छूट है ।

आर्डर देने के लिए संपर्क करे :
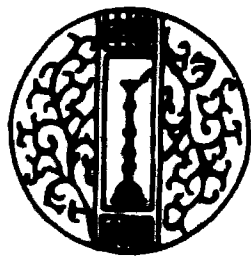
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट नयी दिल्ली-110002
तार : कल्चर टेलेक्स : 3161860, 3166004
फैक्स : 3712639, 3318647
ई मेल : आई सी सी आर जी आई ए एस डी एल 01, वी एस एन एल नेट इन

पाठकों की ओर से

स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं ने अपने विशेषांक प्रकाशित किये हैं किन्तु जिस प्रकार की सर्वागीण सामग्री से भरपूर आपका विशेषांक प्रकाशित हुआ है वैसा या उनके समकक्ष कोई दूसरा मेरे देखने में नही आया। सामग्री सकलन में दृष्टि की व्याप्कता के साथ विगत् पचास वर्षो की साहित्यिक उपलब्धि का समवेत रूप से आकलन *गगनाञ्चल* के इस अंक में वह पठनीय होने के साथ संग्रहणीय भी है। आपका और आपके सहयोगी डॉ० प्रेम जनमेजय और अजय गुप्ता का अध्यवसाय प्रत्येक आलेख के चयन और सम्पादन में लक्षित होता है। मै आपको इस महत्वपूर्ण साहित्य सेवा के लिए बधाई देता हूँ।

'*गगनाञ्चल*' का क्षितिज विस्तृत है। भारत और भारत से बाहर, विदेशों मे भी हिन्दी साहित्य की छवि को यह उजागर करता है। सम्पादक के दायित्व का आपने जिस तत्परता से निर्वाह किया है वह स्तुत्य है। इसी प्रकार का उच्चस्तरीय सामग्री से आप '*गगनाञ्चल*' को निरन्तर प्रकाशित करते रहे।

—डॉ. विजेयन्द्र स्नातक, नई दिल्ली

'*गगनाञ्चल*' की प्रतियां ठीक समय पर मिलती रहती हैं। पठनीय सामग्री की दृष्टि से '*गगनाञ्चल*' की श्रीवृद्धि हुई है और इसका पूरा श्रेय आप पर जाता है। विशेषांक के लिए तो अब समय नही रहा परन्तु भविष्य के किसी और अंक के लिए निश्चय ही लेख भेजना चाहूंगा।

—प्रो. इन्द्रनाथ चौधुरी, लन्दन

'*गगनाञ्चल*' का विशेषांक मिला। वास्तव मे यह अंक एक ग्रंथ है। हर प्रकार की साहित्यिक विधा का। '*गगनाञ्चल*' परिवार को शत-शत बधाईयां।

—घनश्याम रंजन, लखनऊ

आप द्वारा संपादित '*गगनाञ्चल*' का स्वतंत्रता स्वर्ण जयन्ती विशेषांक पढ़ा। आपने अच्छी सामग्री जुटाई है जिससे संपादक का रुझान और उसकी पसंद का परिचय मिलता है। यह सब होते हुए भी दावा नहीं किया जा सकता कि यह सर्वथा सम्पूर्ण समालोचन है। यहां भी एक दिग्भ्रान्त स्थिति है जहां गीत उपेक्षित है। उत्तर आधुनिकता केवल फैशन

के तौर पर गीत को नकारती है अन्यथा इन पचास वर्षो में जितना गीत-साहित्य प्रकाशित हुआ है वह सर्वथा उपेक्षा समीचीन नही है। नयी कविता या छंदमुक्त कविता का गद्यात्मक स्वभाव अनेक नामी गिरामी लोगों को अंधेरे मे ढकेल चुका है। इस विधा का कोई उल्लेखनीय प्रभाव समाज को नयी दिशा दे गया हो ऐसा भी नही लगता। मुश्किल यह है कि जो इस वाम मार्गी स्वच्छन्द धारा से हटकर संकेत करता है उसे पुरातन पंथी का चोगा पहना दिया जाता है। जो साहित्य स्वयं दिशाहीन है वह किसी को क्या दिशा देगा ? जो आज राजनीति में हो रहा है वही सामर्थ्य को अथिव्यक्ति देने वाला विचारक आपको नही मिला। क्या किया जा सकता है, *समरथ को नहि दोष गुंसाई*।

—मधुर शास्त्री, नई दिल्ली

गगनाञ्चल का विशेषांक देखकर मुग्ध हो गया।

—नर्मदाप्रसाद गुप्त, भोपाल

(भारतीय स्वतंत्रता की स्वर्ण जयन्ती पर आयोजित 'गगनाञ्चल' के विशेषांक पर हमें अनेक पाठकों और लेखकों के प्रशंसात्मक पत्र मिले हैं। इन सभी पत्रों को प्रकाशित करने का मन तो होता है लेकिन स्थान नही होता है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ने भी जिस तरह इस विशेषांक का स्वागत किया है, उससे हमारे उत्साह की वृद्धि हुई है। भारत के उपराष्ट्रपति को जब यह अंक भेंट किया गया तो इसके विशिष्ट आयोजन के लिए उन्होने 'गगनाञ्चल' परिवार को बधाई दी। 'गगनाञ्चल' परिवार अपने उन सभी पाठको और लेखको का आभारी है जिन्होंने अपने भावनात्मक सहयोग के द्वारा हमे और उत्साह से कार्य करने को प्रेरित किया। पत्र भेज कर जिन्होंने प्रतिक्रिया दी है वे हमारे आभार के विशेष अधिकारी हैं ।)

— संपादक

वैदिक साहित्य में राष्ट्रीय एकता का स्वरूप

डॉ. खालिद बिन यूसुफ खाँ

भारतीयता की सबसे बडी पहचान एकता का स्वर है । आरंभ से ही प्रयत्न रहे है कि पूरे राष्ट्र का एक ही स्वर सुनाई दे । वेदो मे राष्ट्रीय एकता का यह स्वर किस रूप मे सुनाई देता है, इसे अपने शोधात्मक लेख में चित्रित कर रहे हैं विद्वान रचनाकार डॉ. खालिद बिन यूसुफ खाँ ।

जिस देश की पवित्र भूमि पर कभी 'वधुधैव कुटुम्बकम्' जैसे पवित्र एव उत्ताल विचार उद्भूत हुए हों, वही आज घृणा के कैक्टस भी अंकुरित हो रहे है । धर्म, जाति, वर्ण, भाषा तथा प्रदेश के नाम पर मानवता को खंडित करके देश की एकता को आलोड़ित-विलोडित-सा कर दिया गया है । जिन्होने स्वयं कभी धर्म-ग्रथों का अध्ययन नही किया वे ही राजनीति की अग्नि मे धर्म की आहुति दे रहे हैं तथा उसमें बलि चढ रहा है अबोध मनुष्य । अतः ऐसी विषम परिस्थिति मे यह आवश्यक है कि आर्य धर्म के मौलिक ग्रथ वेदों मे वर्णित सहिष्णुता, सौहार्द, समता तथा एकता के सिद्धान्त से सर्वसाधारण को अवगत कराया जाय तथा मानव-हृदयों के मध्य म्रियमाण प्रेम-सम्बन्धो को पुनरुज्जजीवित किया जाय ।

ऋग्वेद में भारत को एक जैव इकाई के रूप में कल्पित करते हुए कहा गया है कि "जिसकी महिमा से ये बर्फ से ढकी चोटियां, जिसकी महिमा से नदियो से युक्त समुद्र है

1 यस्येमे हिमवन्तो महित्वा-यस्य, समुद्र रसया सहाहु. ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम । ऋ 100, 121, 4

(ऐसा वे) कहते हैं; ये दिशाएं तथा उपदिशाएं जिसकी भुजाए हैं। (उसको छोड़कर) किस देवता का हम हवि से पूजन करें।"[1] यहा ऋषि बर्फ से ढकी चोटियो के लिए 'इमे' अर्थात् 'ये' शब्द का प्रयोग करता है, जिससे प्रतीत होता है कि पर्वत उसके समक्ष ही रहा होगा अन्यथा वह 'इमे' के स्थान पर 'ते' अर्थात 'वे' शब्द का प्रयोग करता। यहां हिमाच्छन्न पर्वत की बात कही गयी है, यह सर्वविदित है कि प्रत्येक पर्वत के शिखर हिम से आच्छादित नही होते है। इस देश के उत्तर में कश्मीर व हिमाचल तथा पूर्व मे नागालैड व सिक्किम आदि के पर्वतो पर ही हिम की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार नदी तथा समुद्र का सगम भी पूर्व मे बगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर तथा दक्षिण मे हिन्द महासागर में ही होता है, अन्यत्र नही।

ऋषि का सहस्रों वर्षो पूर्व इतने विशाल देश की भौगोलिक स्थिति का यथावत् वर्णन करना इस बात का द्योतक है कि उस समय भारत को एक राष्ट्र के रूप मे मान्यता प्राप्त हो चुकी थी।

आज उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम का विवाद भयानक मुख खोले देश के विस्तार को विवादित करता जा रहा है। परन्तु प्रस्तुत मत्र मे दिशाओं को देश की भुजाओ के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए समस्त देश को उसमे आवृत बताया गया है। ऋषि का देश के भौगोलिक परिवेश का एक ही दृष्टि में मापना उसकी दृष्टि की व्यापकता को प्रकट करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो अखिल भारतवर्ष एकत्व मे समर्पित है।

वर्तमान परिस्थिति मे देश को अनेक प्रकार से विभाजित करने का प्रयास किया जा रहा है। इसी प्रसग मे देश को दिशाओ के आधार पर विभाजित करके एक प्रदेश के व्यक्ति को दूसरे प्रदेश में प्रवेश से रोकने का प्रयास भी किया जा रहा है। परन्तु वैदिक ऋषि इसके विपरीत कामना करता है कि वह देश की समस्त दिशाओ में सुखपूर्वक विचरण कर सके तथा इस देश मे उसका पतन न हो।[2]

वाजसनेयि संहिता मे कहा गया है कि जो सब प्राणियो को अपनी आत्मा मे और अपनी आत्मा को सब प्राणियो में देखता है, वह घृणा नही करता।[3] घृणा परत्व की भावना पर आधारित होती है। जहां स्व तथा पर की भावना कार्यरत होती है वहां प्रेम के अंकुर प्रस्फुटित नही होते। अत: ऋषि की मान्यता है कि 'स्व' तथा 'पर' की भित्ति को धराशायी करके ही आत्मिक सबधो को स्थापित किया जा सकता है। ऐसे ही संबध मनुष्य तथा देश को एकता के सूत्र मे बांधने में सक्षम होते हैं। कुछ कट्टरपथी लोग धर्म के नाम पर

---

2 यास्तो प्राची प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद याश्रपश्चात्।
स्योनास्यता महय चरते भवन्तु मा निपप्त भुवने शिश्रियाण॰॥ अर्थव 12-1-31

3 यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मान ततो न विजुगुप्सते॥ वा स. 40/6

इसकी धर्मनिरपेक्षता पर यदा-कदा कुठाराघात करते रहते हैं। वस्तुत: वे संकीर्णता से ऊपर उठकर सबको धारण करने वाले धर्म की परिभाषा से भी अनभिज्ञ है।[4] इसे उनके वैचारिक स्तर की हीनता का दुष्परिणाम कहा जा सकता है, क्योकि अथर्ववेद ने आज से सहस्त्रों वर्षो पूर्व भारत को एक धर्मनिरपेक्ष देश के रुप मे कल्पित करते हुए कहा था कि यह पृथ्वी स्थानानुसार विभिन्न धर्म वाले तथा विभिन्न भाषा बोलने वाले मनुष्यो को उसी प्रकार धारण करती है जैसे एक ही सदन में कनिष्ठ, ज्येष्ठ विभिन्न स्त्री-पुरुष निवास करते हो।[5] राष्ट्रीय एकता का सुस्पष्ट शब्दो मे वर्णन करने वाला उक्त मत्र आधुनिक समय मे प्रासगिक एव अन्य देशो के लिए प्रेरणा का स्त्रोत हो सकता है।

आधुनिक युग मे जाति-प्रथा एक गभीर समस्या के रुप मे इस देश मे पल्लवित हो रही है। इसका आरम्भ कब कैसे हुआ इस विषय मे मतभेद है। सेनार्ट[6] का विचार है कि जब आर्य भारत आये तो उनसे एक संकर जाति बनी जो क्रमशः जाति-प्रथा के रुप मे विकसित हुई। अबे दुबोइस[7] के मत मे जाति-प्रथा के लिए स्मृतिकार अथवा ब्राह्मण उत्तरदायी है। उनका विचार है यह ब्राह्मणो द्वारा प्रयुक्त एक चतुर युक्ति थी जिसका प्रयोजन था उनके वर्चस्व की सुरक्षा।

उपर्युक्त समस्त मत का खण्डन करते हुए ऋग्वेद मे कहा गया है कि 'हे अग्नि ! तुम सबको समान देखने वाले, सर्वव्यापी तथा स्वामी हो। युद्ध के अवसर पर हम तम्हे आहूत करते हैं।'[8] इसी प्रकार उषा के विषय मे कहा गया है कि "इस भांति चमकती हुई यह महान उषा देवताओ तथा मनुष्यो मे अन्तर रखे बिना सुखकारी दर्शन के हेतु सभी को प्राप्त होती है। पाप-रहित शरीर से बढती हुई भास्वर उषा छोटे अथवा बडे किसी से भी नही हटती।"[9] यहा उषा की विशालतम दृष्टि का आभास होता है। उसकी दृष्टि मे देवता तथा मनुष्य समान हैं। यह भेदभाव नही करती। यदि देवता तथा मनुष्य समान है तो फिर मनुष्य एव मनुष्य असमान कैसे हुए ?

विद्वानों की यह मान्यता कि आर्य बहिर्देश से आये थे तथा उन्होंने भारत के मूल निवासियो को अनार्य कहकर उनसे घृणा एवं इसी घृणा के आधार पर जाति अथवा वर्ण-भेद अस्तित्व में आए; पूर्णतः असगत है। इसके उत्तर मे ऋषि स्वय कहता है कि "हे

---

4 यतोऽभ्युदय नि श्रेयस सिद्धि सधर्म सोमदेव सूरि, नीतिराक्यामृत 1/ तथा धरित लोकान् ध्रियते पूण्यात्मभि इति वा ॥

5 जन विभ्रति बहुधा विवाचन नानाधर्माण पृथिवी यथौकसम।
सहस्त्र धारा द्रविणस्य मे दुहा ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ अर्थव 12-1-45

6 जे एच हटन, भारत मे जाति-प्रथा, पृ 162

7 वही

8 पुरुत्रहि सदृडऽसि विशो विश्वा अनुप्रभु.।
समस्तु त्वा ह्वामहे ऋ 8, 43, 21

9 ऋ 1, 124, 6

धनी इद्र ! जो हमारा वध करना एवं हमें वशीभूत करना चाहता है उसके वज्र को तुम छिपा दो, वह चाहे दास हो अथवा आर्य, यदि वह जीतना चाहता है तो उससे घातक शस्त्र को पृथक् कर दो ।"[10] इस मत्र से स्पष्ट हो जाता है कि आर्य तथा अनार्य पतित है तो वह भी देवताओ द्वारा मण्डित होता है । देवता केवल उत्तम अथवा अधम कार्मो के आधार पर मनुष्यों को क्रमशः पुरस्कृत अथवा दण्डित करते है ।"[11]

परवर्ती साहित्य ने ऋग्वेद के 'पुरुष-सूक्त' मे वर्णित उस मत्र को, जिसमे समाज को एक पुरुष के रूप मे कल्पित कर उसके विभिन्न अगो-प्रत्यगो का वर्णन किया है, को जाति-प्रथा का आधार माना है । उक्त मत्र मे कहा गया है कि विराट् पुरुष का मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, जघाएं वैश्य तथा चरण शुद्र हुए ।[12] वस्तुतः यहां विभाजन कर्म की दृष्टि से किया गया है । अध्ययन का कार्य करने वाला ब्राह्मण, रक्षा करने वाला क्षत्रिय, आर्थिक ढांचा वहन करने वाला वैश्य तथा सेवा इत्यादि का कार्य करने वाला शुद्र हुआ ।

यदि प्रस्तुत विश्लेषण को अस्वीकार भी कर दिया जाए तो यह कैसे कहा जा सकता है कि एक ही शरीर का अमुक अग महत्त्वपूर्ण है तथा अमुख गौण । यदि 'पुरुष' एक ही था तो उसका मुख भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि उसके चरण । अतः इस दृष्टि से भी समस्त मनुष्य समान है ।

वैदिक ऋषि केवल व्यक्तिगत सुख-शान्ति के लिए ही प्रयत्नशील नही रहता अपितु वह समस्त समाज के लिए अभ्युदय की प्रार्थना करते हुए कहता है कि "हमारे ब्राह्मणो को प्रकाशित करो, क्षत्रियो को प्रकाशित करो, वैश्यो को प्रकाशित करो, शूद्रों को प्रकाशित करो तथा प्रकाश से मुझे प्रकाशित करो ।"[13]

ऋषि 'स्व' की सकीर्ण भावना से ऊपर ऊठकर समाज के व्युत्पत्तिगत अर्थ को सार्थक करता है । समाज शब्द सम उपसर्गपूर्वक अज् धातु मे धञ् प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है । अज धातु चलने के अर्थ मे प्रयुक्त होती है । इस प्रकार समाज का शाब्दिक अर्थ हुआ—'साथ चलना' । ऋषि की चेष्टा सबको एक साथ लेकर चलने की है । वह समस्त संसार को एक नीड मानते हुए संदेश देता है कि साथ चलो, साथ बोलो, सबका मन एक-सा हो । यह स्पष्ट है कि जब सबका मन एक-सा होगा तब कौन किससे घृणा कर सकता है ?

---

10 अन्तर्यच्छ जिघासतो वज्रमिन्द्राभिदासत ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ॥ ऋ 10, 102, 3

11 ऋ 8, 46, 19

12 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्य कृतः ।
उरू तदस्य युद्वैश्यः पद्भया शूद्रो अजायत । ऋ 10, 90, 12

13 रुच नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच राजसु नस्कृधि ।
रूच विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ वा स 18/48

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ॥"[14]

देश को सुखमय बनाने के षड् हेतुओं का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि सत्य ऋत, दीक्षा, उग्र, तप ब्रह्म तथा यज्ञ ये पृथिवी को धारण करने वाले तत्त्व होते है ।[15] अर्थात् जब तक व्यक्ति में सत्य, शाश्वत, नियम, आत्मसंयम, तपस्या, सर्वोच्च सत्ता मे आस्था तथा त्याग की भावना नहीं होगी तब तक वह देश की एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखने में समर्थ नही हो सकता । इन गुणो से युक्त समाज ही राष्ट्र को सशक्त बना सकता है तथा इनसे रहित होकर राष्ट्रीय एकता का स्वप्न दिवास्वप्न मात्र बनकर रह जायेगा । जब तक हमारे व्यक्तित्व में अन्य मनुष्यों को समाविष्ट करने की क्षमता नही होगी, जब तक हम अपने अन्तस्तम से संयुक्त नही होगे, जब तक एक ही परमात्मा का सबमें वास नही मानेंगे तब तक न तो वास्तविक राष्ट्रीय एकता उत्पन्न हो सकती है तथा न ही सच्ची देश-भक्ति । जिस प्रकार कैंसर का यथा समय उपचार न किया जाय तो वह समूचे शरीर में फैलकर मनुष्य के प्राण ले लेता है उसी प्रकार यदि धार्मिक असहिष्णुता, जातीय द्वेष, भाषायी वैमनस्य तथा प्रादेशिक घृणा आदि के कैंसर का समय रहते उपचार नही किया गया तो यह देश की एकता को जर्जर बना सकता है । इस देश की आत्मा 'अनेकता में एकता' के सिद्धान्त में ही निवास करती है । यदि उसे खण्डित करने का प्रयास किया गया तो यह आत्मा भी देशरूपी शरीर से पलायन कर जायेगी । अतः यह आवश्यक है कि भारतवर्ष की अमूल्य साहित्यिक निधि के प्रशस्त विचारों के प्रकाश से देश का कण-कण आलोकित किया जाय । इसी संदर्भ मे आर्ष चेतना से उद्भुत उत्कृष्ट व पवित्र विचारों का उल्लेख उपादेय है । अथर्ववेद के सौमनस्य सूक्त[16] में कहा गया है कि हे विवाद करने वाले मनुष्यों ! तुम लोगों को समान हृदय वाला, समान मत वाला तथा द्वेष से रहित बनाता हूं । एक-दूसरे से उसी प्रकार प्रेम करो जैसे गाय बछड़े से करती है । पुत्र पिता का आज्ञापालक हो, माता एक मन वाली हो, पत्नी पति के लिए कल्याणकारी वाणी बोले । भाई भाई से तथा बहन बहन से द्वेष न करे । श्रेष्ठ गुणों से युक्त, समान चित्त वाले, एक साथ साधना करते हुए, कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुए तुम लोग अलग होवो । तुम लोगों की पानीशाला एक हो, भोजन एक साथ हो तथा प्रत्येक क्षण तुम लोगों का मन एक साथ रहे । □

---

14 ऋ 10, 191, 2

15 सत्य बृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति ।
स नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोक पृथिवी नः कृणोतु ॥ अर्थव. 12, 1, 1

16. अथर्ववेद, 3, 30, 1-6

संस्कृति का अर्थशास्त्र

कार्त्तिकेय कोहली

"अगर अपनी संस्कृति मे व्याप्त अस्मिता की रक्षा नही की गई तो सांस्कृतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता भी नही बचेगी। सांस्कृतिक स्वतंत्रता आर्थिक स्वतत्रता का द्वारपाल है—आर्थिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक स्वतंत्रता मे निहित है—यही है संस्कृति का अर्थशास्त्र।"

विद्यार्थी जीवन में अर्थशास्त्र के बुनियादी नियमो को पढने वाला लगभग हर व्यक्ति यह जानता है कि आधुनिक मानव समाज की आर्थिक क्रिया उसी क्षण आरंभ हो जाती है जब वह शारीरिक और मानसिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये विभिन्न वस्तुओ और सेवाओ का उत्पादन आरभ करता है। इस सबंध मे यह तथ्य विचारणीय है कि सूक्ष्म 'विचार' से स्थूल 'वस्तु' में रूपांतर की प्रक्रिया बहुत जटिल है और इसलिए शायद यह विरले ही सभव हो कि मनुष्य के 'विचार' या 'इच्छा' अपने मूल रूप मे, किसी वस्तु अथवा सेवा के रूप मे साकार हों। परतु इस तथ्य को भी नकारा नही जा सकता कि वस्तुओं और सेवाओ का निर्माण अथवा उत्पादन मूलतः मनुष्य की सूक्ष्म 'आवश्यकताओं' की स्थूल अभिव्यक्ति ही है। शायद यही कारण है कि मानव समाज के प्रत्येक घटक-देश, भूखंड शहर और गॉव ने अपनी अलग सास्कृतिक, धार्मिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक भिन्नताओं के कारण विविध वस्तुओ का निर्माण किया है जो उनके समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति करती हैं। समय के साथ यह वस्तुओ उस समाज के जीवन मूल्यों मे रच-बस जाती हैं और उसकी संस्कृति का भाग बन जाती हैं। दूसरे शब्दों

में, किसी भी उत्पादित, निर्मित वस्तुओ का गहरा संबंध उसकी संस्कृति से होता है ।

इस परिप्रेक्ष्य में यह समझना कठिन नही है कि आजकल विभिन्न अतर्राष्ट्रीय कंपनियो का भारत में आगमन क्यों भारत की सास्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक ढॉचे और जीवन मूल्यो के लिए खतरे की घंटी माना जा रहा है । परंतु इस "बेसिर पैर के डर" के विरुद्ध कई लोगो का मानना है कि 'भारतीयता' इतनी उथली वस्तु नही है जो कि कुछ विदेशी कंपनियो द्वारा आलू के चिप्स और पेय सामग्री बेचने से ख़तरे मे पड जाये ।

इतिहासकार हमें सदा बताते रहे है (और शायद यह उन कुछ दुर्लभ तथ्यो मे से है जिन पर विभिन्न विचारधाराओ के इतिहासकारों मे कोई मदभेद नही है ।) कि अतीत मे भारत कभी भी 'बद' देश नही रहा । भारतीयो का विदेशो मे और विदेशियो का भारत मे आवागमन प्राचीन काल से ही रहा है । भारत का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ा लंबा इतिहास है, और अन्य देशों से ज्ञान-विज्ञान, कला-सस्कृति आदि का आदान-प्रदान भी सदा ही रहा है । ऐसे मे प्रश्न यह उठता है कि आजकल ऐसा कुछ नया घट रहा है जो पहले कभी नही हुआ ? क्या विदेश-व्यापार के संबंध में कोई ऐसी नयी प्रक्रिया आरभ हुई है जो अभूतपूर्व है ? आखिर क्यों भारतीय अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, चितक, बुद्धिजीवी और सामान्य जन इतने उद्वेलित है ?

सामान्यतः किसी भी वस्तु या सेवा का उत्पादन मनुष्य या तो अपने उपयोग के लिए करता है या फिर बाजार के लिए अक्सर घरेलू उपयोग के लिए उत्पादित वस्तु का स्वरुप बाज़ार के लिए उत्पादित वस्तु के स्वरूप से भिन्न होता है, चाहे दोनो वस्तुएँ मनुष्य की एक ही आवश्यकता को पूरा करती हो । मुख्यतः यह अंतर इसलिये उत्पन्न होता है क्योंकि 'बाजार' के लिये उत्पादन तभी संभव है जब उस वस्तु का क्रय-विक्रय सुविधाजनक हो । विशेषतः जब किसी 'आवश्यकता' की पूर्ति के लिये घरेलू और बाजारी वस्तुएँ दोनों उपलब्ध हो, तो उपभोक्ता घरेलू वस्तुओ को छोड़कर बाजार की ओर भी जाएगा जब उसे बाजार से खरीदना सरल और सुविधाजनक और घर में उस वस्तु का उत्पादन खर्चीला और झंझट लगे । (यहाँ 'खर्च' रुपये या समय दोनो दृष्टियो से मापा जा सकता है) । उदाहरणतः अगर हम मनोरंजन सामग्री को ले तो पायेगे कि आदिम युग से चले आ रहे मनोरंजन के साधन, गीत-सगीत, कथा-कहानी, खेल-व्यायाम इत्यादि आज विभिन्न रूपो मे हमारे सामने आते हैं जबकि उनका मूल तत्त्व एक ही है । आज शादी-विवाह, व्रत-त्यौहार पर गाये जाने वाले नितात घरेलू, लोकगीत भी तेजी से बाजार की परिधि मे कैसेट के रूप में आ रहे है, क्योंकि कैसेट का क्रय-विक्रय, मधुर कंठ के किसी गायक की तुलना में कही अधिक सरल है । नाटक-नौटंकी की तुलना मे फिल्म, टी०वी० और वीडियो अधिक लोकप्रिय हैं क्योंकि वे बाज़ार में अधिक सरलता से उपलब्ध हैं । जैसे-जैसे जीवन की व्यस्तता बढ़ती है और लोगो की क्रय शक्ति में वृद्धि

होती है, मनुष्य की अधिक से अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति बाजार से होने लगती है। अतीत में जिन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन घर की परिधि में सिमटा था, वह खुले बाज़ार का अंग बन जाती है, फलस्वरूप बाजार का विस्तार होता है। परंतु 'बाज़ार विस्तार' की यह प्रक्रिया इतनी सरल नही है। बाज़ार को ध्यान में रखने वाले उत्पादक इस प्रतीक्षा में नही बैठा रहता कि लोग अपनी 'आवश्यकता' उसे बताएँ और वह उसके अनुरूप वस्तु का निर्माण करे। आमतौर पर उत्पादक स्वयं ही हमारी 'आवश्यकताओ' को वस्तुओ के रूप मे परिभाषित करने लगता है और धीरे-धीरे वह हमारी 'आवश्यकताओ' का निर्माण आरंभ कर देता है। विभिन्न संचार माध्यमो का प्रयोग कर वह हमे आभास कराता है कि उसके उत्पाद के उपयोग के अभाव में हमारा जीवन व्यर्थ है। उसकी सहायता से हमे यह परम ज्ञान प्राप्त होता है कि हमारी त्वचा कितनी खुरदुरी है और उसका खुरदुरापन दूर करना हमारे जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए। इस ज्ञान मे और वृद्धि होती है जब हमें पता चलता है कि इस पहाड़ जैसी समस्या का निदान फला-फलां क्रीम या साबुन है। हम परम आनंदमय हो बाज़ार की ओर भागते हैं और फटाफट इस क्रीम या साबुन को खरीद लाते हैं। हमारे ज्ञानकोष की वृद्धि यही तक सीमित नही रह जाती अचानक हमें बोध होता है कि अगर हमारी उम्र चालीस पार कर चुकी है और पड़ोस में रहने वाला लड़का हमें आंटी या अंकल कह कर पुकारता है तो यह कितनी लज्जास्पद स्थिति है। परंतु इससे पहले की असहाय व्यक्ति चुल्लू भर पानी मे डूब मरने की सोचे उत्पादक हमें सूचित करता है कि फला हेयर-डाई हमें घृणित बुढ़ापे से छुटकारा दिलाने के लिये रक्षा कवच के रूप में उपलब्ध है। हम चंद सिक्के बाज़ार मे फेक अपनी गरिमा पुनः प्राप्त कर सकते है। कई बार अचानक हमे अपना घर बहुत 'गंदा' दिखने लगता है और हम इस भय डूब जाते है कि हमारा सामाजिक बहिष्कार किसी भी क्षण आरंभ हो सकता है। घर में पडी झाडू 'पूरी सफाई' करने मे अचानक अक्षम हो जाती है और हम फटाफट बाज़ार जा नया वैक्यूम क्लीनर ले आते है जो 'सचमुच की सफाई' करता है। जैसे-जैसे अधिक से अधिक उपभोक्ता इस 'जानकारी' के शिकार होते जाते है, उपभोक्ता सामग्री के बाज़ार का विस्तार होता जाता है।

परंतु बाज़ार विस्तार की यह डगर अनेक समस्याओं से भरी है। बाज़ार विस्तार और नये उत्पादनों की बिक्री के लिये यह आवश्यक है कि नित नये ग्राहक इन उत्पादो को अपनाते जायें और/अथवा पुराने ग्राहक इन उत्पादो की खपत निरंतर बढ़ाते जाये। उत्पादकों के दुर्भाग्य से देर सवेर इस चक्र की गति धीमी पडने लगती है और उत्पादक के समक्ष 'छोटे' बाज़ार की समस्या उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति मे उत्पादक अपने मूल कार्य क्षेत्र के बाहर, नये और बड़े बाज़ार खोजने लगता है। यहा नया बाज़ार एक नया गाँव, नगर, प्रांत, देश या महाद्वीप हो सकता है। पर नये बाज़ार में पहुँचने के लिये और

पहुँचने के बाद उसे एक नये राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक ढाँचे में अपनी पैठ बनानी पड़ती है, पर शायद बाज़ार विस्तार की सबसे बडी चुनौती है नये उपभोक्ता को जिसकी रुचि-अभिरुचि, उसके अपने समाज और सास्कृतिक विरासत के अनुरूप है (और उत्पादक के मूल बाज़ार के भिन्न) यह अहसास कराना कि उसे भी इस 'नई' वस्तु की 'आवश्यकता' है। आमतौर पर यह प्रक्रिया उतनी अधिक कठिन होती जाती है जितनी अधिक सांस्कृतिक भिन्नता उत्पादक के मूल समाज और नये समाज मे हो। अगर अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण किसी देश का ग्राहक 'नई' वस्तु की आवश्यकता ही महसूस नही करता तो वह बाजार उस वस्तु या सेवा के लिये 'बंद' बाजार है। ऐसी स्थिति मे उत्पादक के सामने सामान्यतः दो रास्ते खुले होते हैं। पहला वह विस्तार से अपने नये उपभोक्ताओ की रुचि-अरुचि का अध्ययन करे, ऐसे नये उत्पादो की रचना करे जो उपभोक्ता की रूचि का हो और नये बाज़ार मे पहले से उपलब्ध उत्पादनो से भिन्न हो अथवा, दूसरा - वह नये बाज़ार के उपभोक्ता की रुचि मे ऐसा बदलाव ला सके, जिससे उसका उत्पादन नये बाज़ार में भी उतनी सरलता से ग्राह्य हो जितना वह अपने मूल बाज़ार में था।

भारत की वर्तमान परिस्थितियों को देखकर यह समझ पाना कठिन नही है कि विदेशी उत्पादक सामान्यतः, पहले की तुलना मे दूसरा मार्ग ही चुनते हैं। उनके लिये पुराने उत्पाद के लिए नया बाज़ार बनाना, एक पुराने बाज़ार के लिये नये उत्पाद बनाने की तुलना में अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। इस तथ्य को समझने के लिये आइए एक काल्पनिक स्थिति लें। मान लीजिये कि नये बाज़ार मे, सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कारणो से लोग 'चॉकलेट' नामक किसी भी वस्तु मे अनभिज्ञ हैं। ऐसे मे यदि कोई विदेशी उत्पादक चॉकलेट लेकर बाजार में उतरता है, तो वह उपभोक्ता को कुछ नया देता है। पर इस बाज़ार मे 'मिठाई' नामक वस्तु पहले से उपलब्ध है जो कि उपभोक्ता की लगभग वही 'आवश्यकता' पूरी करती है जिसकी पूर्ति का दावा चॉकलेट उत्पादक कर रहा है। ऐसी स्थिति मे चॉकलेट उत्पादक चाहे न चाहे उसकी प्रतिस्पर्धा मिठाई उत्पादकों से अवश्यम्भावी है परतु यह प्रतिस्पर्धा दो मिठाई उत्पादकों की प्रतिस्पर्धा से भिन्न प्रकार की और भिन्न धरातल पर होगी। चॉकलेट के बाजार विस्तार के लिये विदेशी उत्पादक दो रास्ते अपना सकता है। पहला रास्ता है - दूसरे उत्पाद की तुलना में अपने उत्पाद की उत्कृष्टता स्थापित करना। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वह चाहे कोई भी हथकंडा अपना सकता है। संभव, है कि वह अपने ग्राहकों को यह समझाने के प्रयत्न करे कि चॉकलेट मिठाई से बेहतर है क्योंकि चॉकलेट लबे समय तक खराब नही होती और मिठाई जल्दी खराब होने वाली वस्तु है; या फिर कि मिठाई खुली बिकती है और उसमे हानिकारक कीटाणु हो सकते हैं जबकि चॉकलेट 'आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक' से तैयार

की जाती है इसलिये कीटाणु रहित और पूर्णतः सुरक्षित है; अथवा चॉकलेट उत्पादक अपने उपभोक्ता को इस बात का कायल कर सकता है कि चॉकलेट 'साहब लोगो' के खाने की वस्तु है और मिठाई गंवारों के लिये है। उपभोक्ता को यह भी समझाया जा सकता है कि चॉकलेट खाने-खिलाने पर उसे आधुनिक नये जमाने का व्यक्ति माना जायेगा और मिठाई खाने-खिलाने पर उसे दकियानूस।

परंतु हर समय और हर देश मे केवल इस तुलनात्मक अध्ययन से ही नये उत्पादक का लाभ होता हो ऐसा नही है, कुछ परिस्थितियो मे उसकी सफलता इस बात पर अधिक निर्भर करती है कि वह अपने उत्पाद की 'नवीनता' स्थापित करने में कितना सक्षम है, उपभोक्ता की दृष्टि मे उसका उत्पाद कितना दुर्लभ और अतुलनीय है। अर्थात् वह अपने नये उपभोक्ता के मन मे अपने उत्पाद के प्रति कितना कौतुहल, कितना आकर्षण पैदा कर सकता है। उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह कदापि नही है कि सभी उपभोक्ता एक साथ किसी वस्तु की ओर आकर्षित हो जायेंगे। परंतु लगभग हर देश काल मे समाज का एक वर्ग ऐसा होता है जो ऐतिहासिक कारणो से सामाजिक और सांस्कृतिक धरातल पर अपनी संस्कृति और उससे जुड़े उत्पादों की तुलना मे विदेशी संस्कृति और उत्पादो को अधिक सुगमता से ग्रहण कर सकता है या कर सकने का ढोंग करता है। विदेशी उत्पादक अपने नये बाज़ार मे सबसे पहले इसी वर्ग को आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि, विदेशी उत्पादक अपने बाज़ार विस्तार हेतु ग्राहक की रुचि अपने माल के अनुरूप बदलने का प्रयत्न करता है और रुचि परिवर्तन की यह प्रक्रिया आमतौर पर उत्पाद की 'नवीनता' पर और कुछ परिस्थितियों मे 'तुलनात्मक अध्ययन' पर आधारित होती है। इस युक्ति का मूल कारण है कि विदेशी उत्पादक जहाँ तक हो सके प्रतिस्पर्धा से बचना चाहता है (अपने मूल बाचार से नये बाजार की ओर आने का प्रमुख कारण भी वहाँ अत्यधिक उत्पादन के कारण अत्यधिक प्रतिस्पर्धा की स्थिति से बचना ही था)। प्रतिस्पर्धा जितनी अधिक होगी उत्पादक का लाभ कम होगा क्योंकि हर उत्पादक दूसरे की तुलना मे अपना उत्पाद अधिक उत्तम और सस्ता करने का प्रयत्न करेगा। इसके अलावा, जितने अधिक उत्पादक बाजार मे होंगे उपभोक्ताओं को रिझाने के लिये न केवल उतना अधिक खर्च विज्ञापन आदि पर करना आवश्यक हो जाता है वरन् विज्ञापन का लाभ (विज्ञापन को भी वस्तु माने तो उसकी उत्पादकता) उतनी ही कम होती जाती है, दूसरे शब्दों में किसी उत्पादक के लिये नये बाज़ार मे आने का एक बड़ा लाभ यह है कि वह अपने मूल बाज़ार की अत्यधिक प्रतिस्पर्धा से बच जाता है और नये बाज़ार में अपने उत्पाद की 'नवीनता' के बल पर उस बाज़ार मे भी प्रतिस्पर्धा से बचा रहता है। अगर एक से अधिक विदेशी उत्पादक अपने एक ही जैसे नये उत्पाद के साथ बाज़ार में उतरते हैं (जैसे चॉकलेट के दो उत्पादक) तब भी वे अपने मूल बाज़ार की तुलना में बेहतर

स्थिति में होते है क्योंकि 'नवीनता' के बल पर वे नये बाज़ार मे पहले से उपलब्ध उत्पादनों की प्रतिस्पर्धा से बचे रहते हैं और मूल बाज़ार की तुलना में उनके सामने बाज़ार विस्तार की संभावनाएँ अधिक होती हैं।

परंतु इस बाज़ार विस्तार की प्रक्रिया में जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं प्रमुख समस्या है उपभोक्ताओं की 'नये' माल मे अरुचि की। यदि अपनी सहज उत्सुकता के बावजूद उपभोक्ता को अपनी सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक विरासत के कारण मिठाई चॉकलेट से अधिक लुभाती है तो चॉकलेट का बाज़ार विस्तार असंभव नही तो, कठिन अवश्य हो जाता है। अगर उपभोक्ता को दिवाली के अवसर पर बर्फी, गृह-प्रवेश के शुभ अवसर पर मोतीचूर के लड्डू और होली के अवसर पर गुझिया की ही याद आती है, तो चॉकलेट का भविष्य अंधकारमय है। उपभोक्ता की रुचि मे बदलाव, विदेशी उत्पादक की सफलता का मूल मंत्र है।

यूरोप और अमरीका की कंपनियो ने लगभग इस शताब्दी के मध्य से ही—जब एशिया और अफ्रीका के अधिकतर देश स्वतंत्र हो चुके थे या होने की प्रक्रिया मे थे - अपने अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप का विस्तार आरंभ कर दिया था। अपने लबे अनुभव और सचार माध्यमो की प्रगति और विकास से उन्होने सीखा है कि यदि हर कपनी केवल अपने उत्पाद को बेचने का प्रयास करती है तो उसके बाज़ार-विस्तार की सभावना संकुचित हो जाती है; क्योंकि उस परिस्थिति मे नये बाज़ार का केवल एक छोटा-सा उपभोक्ता वर्ग, जो पहले से ही इन पश्चिमी देशो की संस्कृति से प्रभावित है, उनके उत्पादनो की ओर आकर्षित होता है और उन्हे ग्रहण करता है। बाज़ार विस्तार के आरंभिक चरणो में विदेशी उत्पादक इस स्थिति से भी प्रसन्न रहता है, क्योकि अकसर यह उपभोक्ता वर्ग छोटा परंतु संपन्न होता है, उसकी क्रय शक्ति अन्य वर्गो की तुलना में अधिक होती है। जैसे-जैसे बाज़ार का खुलापन बढता है, और विभिन्न विदेशी उत्पादक बाज़ार में आने लगते हैं, अपनी अधिक क्रय-शक्ति के बावजूद अपने छोटे आकार के कारण इस वर्ग की कुल मांग मे कमी आने लगती है और नया बाज़ार बहुत जल्दी संकुचित होने लगता है। अक्सर देखा गया है कि इस स्थिति से बचने के लिये हर अंतर्राष्ट्रीय कंपनी नये बाज़ार में अपने उत्पाद का प्रचार-प्रसार केवल एक नये उत्पाद के रूप में न कर, एक नई और आधुनिक (इसलिये निस्संदेह श्रेष्ठा !) संस्कृति के एक प्रतिनिधि के रूप मे करती है। यह अंतर्राष्ट्रीय कंपनियाँ अपने विज्ञापनों, अपने द्वारा आयोजित/ प्रायोजित कार्यक्रमों में, चाहे वे कला, संस्कृति, क्रीडा-जगत या किसी अन्य क्षेत्र से जुड़े हों, उन कार्यक्रमों पर अधिक जोर देती है जो उसके मूल बाज़ार की संस्कृति से जुड़े हो। जैसे भारत मे इन अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों द्वारा आयोजित/प्रयोजित कार्यक्रमों में पाश्चात्य संगीत, अग्रेजी नाटक, पुस्तकें या फिल्मे बिलियर्डस, गोल्फ या टेनिस जैसे यूरोपीय खेलो की अधिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

इस प्रक्रिया में भारतीय दूरदर्शन भी फैशन शो, बैले, पाश्चात्य पॉप या शास्त्रीय संगीत को अपने अन्य कार्यक्रमो की तुलना मे वरीयता देता है (पूर्वनियोजित कार्यक्रमों को हटा कर इन 'विशिष्ट' कार्यक्रमो को समय दिया जाता है) क्योकि इन कार्यक्रमो के प्रसारण का आर्थिक पक्ष सुदृढ़ है। 'वोईका' बैले का प्रसारण (दूरदर्शन सहित) सौ से अधिक देशो मे होता है, जिसे 'दर्शनीय' बनाने के लिये कई दिन पहले से उसके विज्ञापन आने आरंभ हो जाते हैं, दर्शको को विश्वास दिलाया जाता है कि यह कार्यक्रम उनके लिये बहुत 'महत्त्वपूर्ण' है, क्योंकि इसे दुनिया के सौ से भी अधिक देश प्रसारित कर रहे है। परंतु वही दूरदर्शन 'स्वामी हरिदास सगीत समारोह' जैसे राष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्यक्रम पर रात दस बजे के बाद आधे घटे की रपट देकर अपने दायित्व से मुक्ति पा लेता है। ऐसा क्यो होता है, क्योकि वोईका बैले को एक सास्कृतिक उत्पाद मानने वाले उसके लिये विश्व बाज़ार खोजते और तैयार करते है, जबकि भारतीय सचार माध्यम अपने सास्कृति कार्यक्रमो को ऐसा स्वरूप प्रदान करने से इनकार करते है। जुबिन मेहता के इसराईल 'फिलेमॉनिक आर्केस्ट्रा' का सीधा प्रसारम होता है; परतु पंडित जसराज का गायन बहुत 'मंहगा' होने के कारण विरले ही दूरदर्शन पर दिखाया जाता है।

अतर्राष्ट्रीय कंपनियॉ इस सास्कृतिक प्रचार-प्रसार के खेल मे कई बार नये बाजार की मूल सस्कृति में उपलब्ध उन तत्त्वो को भी उठा लेती है जो उनकी अपनी सास्कृतिक जडों के अनुकूल हो। इसके अतिरिक्त यदि नये बाज़ार की सांस्कृतिक विरासत का कोई ऐसा पहलू है जो ऐतिहासिक कारणों से केवल उस छोटे से संपन्न वर्ग - जो विदेशी उत्पादको का प्रथम उपभोक्ता है - की बपौती बन गया हो (जैसे खास तरह के परिधान या व्यजन या संगीत जो जन संस्कृति से दूर विशिष्ट वर्ग तक सीमित हो), अंतर्राष्ट्रीय कपनियो के सांस्कृति प्रचार-प्रसार का अभिन्न अग बन जाता है।

आखिर इस प्रक्रिया के पीछे क्या तर्क है ? ऐसा क्यो है कि अंतर्राष्ट्रीय कंपनियॉ (जो मूल रूप में यूरोपीय या अमरीकी है या एशियाई होते हुए भी जिनका स्वरूप यूरोपीय या अमरीकी है) केवल अपने नये उत्पाद का प्रचार न कर, सांस्कृतिक प्रसार में अपना धन, समय और ऊर्जा व्यय करती है ? क्या कारण है कि प्रतिस्पर्धी कंपनियॉ भी, जहॉ तक पश्चिमी सस्कृति के प्रचार का प्रश्न है, एक दूसरे से भिन्न नही दिखती। क्या कारण है कि अगर पैप्सी माईकल जैकसन को भारत लाने का बीड़ा उठाती है तो कोका-कोला ब्रायन एडम्स को भारत बुलाने की कोशिश आरंभ कर देती है ? इस गुत्थी को सुलझाने के लिये हमे इस सारी प्रक्रिया को विदेशी कंपनियो की नज़र से देखने का प्रयास करना पड़ेगा।

दीर्घकालीन लाभ की दृष्टि से बाज़ार विस्तार आवश्यक है और बाज़ार विस्तार के लिये हर कंपनी का केवल अपने उत्पाद के प्रसार पर ध्यान देना, केवल एक संकुचित बाज़ार के निर्माण के लिये मार्ग प्रशस्त करता है जो छोटे से प्रश्चिम-परस्त वर्ग तक

सीमित है । अपनी भिन्न जीवन-शैली, आचार-विचार के कारण नये बाज़ार के अधिकांश उपभोक्ता उसके उत्पाद की 'आवश्यकता' ही महसूस नही करेगे । (जहॉ फर्श की सफाई गोबर के लेप से होती हो वहॉ फिनायल, वैक्यूम-क्लीनर आदि अनावश्यक है ।) दूसरी ओर, अगर हर देशी उत्पादक नये बाज़ार की मूल संस्कृति को बदलने में अपना योगदान देता है तो इस सामूहिक प्रसार का असर उपभोक्ता पर होने की संभावना बढ जाती है । नयी संस्कृति के एक भी पक्ष से प्रभावित होने पर वह धीरे-धीरे उस संस्कृति के अधिकांश पहलू अपनाने लगता है क्योकि वे एक-दूसरे से जुडे प्रतीत होते है । उपभोक्ता की जीवन-शैली मे परिवर्तन आते ही उसे नये उत्पादो की 'आवश्यकता' महसूस होने लगती है ।

इस परिवर्तन प्रक्रिया के दो पक्ष है, पहला - नये उत्पादो द्वारा पुरानो का स्थानातरण और दूसरा - पहले अनुपलब्ध/वर्जित /अनावश्यक उत्पादो का बाज़ार में प्रवेश। जीवन-शैली में परिवर्तन के साथ-साथ जीवन मूल्यो मे बदलाव अनेक ऐसी वस्तुओ के बाज़ार-विस्तार मे सहायक है, जिनका उपयोग या उपभोग वर्जित था, जैसे मदिरा; अथवा जिनका उपयोग सीमित था, जैसे प्रसाधन सामग्री । कहने की आवश्यकता नहीं की जब तक कोई समाज यह मानता रहेगा कि शराब बुरी वस्तु है या शारीरिक सौदर्य की तुलना मे मानसिक सौदर्य श्रेष्ठ है, तब तक मदिरा तथा प्रसाधन सामग्री के क्रय-विक्रय पर एक अदृश्य बंधन-सा लगा रहेगा और इन वस्तुओं का बाज़ार सीमित रहेगा । परतु अगर सचार माध्यमों और अन्य तरीको से अपना लगातार प्रचार के द्वारा ये ही वस्तुएँ आधुनिकता, गर्व और फैशन का पर्याय हो जाती है, जो बाजर-विस्तार पर लगा बंधन स्वतः टूट जाता है । ऐसी स्थिति में हमें इस बात पर आश्चर्य नही होना चाहिए कि जिस समाज में आज से पॉच-सात साल पहले तक लोगो को फैशन शो में कोई रुचि नही थी, वहॉ आज दूरदर्शन पर, पत्रिकाओ मे, विद्यालयो और विश्वविद्यालयो मे फैशन शो की बाढ-सी आ गई है । ऐसा नही है कि सास्कृतिक परिवर्तन की इस मुहिम मे विदेशी कंपनियो को हमेशा सफलता मिलती हो या फिर नये बाज़ार मे उनके हथकंडो का विरोध न होता हो । नये बाज़ार के रीति-रिवाजों से अनभिज्ञता कई बार विदेशी उत्पादकों के लिये मंहगी पड़ती है । कई बार उन्हे नये बाज़ार के सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश की छिछली जानकारी का दंड भुगतना पड़ता है । यह दंड दोषी कंपनी द्वारा सार्वजनिक क्षमा प्रार्थना जैसे हलके स्तर से लेकर उस कंपनी के देश से पूर्ण निष्कासन जैसा कठोर भी हो सकता है । अधिकतर कंपनियाँ अपनी नासमझी विज्ञापन बनाते/बनवाते समय दिखाती हैं (जैसे कुछ समय पहले पैप्सी को इसराईल मे अपना एक विज्ञापन जिसमे बंदर को मनुष्य का पूर्वज बताया गया था इसराईली टी०वी० से हटाना पडा और जनता से क्षमा मांगनी पड़ी क्योंकि डारविन का यह सिद्धांत बाईबल की मानव उत्पत्ति संबधी मान्यताओं के विरुद्ध है) । अपने विभिन्न खट्टे-मीठे अनुभवो द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कंपनियॉ नये बाज़ार में कुछ समय

रहने के बाद यह समझ पाती है कि किन-किन पहलुओ पर परिवर्तन की सभावना है और किन पर नही। ऐसा नही कि वे अपने हित मे एड़ी-चोटी का जोर नहीं लगाती; परतु अतिम निर्णय हमेशा उनके पक्ष मे नही होता। सामान्यतः धर्म सबंधी मान्यताओ पर समझौते की संभावना सबसे कम होती है (जब तक कि धर्मातरण ही न हो जाये)। इसलिये अतर्राष्ट्रीय कपनियॉ सस्कृति के इस पहलू से छेडछाड कम ही करती है। सभवतः इन कंपनियो को यह सीख स्पेनी, पुर्तगाली और कुछ हद तक अपने अग्रेज पूर्वजो के अनुभव से मिली है, जो कि सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी मे एशिया और अफ्रीका मे व्यापार के लिये आये थे। कारण जो भी हो सामान्यतः अतर्राष्ट्रीय कपनियॉ सस्कृति के इस पहलू से छेडछाड कम ही करती है, जहॉ तक हो सके वे इससे दूर रहती है। भारत मे फास्ट-फूड फैशन के बावजूद अगर 'बर्गर हट' का भारत मे प्रवेश नही हुआ है (जो अपना बीफ बर्गर के लिये प्रसिद्ध है) तो इसका कारण यह है कि बावजूद सारे प्रचार तत्र के, इस कपनी के प्रमुख उत्पाद के बाज़ार-विस्तार की सभावना नगण्य है और खतरा कही अधिक।

इस सारी प्रक्रिया के दूरगामी परिणाम क्या होगे ? कहने की आवश्यकता नही है कि इस सारे परिवर्तन को परिचालीत करना वाली मुख्य शक्ति है विदेशी उत्पादको द्वारा अधिकतम लाभ कमाने की कामने जो उन्हे बाजार विस्तार के लिये प्रेरित करती है। इस विषय मे भी कोई मतभेद नही है कि सास्कृतिक परिवर्तन जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करता है और करेगा। जहॉ तक इस परिवर्तन के आर्थिक प्रभाव का प्रश्न है, हम पाते है कि अपनी मूल सस्कृति के प्रति समाज की प्रतिबद्धता ही विदेशी उत्पादको की बाज़ार विस्तार की लालसा को लगाम दे सकती है। विदेशी उत्पादको द्वारा सास्कृतिक परिवर्तन की चेष्टा (जिसे कई बार सास्कृतिक हमले या सास्कृतिक साम्राज्यवाद की सज्ञा भी दी जाती है) मूलतः देशवासियों की वैचारिक और मानसिक स्वतत्रता पर कुठाराघात करता है। उनकी मौलिकता को कुद करता है और निर्णय लेने की क्षमता को क्षीण कर उन्हे केवल नकल करना सिखाता है। उनसे उनका सास्कृतिक आधार छीन कर उनकी सृजनशीलता नष्ट की जाती है ताकि केवल विदेशी उत्पादो की नकल मात्र कर सके। परतु यह तब तक सभव नही है जब तक देसी उपभोक्ता अपनी जीवन-शैली के अनुरूप अपने जीवन मूल्यो के प्रभाव मे क्रय-विक्रय का निर्णय लेता है। ऐसी स्थिति के चलते विदेशी उत्पादक या तो अपने नये उपभोक्ता की आवश्यकता के अनुसार अपने उत्पाद ढालने को बाध्य हो जाता है या फिर बाज़ार से बाहर हो जाता है। जब तक उपभोक्ता अपनी सास्कृतिक जमीन पर खडा है, विदेशी उत्पादक अपने नये उत्पाद उस पर थोप नही सकता। पर अगर नई सस्कृति का जादू उपभोक्ता के सिर चढ़ कर बोलने लगे, जब हर विदेशी वस्तु इसलिये ग्राह्य हो जाये क्योंकि वह विदेशी है, जब विदेशी सस्कृति और उसके सभी उत्पाद आधुनिकता के द्योतक हो जाये और सभी देसी वस्तुएॅ पिछडेपन की, जब उपभोक्ता यह मान ले की उसकी संस्कृति पतन के अतिरिक्त देश के आर्थिक

विकास के लिये भी खतरे की घटी है क्योकि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप अधिकतर उपलब्ध भारतीय उत्पाद जनता के लिये 'आवश्यक' नही रह जायेगे और अपनी सस्कृति से कटा जन समूह मौलिकता को त्याग केवल नकल का सृजन करेगा - जो अपने विदेशी मूल की तुलना मे घटिया और त्याज्य होगा। दूसरे शब्दो, मे विदेशी कपनियाँ और उनसे सहानुभूति और स्नेह रखने वाले समाज का पश्चिम परस्त सपन्न वर्ग अपनी आर्थिक, राजनैतिक और प्रचार-प्रसार शक्तियो के माध्यम से देश की जनता को उसकी मूल सस्कृति - उसकी भाषा, सगीत, धर्म, कला, जीवन मूल्यो आदि से दूर ले जाने मे जितना अधिक सफल होगे, भारतीय उत्पादक अपनी संस्कृति और रहन-सहन पर आधारित उत्पादो के विक्रय पर उतना अधिक अक्षम होता जायेगा। देश का उपभोक्ता जितना अपनी सस्कृति से कटे, अपनी संस्कृति पर आधारित और उसके अनुरूप उत्पादो के लिये उसकी माग उतनी कम होती जायेगी। समाज अपनी सस्कृति के जिस-जिस पहलू के प्रति अपना आग्रह क्षीण होने देगा, उससे जुडे देसी उत्पादन और आर्थिक सेवाएँ सकट मे आ जायेगी। उदाहरणतः सस्कृति के एक पक्ष स्वभाषा के स्थान पर अग्रेजी से मोह भारतीय भाषा, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, दर्शन, सगीत, कला और धर्म के उन पक्षो, जिनके सप्रेषण के लिये भाषा का माध्यम आवश्यक है, अनावश्यक बना देता है। सस्कृति के इन सभी पक्षो से जुडे उद्योग-धधे और सेवाएँ जो किसी न किसी रूप मे भाषा से जुडी है आधुनिक अग्रेजीदा पीढी के लिए अर्थहीन हो जाती है। हम देखते है कि इस प्रक्रिया मे विदेशी कपनियो - जिन्हे भारतीय भाषाओ की तुलना मे यूरोपीय भाषाओ मे काम करना अधिक सुविधाजनक और लाभकारी लगता है-की सहायता के लिये भारत के अग्रेजी समाचार पत्र प्रचार कार्य करते है। यह अखबार भारतीय सस्कृति के उन सभी पक्षो से स्वय को काट चुके है या पूर्णतः काट लेना चाहते है जिनमें अंग्रेजी इतर भाषा का प्रयोग हो क्योकि किसी भी अन्य भाषा का प्रयोग, समाचार सप्रेषण के बाज़ार मे उनके 'उत्पाद' का प्रतिद्वद्वी है। अपने उत्पाद के बाज़ार विस्तार के लिये वे न केवल विदेशी सस्कृति का सहारा लेने को बाध्य है वरन् अपने पक्ष मे प्रचार के नाम पर वह भारतीय भाषाओ के विरुद्ध प्रचार करने का कोई मौका नही छोड़ते, क्योकि भारतीय भाषाओ का विकास उनके बाज़ार को सकुचित करता है। उनके बाज़ार विस्तार के लिये आवश्यक है भारत की सांस्कृतिक दासता। यह दासता जितनी अधिक बढेगी, भारतीय सर्जनात्मक प्रवृत्ति का उतना ही ह्रास होगा और विदेशी उत्पाद भारतीय उत्पादो का स्थान लेते जायेगे। अगर अपनी सास्कृतिक अस्मिता की रक्षा नही की गई तो सांस्कृतिक स्वतत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता भी नही बचेगी।

सांस्कृतिक स्वतत्रता आर्थिक स्वतंत्रता का द्वारपाल है - आर्थिक स्वतत्रता, सांस्कृतिक स्वतंत्रता मे निहित है - यही है सस्कृति का अर्थशास्त्र। □

बाल कृष्ण शर्मा नवीन : हम विषपायी जनम के

कृष्णदत्त पालीवाल

भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, निराला आदि की भाव परम्परा को बढ़ाने वाले सहज कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का यह जन्म शताब्दी वर्ष है। हिंदी साहित्य को इस समर्थ रचनाकार का अभूतपूर्व योगदान है। कानपुर से 'मजदूर' नामक पत्र निकालने वाले और उत्तर प्रदेश के मजदूरो के जाने माने इस नेता ने मार्क्सवाद का कभी भी समर्थन क्यो नही किया, तथा उनके साहित्यिक जीवन के विभिन्न पक्षो का विश्लेषण कर रहे है सुपरिचित आलोचक डॉ० कृष्णदत्त पालीवाल।

स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में ऐसे धाकड रचनाकार बहुत ही कम हुए हैं जिन्होने राजनीति, दर्शन, कवि-कर्म और अपने आचरण से देश के सम्मान और प्रबुद्ध जनो पर एक साथ असाधारण प्रभाव छोडा हो। जिनके चिन्तन की निर्भीकता का जनता ने लोहा माना हो और विदेशी-प्रभावो के अन्धड़ मे जो अपनी ठेठ देशी ताकत से जड़ों को मजबूती से पकडे रहे हो। यह निश्चित है कि जब कभी ऐसे जातीय-अस्मिता को पहचान देने वाले रचनाकारो की गणना होगी तब बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम शिखरस्थ कोटि मे रखा जाएगा। विद्रोही, फक्कड़, दुस्साहसी और निर्भीक ऐसे कि देश की स्वतन्त्रता के लिए प्राणो को हथेली पर रखकर उछालने वालो में वे हमेशा आगे रहे।

आजाद हिन्दुस्तान को अपनी कल्पना के रग में भरने से यदि वे चूके तो 'हम विषपायी जनम के' जीवन-दर्शन से पीछे नही हटे । बड़ी बात यह है कि उन्होने काग्रेस पार्टी मे ठीक-ठाक स्थिति प्राप्त करने पर भी अपने स्वाधीनता आदोलन के दिनो के त्याग को भुनाने की कभी कोशिश नही की । उनकी जुझारू कवि योद्धा की छवि आजाद भारत मे भी मलिन नही हुई । उसमे निरन्तर एक चमक आती गई । सच है कि तप, त्याग और निर्भीकता का ही दूसरा नाम 'नवीन जी' है ।

बार-बार ऐसा हुआ है कि अपने विद्रोही चिन्तन के कारण और कोई समझौता न करने के कारण, हर तरह के जोखिम को आमन्त्रित करने के कारण, हिन्दुस्तान के प्रभावशाली नेताओ और उनके प्रभामंडल के अन्य नेताओ की नीतियो की कटु आलोचना करने के कारण अलग-थलग पड गए । एक समय ऐसा भी आया कि गाधी-नेहरू से इस कवि को टकराना पडा और अकेले पड गए । पर चिन्ता नही थी । सकल्प इतना दृढ़ था कि हर अंधेरे मे रगड खाकर जल उठते थे । प्रश्न उठता है कि इस सबके पीछे सक्रिय मनोभूमिका का आधार क्या था ? ठीक से खोजने पर पता चलता है कि उनकी मानसिक बनावट पर क्रान्ति-पुरुष बालगगाधर तिलक की विचारधारा का गहरा प्रभाव था । यही प्रभाव उनके आरम्भिक सृजन को ताकत देता और एक नवीन काव्य-टोन । इस काव्य-टोन पर किसी नए-पुराने कवि के अनुकरण की अनुगूँज नही है । सच्ची मौलिकता अपनी अलग राह बनाती है और खरी काव्यानुभूति एक अलग पहचान । पूरी स्थिति को सोचने-समझने के बाद कहा जा सकता है कि नवीन जी का काव्य इसका सटीक उदाहरण है । काग्रेस आदोलन को आगे बढ़ाने के लिए नवीन जी मन से गाधी जी के साथ रहे और गाधी जी के चिन्तन और आचरण को अपने जीवन मे ढाला भी । गाधी जी उनकी काव्य प्रेरणा मे सन्त-योद्धा के मॉडल रहे ।

तिलक गाधी, गणेश शकर विद्यार्थी, माधवराव सप्रे, भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी इन सभी प्रेरणास्त्रोतो से वे अपने कवि को निर्मित करते हैं । उनका रचनाकारव्यक्तित्व विरोधो का एक अद्‌भुत सामञ्जस्य है । हर बार राजनीतिक असहमतियों को उभारना और उस बवंडर के भीतर से विजयी मुद्रा में निकल आना नवीन जी के कवि-कर्म की विशेषता है । माखनलाल चतुर्वेदी और गणेश शंकर विद्यार्थी से उनकी खूब ठनी और कुछ समय तक हिन्दी पत्रकारिता के गौरव दो पत्र 'प्रताप' और 'प्रभाकर' का उन्होने हर जोखिम उठाकर सम्पादन किया । गणेश शकर विद्यार्थी के जेल जाने पर 'प्रताप' का प्रताप कभी मन्द नही होने पाया, इसके मूल मे थे-बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' । गणेश जी की तरह वे देश की जनता, उसकी अटूट जीवट संस्कृति, भाषा, धर्मनीति और भारतीय सवेदना के खुले प्रवक्ता रहे । सच्चे अर्थों में नवीन जी ने माखनलाल चतुर्वेदी की तरह राजनीतिक कविताएँ लिखी और जेल ही इनकी शिक्षा के

विश्वविद्यालय रहे। इनका यौवन जेल मे बीता। जगह-जगह आन्दोलन करने के कारण लगभग चौदह वर्ष जेल में काट दिए और इसी दौर मे वे जवाहर लाल नेहरू के घनिष्ठ मित्र रहे। इस मित्रता ने इतिहास और राजनीति की नवीन व्याख्याओ का अभ्यास बढाया। इसी अभ्यास से देशी स्वच्छन्दतावाद नवीन जी की सर्जनात्मकता मे रग लाया। नर्मदा का परशुराम तेज 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' का स्वर-प्रवाह बना। इसी स्वर-प्रवाह को बाद मे कविवर भवानी प्रसाद मिश्र ने पूरे मन से ग्रहण किया। विन्ध्य-हिमालय की मादक हवाएँ नर्मदा-शोण और बेतवा की तान लेकर झूम उठी। इस प्रवाह की चोट से गुलामी की चट्टाने तोडने का अरमान पूरे मध्य देश मे जागा। इस कवि-परम्परा का इतिहास आज भी भुलाने की चीज नही है। माखनलाल या नवीन जी को याद करने का प्रेरणादायी अर्थ है अपनी क्रान्तिकारी सत-परम्परा को पाना। यह परम्परा उस हर चीज का डटकर विरोध करती है जिसमे पराधीनता का भाव हो, साम्प्रदायिकता का जहर हो, मानव-मूल्यो पर कुठाराघात हो। इस परम्परा को ही कायम रखने के लिए नवीन जी ने परिवार, मित्र, यश, पद-महिमा, सत्ता सरकार सभी को छोडा। आधुनिक हिंदी का नया रचनाकार जब कभी धीरोदात्त नायक और महाकाव्यात्मक मानव व्यक्तित्व का अर्थ समझेगा तो उसके पास भारतेन्दु और निराला के बाद दो नाम और शेष बचेगे- माखनलल और नवीन जी।

कविवर भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने सस्मरणो की पुस्तक 'जिन्होने मुझे रचा' मे नवीन जी का चित्र खीचा है—"बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम मन में आते ही आखो के सामने एक तराशे हुए आदमी का चित्र खिच जाता है। छः फुट लम्बा, व्यायाम से सधाया-तपाया, बलिष्ठ शरीर, विशाल वक्षस्थल, वृष-स्कंध, दीर्घबाहु, कुछ लाली लिए हुए चिट्टा रंग, उन्नत भाल, नुकीली नासिका, बड़ी और पैनी ऑखे, खिचे हुए होठ, और तेजयुक्त प्रभावशाली मुखमडल। नवीन जी को कई बार तो देखते ही बनता था। पौरुषेय सौन्दर्य के वे मानो आदर्श थे। उनको देखकर लगता था जैसे किसी सही कल्पनाशील मूर्तिकार ने अपनी सारी कल्पना को समेट कर एक मूर्ति गढ़ना तय किया था।" यह प्रिय-दर्शन व्यक्ति सरोजिनी नायडू को, 'यस ही लुक्स लाइक ए पोयट हेल्दी, स्ट्राग एण्ड हैण्डसम' ऐसे ही नही लगता था—कारण, नैचुरली, ए पोयट मस्ट बी ए रिबेल' का प्रतिमान दिखाई देता था। यहॉ तक कि निराला-दिनकर और अज्ञेय, हिन्दी के तीनो कवि जिन्हे अपनी कवि-भव्यता पर गर्व था, वे तीनो ही नवीन जी को देखकर 'अपूर्व' भाव से सराहते थे। उनका जीवन महाकवि निराला की भॉति ही 'दुःख ही जीवन की कथा रही' का पर्याय रहा। जीवन-भर वे दरिद्रता और संघर्ष की छाती पर सवार होकर हॅसते रहे। 1897 को मध्य प्रदेश के शाजापुर परगने के भ्याना गॉव मे एक दरिद्र ब्राह्मण जमुनादास के घर उनका जन्म हुआ। और जन्म हुआ गायों के बॉधने के एक बाडे में। गायो की

स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए नाम रखा गया— 'बाल कृष्ण'। कारण, हमारे देश के उद्धारक कृष्ण ऐसी स्थितियो-परिस्थितियों मे जन्म लेते रहे है। नवीन जी ने स्वयं लिखा है—"मेरी माता कहा करती है कि गायो के बॉधने के बाड़े में अपने राम ने जन्म लिया है। मेरे पिता बहुत गरीब थे।" आर्थिक विपन्नता का आलम यह रहा कि ग्यारह वर्ष की उम्र तक उनकी शिक्षा आरम्भ न हो सकी। अभाव से जूझती मॉ राजस्थान मे नाथद्वारा चली गई और पिता नाथद्वारा के मन्दिर मे पुजारी हो गए। नवीन जी ने लिखा है—"बदा नगे पैरों रहता था, पैबन्द लगे कपडे पहनना और साल मे सिर्फ दो धोतियो पर गुजर करना एक मामूली और बिल्कुल स्वाभाविक बात थी।" मॉ चक्की पीसकर पालती थी और बच्चा किताबे मॉगकर पढता था। मॉ अष्टछाप के पद और सन्तो के गीत सुनाती-रटाती थी। शाजापुर से मिडिल पास कर नवीन जी उज्जैन गए वहॉ के माधव विद्यालय से हाई स्कूल पास किया। इसी बीच स्वाधीनता आन्दोलन की हवा लगी और उधर चल पड़े।

अचानक 1916 की एक घटना ने उनके जीवन को ऐतिहासिक मोड दिया। इसी वर्ष 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा' का अधिवेशन लखनऊ मे आयोजित हुआ। लोकमान्य तिलक ने देश के तरुणों को अधिवेशन मे सम्मिलित होने की आवाज लगाई। नवीन जी के पास इतना धन न था रेल का टिकट लेकर लखनऊ पहुॅच सकें पर संकल्प चैन न लेने देता था। बस क्या था, एक लोटा, एक कबल एक झोली लेकर पैदल लखनऊ चल पड़े। लखनऊ मे न किसी से परिचय न कोई ठिकाना। पर अधिवेशन मे पहुॅचे। भीड मे खडे इस फटेहाल युवक ने तिलक, ऐनी बीसेट, महात्मा गांधी आदि के दर्शन किए और भीड फाडकर तिलक तक पहुॅचे। आखिरकार चरण पकड़कर आशीर्वाद पाया। सयोगवश यही पर उनका परिचय गणेश शंकर विद्यार्थी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी से हुआ। यह परिचय ही घनिष्टता मे बदलता गया। गणेश जी तो नवीन से मिलकर इतने प्रभावित हुए कि उन्हे प्राणो से लगा लिया। प्रेम मे बड़ी ताकत है— इसी ताकत से नवीन जी, गणेश जी के हो गए। सच है कि नवीन जी का राजनीतिक और साहित्यिक जीवन गणेश शंकर विद्यार्थी के साथ ही घूमा। वे कानपुर आ गए और मॉ से कह आए, "मुझे भारत माता की झोली भरने के लिए मुक्त कर दे।"

गणेश जी ने क्राइस्टचर्च कालेज कानपुर में दाखिला लिया। बी.ए. फाइनल मे पहुॅचे ही थे कि गाधी जी की पुकार सुनाई दी। कालेज से राजनीतिक आन्दोलनों मे भाग लेने के कारण निकाले गए। गणेश जी की प्रेरणा से नवीन ने पूरी तरह अपने को राजनीति मे उतार दिया। अब उन्हें आर्थिक साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक नव जागरण, पराधीनता, स्वदेशी और स्वाधीनता, क्रान्तिकारी होने का अर्थ भी समझ मे आ गया। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के दिनों की मनोभूमिका ने रचनात्मक स्तर पर 'विप्लवगान' लिखा 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए'। यह

कविता नवीन जी के सम्पूर्ण रचनात्मक व्यक्तित्व और तत्कालीन कवि-कर्म मे भारतीय नवजागरण और देश-प्रेम की आरती बन गई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने की चुनौतियाँ बढती गई। 1931 ई. के हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे मे गणेश जी के प्राण गए। शोक से व्याकुल नवीन जी ने गणेश जी पर 'प्राणार्पण' नाम से खण्डकाव्य लिखा। इन्ही दिनो हिन्द कविता ने विशेषकर मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पन्त, निराला, माखनलाल ने रीति-विरोधी अभियान तेज किया तथा जन-मन को जगाने वाली, परम्परा का हाथ पकडा। इसी दौर मे नवीन जी ने सुभाष का साथ दिया। फलतः 'क्वासि और अपलक' काव्य-संग्रहो की कविताओ ने मधुर क्रान्ति बीज बोना शुरू किया। 'प्रभा' 'प्रताप' 'कर्मवीर' के माध्यम से वे प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों के नजदीक आ गए। भगतसिह, चन्द्रशेखर आजाद के साथ उनकी घनिष्ठता उत्तरोत्तर बढती गई। कवि ने एक समय तो ऐसा भी आया कि अपना पूरा मन बटुकेश्वर दत्त, चन्द्रशेखर आजाद, शचीन्द्रनाथ सान्याल, अजय घोष जैसे क्रान्तिकारियो को दे दिया। याद रखने की बात है कि जिस समय भगतसिह, सुखदेव तथा राजगुरु ने जेल मे भूख-हडताल की तो उन्हे समझाने के लिए नवीन जी ही भेजे गए। क्रान्तिकारी गतिविधियो मे खुलकर शरीक होने के कारण नवीन जी को छह बार जेल हुई। उनके सृजन का अधिकांश उल्लेखनीय भाग जेल के भीतर ही रचा गया। उन्होंने अग्रेजी साहित्य और शेक्सपियर, धर्म, दर्शन, इतिहास की पुस्तके जेल मे ही पढी। एक भेटवार्ता मे उन्होंने कहा है—"किस तरह मैं और देवदास (देवदास गाधी) जवाहर भाई के साथ शेक्सपीयर पढ़ा करते थे।" स्वय नेहरू जी ने 'मेरी कहानी' मे लिखा है, "यह ख्याल किया गया कि हम मे से कुछ झगडा करने वाले है। इसलिए सात आदमियो को जेल के एक दूर के हिस्से मे बदल दिया गया, जो खास बैरको से बिलकुल अलहदा था। इस तरह जिन लोगो को अलग किया गया उनमे पुरुषोत्तम दास टण्डन, महादेव देसाई, जार्ज जोसफ, बालकृष्ण शर्मा और देवदास गांधी थे।" जेल से बाहर आकर नवीन जी ने माखन लाल चतुर्वेदी के साथ 'प्रभा' का सम्पादन किया। माखनलाल के जेल जाने पर नवीन जी 'प्रभा' के एकमात्र सम्पादक भी रहे। क्रांतिकारी 'झडा अक' निकाला और अनेक छद्म नामो से माखनलाल की तरह लेख लिखे। पूरी तरह कला के साथ 'झंडा' विशेषांक नवीन जी ने निकाला, जिसे हिन्दी की क्रान्तिकारी पत्रकारिता का गौरव कहा जा सकता है। पर यह सब सामग्री आज धूल चाट रही है जिसका हर कीमत पर पुनर्मुद्रण होना चाहिए। ताकि आज की भटकी पीढी, उत्तर-आधुनिकतावाद मार से पीड़ित पीढ़ी अपने पुरखो से वैचारिक सवाद कायम कर सके। 'झंडा' अंक तो क्रान्तिकारियो की सत्याग्रहियो की बलिदान गाथा है और ध्वज वंदना से चमकती कविताएँ देशभक्ति की शक्ति-पूजा का स्तवन। 'प्रताप' पत्र की स्थिति तो यह रही कि गणेश जी के बलिदान के बाद नवीन जी ही उसके मुद्रक, प्रकाशक और

सम्पादक बन गए। 'प्रताप' को नवीन जी ने अपना सबकुछ दे दिया।

इस त्याग-तप से माखनलाल चतुर्वेदी इतने प्रभावित हुए कि 'सरस्वती' पत्रिका मे उन्होने एक लेख लिखा—'त्याग का दूसरा नाम नवीन'। नवीन के लेख युवको की प्रेरणा थे, उन लेखो मे 'शंखध्वनि', 'मध्य एशिया पर यूरोप की आँखे', 'अन्यायी कानून की आँत', 'काला साईमन बनाम गोरा साईमन', ' विषपान' आदि। महावीर प्रसाद द्विवेदी, गया प्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल', रायदेवी प्रसाद पूर्ण, निराला, बनारसी दास चतुर्वेदी, रायकृष्ण दास, दिनकर, भगवती चरण वर्मा कौन-सा हिन्दी का लेखक, सम्पादक नही था जिसे नवीन ने अपने विचारो की धार से चकित न किया था। राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रश्न को लेकर वे गाधी, नेहरू दोनो से टकराए और अत तक समझौता नही किया। 'हिन्दुस्तानी' का अर्थ नवीन जी 'अरबी-फारसीकरण वाली हिन्दी' मानते थे। इसीलिए उन्हें 'हिन्दुस्तानी' का विरोध करना पडा। वे हिन्दी की मूल प्रकृति और लय को रक्षित रखने के पक्षपाती थे और सस्कृत की परम्परा से प्राप्त शब्द सम्पदा से वंचित नही होना चाहते थे।

उन्हे अपने विचारो की नवीनता का आत्म-ज्ञान था और कविता संकल्पात्मक काव्यानुभूति की गहरी चेतना। अपना नाम 'नवीन' उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका में छपने वाली कहानी 'सतू' और कविता 'तारा' मे स्वय दिया था। इस 'नवीन' नाम से ही उनकी लम्बी कविताएँ 'विशाल भारत' मे बनारसीदास चतुर्वेदी और अज्ञेय जी छापते थे। राजनीति मे डूबकर नवीन जी नवीन रचनात्मक-दृष्टि निकालते रहे। इनकी कविताओ की काव्यानुभूति मे हमारे स्वाधीनता-आन्दोलन की आन्तरिक लय का इतिहास धड़कता है। 'कुकुम' (1936) 'अपलक' (1951) 'रश्मिलेखा' (1951) 'क्वांसि' (1952) 'उर्मिला' (1957) 'प्राणार्पण' तथा 'हम विषपायी जनम के' (1964) जैसे काव्यों की आन्तरिक प्रेरणा मे समय की आग पूरी तरह मौजूद है। नवीन जी की कविताओ, लेखो और सम्पादकीय टिप्पणियो मे वह दुर्लभ सामग्री भरी पड़ी है कि स्वाधीनता आन्दोलन का सच्चा इतिहास लिखने वालो को उनके पास आना पडेगा। क्यो जनता सशस्त्र क्रान्तिकारियों के साथ थी और क्यो सत्याग्रह आन्दोलन के विफल हो जाने पर जनता तड़प उठती थी। सत्याग्रह आन्दोलन के विफल होने पर नवीन जी ने लिखा है— 'आज खड़ग की धार कुंठिता है खाली तूणीर हुआ। विजय पताका झुकी हुई है लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ।' नवीन जी की देशभक्त आत्मा 'स्वाधीनता' के अखण्ड विश्वास से कभी नहीं डिगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हर तूफान मे वे अचल रहे, 'हलचलो के बीच भी वाणी रही मेरी अखण्डित, और विप्लव भी न कर पाए सुघड़मय गीत खण्डित'। क्या विडम्बना है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास' आज तक नवीन जी की इस तप-त्याग गाथा से अपरिचित है। वह उन्हें भावुकतावादी आवेश का कवि कहकर चलता कर देता है। जबकि आ० शुक्ल

चलते-चलते इतिहास में उन्हें 'स्वच्छन्द धारा' का कवि घोषित कर गए थे। आ० शुक्ल इस कवि का मूल्यांकन इसलिए नही कर सके थे कि नवीन जी की छपी कविताओ का कोई संग्रह न आ सका था। पत्र-पत्रिकाओ मे कविताएं धड़ाधड़ छपती थी पर राजनीति से फुर्सत न मिलती थी कि कविताओं को एकत्रित कर संग्रह छपवाया जाए। उनके संग्रह छपे उस समय हम प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के आन्दोलन चल रहे थे, नयी कविता का 'मोहभंग' और आधुनिकतावादी काव्य-मुहावरा उभर रहा था। इसलिए नवीन, माखनलाल आदि की चर्चा दब गई। फिर मार्क्सवादियो को नवीन जी अपनी पाला के नही लगे। नवीन जी के कांग्रेसवाद को बुर्जुआ कवि की कोटि मे डाल दिया गया। आज पता चलता है कि कविता को परखने के हमारे बॉट या प्रतिमान कितने खोटे हैं। दरअसल, राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा के कवियो का अभी सही मूल्यांकन होना बाकी है। मैथिली शरण गुप्त और माखनलाल अभी तक गहन उपेक्षा के शिकार हैं।

निराला जी की तरह नवीन जी ने अपने विचारो और उनसे उद्‌भूत अनुभवो को अपने आचरण में ढाला था। वे बने-बनाये सॉचे तोडने मे आनन्द पाते थे और नए सॉचे निर्मित करने के लिए काव्य-प्रयोग करते थे। नवीन की ज्यादातर रचनाएँ लोक-धुनो से निर्मित है, और पुराना लोकछन्द-दोहा भी 'नवीन दोहावली' की सौन्दर्य राशि है। वे राम-कृष्ण-शिव को जागृत भाव प्रतीको मे देखते हैं किसी रूढिवाद के भॅवर में फॅसकर नही। उनकी राजनीतिक कविताएँ हों या सांस्कृतिक भाव-संवेदना की कविताओ हों, वे नवीन सौन्दर्याभिरुचियों को निर्मित करते हैं। फलतः उनका मन हिन्दू, सम्प्रदायवाद से मुक्त रहता है। भारतीय दर्शन और संस्कृति की समझ उन्हे जीव-मात्र की करुणा से भर देती है। उनकी कविता के बीजभाव रक्षा और करुणा है। आ० शुक्ल की दृष्टि से देखे तो नवीन जी लोक-मंगल की साधनावस्था के समर्थ रचनाकार है। कुल मिलाकर आज के नव्य-पूँजीवादी, नव्यरीतिवादी समय में नवीन के रचना कर्म को टटोलते हैं तो पाते हैं कि उनके पास एक अखण्ड रचनाकार व्यक्तिव था, जिसमे एकांगी दृष्टि न थी। ध्यान रहे किसी भी समाज और देश के लिए 'अखण्ड रचनाकार व्यक्तित्व' का नसीब होना दुर्लभ होता है। 'हम अनिकेतन, हम अनिकेतन। ठाठ फकीराना है अपना बाघम्बर सोहे अपने तन।' मूल अर्थ ध्वनि यह कि कबीर और सुन्दरदास सूर और तुलसी, जायसी और रहीम की सन्त-परम्परा का प्रवाह नवीन जी मे एक खास भाव-रसायन के साथ अर्थापन्ति पाता है। इतना ही नही, राष्ट्रभाषा सम्बन्धी प्रस्ताव को लेकर भारतीय संसद में जो वाद-विवाद हुआ था, उसमें नवीन जी की वही भूमिका रही है जो राम-कथा में हनुमान की रही है। ऐसी स्थिति के कारण उनके राजनीतिक विचारों और तनावों, अभावों और संघर्षों के गहरे सरोकारों का एक साथ मूल्यांकन कर पाना सरल नही है। उनकी काव्य-भाषा, काव्य-मिजाज और काव्य-सृजन-प्रक्रिया में अनगढ़ कोने है, जो किसी भी स्तर पर फिट

होने से इनकार करते हैं। हर जगह यह सृजन-चिन्तन अपने कवि-स्वभाव से विरोध-विद्रोह, टकराव और बगावत पर आमादा है। काव्य-टोन अराजक है और यह अराजक स्वर अपना स्रोत मानव-सम्बन्धों के खरेपन से जोड़ता है। जो काव्य मर्मज्ञ इस स्वर को पहचानने की शक्ति रखते हैं उनका सम्मान-भाव नवीन जी के प्रति निरन्तर बढ़ता जाता है। यही वह स्वर है जिसे निराला, राहुल और नरेन्द्र देव, मदन मोहन मालवीय और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, रायकृष्ण दास और 'एक भारतीय आत्मा' चतुर्वेदी जी आगे बढ़ाते है। नवीन जी की प्रेम-सौन्दर्य की कविताओं मे 'सृजन की ललकारे' में विद्यापति और रवीन्द्रनाथ का रग भी कम नही है। 'एक बिन्दु-इंदु मथित सिधु लहर छोड़ चली।' मे लहर ससीम और असीम दोनो को निखारती है।

आजादी के बाद भारत मे जो बंजरपन फैला-अंधेरा अवसाद आया। उसने आजादी के आन्दोलन के इस योद्धा कवि और सक्रिय राजनीतिज्ञ को भीतरी धक्का दिया। उन्हे हाय-हाय की चीख से भरे पराजय-गान लिखने पडे। जिनके हाथो मे बक्खर है जिनके हाथो में हल है, वे किसान भूख से मरे। भूख के अनुभव नवीन मे बहुत है, 'लपक' चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को। उस दिन सोचा क्यों न लगा दे आग आज इस दुनिया भर को।' आजादी के बाद की निराशा का धुआँ 'हम विषपायी जनम के' की अनेक कविताओ मे तना हुआ है। दिल्ली में लोकसभा और राज्यसभा के सदस्य काल मे उनकी मैथिलीशरण, दिनकर, अज्ञेय से खूब छनी पर वे टूटते ही गए। यह कहना गलत होगा कि दूसरा विवाह उन्हे ले बैठा। घोर निराशा का कारण 'हम किधर जा रहे है' शीर्षक लेख में नवीन जी बतलाते हैं—"स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे तुरग की बल्गा ढीली हो गई जैसे वह ऊँची गगन चुम्बीशिखर की ओर चढ़ते-चढते सहसा मुडकर पतन की खाई की ओर दौड़ लगाने वाली है।" क्या उनका यह कथन सही सिद्ध नही हुआ ? हम रक्तपायी वर्ग से नाभि-नाल-सम्बन्ध क्या नही जोड़ते चले गए ? हमने फूलों में नाग क्या नहीं पाले ? नवीन जी स्वयं देख रहे थे कि आजाद भारत पश्चिमी नकलवाद के चक्कर में पिछलग्गू बन रहा है—उसे हर काम मे अपने चिन्तन इतिहास पर भरोसा ही नहीं रहता। 'यो शूलयुक्त यों आदि आलिगित जीवन' जीने वाले नवीन के कलेजे में पीर उठती है कि स्वाधीनता आन्दोलन का अर्थ कैसे खो गया। "मैंने तोड़ा तो फूल कुसुम तो क्या देखा ? उसके अंतर मे एक भयंकर तक्षक है। मैंने सोचा—मैंने कब ऋषि अपमान किया ? जो मुझको मिला परीक्षित जीवन-भक्षक है।' इसी मनोदशा ने उन्हे छलनी कर दिया। निराशा मे वे रुद्राक्ष की माला पहनकर नाम जप और मन्त्र पर आ गए। 'कैसा मरण संदेशा आया' को लिखे बिना न रह सके। मरण संदेश की बात आते ही 'कुंकुम' काव्य-संग्रह की 'भूमिका' के वे तरुण कवि नवीन जी याद आ जाते हैं जो कह रहे थे—"आज आपको इस वृद्धा जननी जन्मभूमि के आँगन में नई बातें, नई समस्याएँ, नई

भावनाएँ, नई आकांक्षाएँ खेल रही हैं—नही ऊधम मचा रही हैं। ऐसे समय में हृदय में आकुलता उमड़े तो क्या आश्चर्य।" भारतीय नवजागरण कैसे हँसता-खेलता आया था— यह सोचकर सिहरन होती है। पूरा देश अखण्ड-शक्ति का तेज धारण कर दमक उठा था और तरुण पीढ़ी का अरमान जवान था। कर्म और कर्त्तव्य की अर्न्तध्वनि नवीन जी से कहला रही थी—"हम संक्रान्ति काल के प्राणी, बदा नही सुख-भोग। घर उजाड़कर जेल बसाने का है हम को रोग।" घर उजाड़कर जेल बसाने का रोग क्रान्तिकारी तथा विप्लवकारी मुक्ति की आकांक्षा से निष्पन्न हुआ था। फलतः नवीन, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी का राष्ट्रवाद 'पराधीनता से मुक्ति' का पर्याय है। यह पश्चिमी ढंग का नस्लवादी, अलगाववादी, वर्चस्ववादी राष्ट्रवाद नही है। भारतीय राष्ट्रवाद में मातृ-भूमि वन्दना है और वन्दना मे बलिदान की प्रबल आकांक्षा- 'हो जहाँ बलि शीश अगणित एक सिर मेरा चढ़ा लो' का भाव है। यह भाव मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, त्रिशूल, श्याम नारायण पाण्डेय, सुभद्रा कुमारी, प्रसाद, निराला, माखनलाल की कवि परम्परा पवित्र पूजा फूल है।

नवीन जी के सम्पूर्ण सृजन मे जन-शक्ति की वास्तविक ताकत इसलिए भी ज्यादा है कि वे 'वाद' या 'पार्टी' के प्रचारक बनकर नही लिखते हैं। देश की जनता के साथ दोगलापन करना इस सृजन का चरित्र नही है, अनुभूति की ईमानदारी मे गजब की ताकत है। तिलक-गांधी-सुभाष ने कवि, सम्पादक, निबन्ध, लेखक की मानसिकता मे एक खास ढंग की ज्ञान-व्यवस्था निर्मित की है, जिसमें मामूली आदमी की महानता का दर्शन निहित है। दरिद्र-नारायण की तिलक-गांधी व्यथा का विस्तार है। कविता सीधी-सपाट है जिसमें ज्ञानपरक दार्शनिकता का बोझ बहुत कम है। अतः इस सृजन का समाजशास्त्र और सौन्दर्य शास्त्र-भारतीय चिन्तन परम्परा के उत्तमाश को परोस देता है।

भारतेन्दु, मैथिलीशरण, रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद, निराला, माखनलाल की भाव-परम्परा को बढ़ाने वाले नवीन जी को मातृ-भूमि वन्दना एक नया अर्थ सन्दर्भ देती है। यह मातृभूमि वन्दना मात्र भावुकतावादी नाटक या दिखावा नही है, इसमें ही इस रचनाकार की जन आस्था का कृष्ण बसता है। इसी में भारतीय परम्पराओं की ज्ञान नदियों का जल मिलता है। 'नर्मदे सिन्धु-काबेरी' से अखण्ड-भाव वाले जागरण की ध्वनि फूटती है। 'जागो-जागो' का जो स्वर छायावाद के कवियों में सुनाई देता था-वही स्वर यहाँ और तगड़ा हो जाता है। नवीन की काव्य-भाषा में जागरण की संवेदना का बिंब दमक उठता है, "जागो, जागो, अमृत सुवन तुम, जागो, जागो, सोने वाले। जागो तुम सिहों को छौनों, जागो सब कुछ खोने वालों।' कहना न होगा कि यही जननायक गांधी की वाणी थी जिसमें नवजागरण की आभा दमकती थी। कभी-कभार तो नवीन का पूरा काव्य-सृजन तिलक, गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी, सुभाष के विचारों का अनुवाद प्रतीत होता है। युग जैसे उनकी लेखनी में बैठकर लिख रहा था-ललकार दे रहा था। फिर नवीन जी का कवि

स्वभाव ही जागरण गीत गाने का रहा है। इन जागरण गीतों मे आत्मदान प्रेरित एकाग्रता है और है अपने को पूरी तरह उलीच कर दूसरों को दे देने का संकल्पपूर्ण साहस। किसान-मजदूर आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन की गीतो सीधी गूँज है। देश-भक्ति का करंट इतने शक्ति-वेग से प्रवाहित है कि हृदय को बिजली के झटके देता है। सकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर ही मुक्तिबोध तथा भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, वीरेन्द्र कुमार जैन, और शिवमंगल सिह सुमन से नवीन जी को जोड़ देता है। नवीन जी का 'कमिटमेट' निराला और माखनलाल वाला है जो 'जागो फिर एक बार' की जोर से आवाज लगाता है। नवीन जी 'चलो वीर पटुआ खाली' को रचते है तो भाव-रंग की पक्की चमक मोह लेती है। अग्रेजी साम्राज्यवादियों ने 1920 से 1930 तक बॉटने और बर्बाद करने के लिए सुनियोजित ढग से हिन्दू-मुस्लिम दंगे करवाए और हिन्दी उर्दू को धर्म के नाम पर बॉटने की कोई कसर न छोड़ी थी। आखिरकार यही जहर धर्म के नाम पर भारत-पाक विभाजन का कारण बना और यहॉ उर्दू-हिन्दी की राजनीति रंग लाई। नवीन जी तो 'खिलाफत आन्दोलन' 1920 ई० के हिन्दू-मुस्लिम एकता के भाव से भरे थे, पर उन्हें हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के जुनून को देखकर सदमा लगता था।

माखनलाल चतुर्वेदी की भॉति ही नवीन जी का कवि मन किसान मजदूर की फिरंगी लूट पर मलाल करता है। 'ओ किसान-मजदूर उठो' जैसी कविताओं में किसान-मजदूर पर कवि आस्था प्रकट होती है। वे जानते थे इनका जगना जरूरी है और किसान-मजदूर संगठित होकर, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के छक्के छुड़ा सकता है। ध्यान देने की बात है कि नवीन जी कानपुर में मजदूर नेता भी रहे। अपने एक 'साक्षात्कार' में उन्होने कहा है कि "जैसे मेरी कविता नगे-भूखे का यह गाना है। 1936-37 मे सूती मिल के पचास हजार मजदूरों ने बावन दिन की हड़ताल की थी। मैं उसका नेता था। उस समय पच्चीस-तीस हजार व्यक्तियों को कानपुर की जनता से मॉगकर खाना खिलाया था। सर ज्वाला प्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्य प्रसाद अवस्थी और हमे कुचल देने की धमकी दी थी। लेकिन हम उसमे विजयी हुई। विजयी होने पर जन-बल का गुणगान करने वाली एक भावना जागृत हुई और फलस्वरूप उक्त कविता लिखी गई।" (मैं इनसे मिला पृ 54) नवीन जी ने लिखा 'सुन लो गर तुम मे हिम्मत है नंगे-भूखो का यह गाना। अब तक के रोने वालों का, यह विकट तराना मस्ताना। जिनको तुम कीड़ा समझे थे, वे तो यारो निकले मानव। जो रेंगा करते थे अब तक, वे आज कर उठे है ताण्डव।' नवीन जी प्रश्नाकुल रहते हैं, अन्नदाता अन्न के लिए भूखा क्यो ? भूख का कारण है, साम्राज्यवादी लूटतन्त्र—'जिनके हाथों में हल बक्खर, जिनके हाथों में हल है। जिनके हाथों में हँसिया है, वे भूखे हैं निर्धन हैं।'

दिलचस्प बात यह है कि नंगे-भूखों का गाना गाने वाला, कानपुर से 'मजदूर' नामक

पत्र निकालने वाला, मजदूर-आन्दोलनों का उत्तर-प्रदेश में जाना-माना नेता मार्क्सवाद का कभी समर्थन नही कर सका। जबकि उनका जनवाद मार्क्सवाद से कभी पीछे नही रहा। मानव-निर्धनता पर नवीन जी की छाती फटती है। 1942 के आन्दोलन में कम्युनिस्टो ने जब गांधी का साथ नही दिया तो नवीन जी गुस्से से लाल हो गए। 'पार्टी' की गुलामी कैसे देश-भक्तो को भगोड़ा बना देती है। यह 1942 के 'भारत छोडो आन्दोलन' से नवीन जी को पता चलता है और वे मार्क्सवाद की ओर से विरक्त हो जाते हैं। उनका अपना अनुभव संत-भाव से व्याकुल होकर लिखता है, 'लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को। उस दिन सोचा क्यों न लगा दे आग आज इस दुनिया भर को। यह भी सोचा क्यो न टेंटुआ घोटा जाय स्वयं जगपति का। जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का। जगपति कहॉ ? अरे सदियों से वह तो हुआ राख की ढेरी। वरना समता-संस्थापन लग जाती क्यों इतनी देरी। छोड़ आसरा अलख शक्ति का, रे नर अरे जगतपति तू है तू गर झूठे पत्ते चाटे तो मुझ पर लानत है थू है।' भारत भिखारी को देखकर उनका सिर गरम रहता है और प्रश्नों के बबूलें दिमाग मे उठते हैं। 'जूठे पत्ते' कविता की काव्यानुभूति की बनावट में वही बबूला उठा हुआ है, 'क्या देखा है तुमने नर को नर के आगे हाथ पसारे। क्या देखे हैं तुमने उनकी ऑखो मे खारे फव्वारे ? देखे हैं ? फिर भी कहते हो कि तुम नही हो विप्लवकारी ? अब तो तुम पत्थर हो या हो महाभयकर अत्याचारी।' आदमी गरिमा से जिए— उसे जीवन-जीने को मिले-गैर-बराबरी वाद खत्म हो यह कवि की हार्दिक इच्छा है 'रोटी हो, पानी हो, घर हो, स्वच्छ पवन निर्मल प्रकाश हो। नर के साधारण स्वत्वों पर तो नर का निर्भय निकास हो। इसके लिए लड़ों तुम भिखमगे बनकर न पत्तल चाटों। प्रलय मचा दो तुम जब तक इन क्रूर अभावो का न नाश हो।' नवीन जी की इसी कवि गर्जना का प्रभाव भवानी भाई, सर्वेश्वर, मुक्तिबोध की पूरी कवि पीढ़ी पर पड़ा। पर इस प्रभाव की अभी तक चर्चा नही हुई है। जब कभी खोज होगी तब माखन लाल और नवीन जी का प्रभाव हिन्दी की इस पीढ़ी पर कम नहीं दिखाई देगा। अपने अग्रजों के इन्ही कन्धों पर चढ़कर 'नयी कविता' आगे बढ़ी है।

नवीन जी को पढ़ते हुए बार-बार अनुभव होता है कि वे सरल कवि नही है, हॉ 'सहज कवि' हैं। रचनाकार के लिए 'सहजता' बड़ी दुर्लभ चीज है पर यदि रचनाकार मॉ सरस्वती को मनाकर 'सहजता' पा लेता है तो उसका 'कथन' अन्य हृदयों में रच-बस जाता है। 'साधारणीकरण' की लोक-ध्वनि भी यही तो है। बड़े ही सहज-संवाद भाव से नवीन जी ने 1916-17 से कविता, कहानी, लेख, लिखना शुरू किया। कहानी तो धीरे-धीरे छूट गई, कविता-निबंध में वे रम गए। पर न द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता के चक्कर में पड़े, न उपदेश के। कर्म-सौन्दर्य के मैदान में जूझकर लिखने की ठानी और ठसक बरकरार रखी। खड़ी बोली में सर्जनात्मक उत्साह का जो दौर मैथिली शरण गुप्त ने 'भारत-भारती'

'जयद्रथ वध' से या रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' से चलाया था उसी राह पर वे निर्भय आगे बढ़े। खडी बोली स्वाधीना-आन्दोलन में जनगारण की भाषा थी जिसमें प्रदेश नही पूरा देश बोलता था। यह भाषा सत्ता-सरकार को ललकारती थी। महलो पर, झोपड़ियो को न्यौछावर करती थी। विप्लव, विद्रोह, हुंकार और 'स्वाधीनता' इस भाषा की स्थायी ध्वनि थी। इसी ध्वनि ने नवीन जी के रचनाकार को विचार-दीप्त किया है। गांधी जी ने चौरी-चौरा काण्ड के बाद जब सत्याग्रह स्थगित किया तो कितने ही जुझारू युवक उद्विग्न हो उठे थे-युवको ने इसे अपनी जवानी का अपमान समझा। नवीन जी ने युवको के इसी भाव से 'पराजय गीत' लिखा—'ऑखों का ज्वलन्त क्रोधा नल आज दैन्य का नीर हुआ। आज खड्‌ग की धार कुठिता है खाली तूणीर हुआ।' स्थायी भाव तो सर्जनात्मक उत्साह ही है। कवि को विश्वास है कि 'फिर से अरुण छटा छायेगी, फिर होगा द्रुमदल का मर-मर।' नवीन जी इसी कोण से छायावादी शक्तिकाव्य के विस्तार है। 'तब भैरवी छिडेगी' का आश्वासन यह कविता बराबर देती है।

इस सृजन-कर्म की एक खास धडकन यह भी है कि प्रेम की भक्तिपरक तन्मयता और जीवन का उदात्त वैष्णव-भाव इस रचना-धर्म की स्थायी निधि रहे है। एक प्रकार से प्रेम-दर्शन की यह धारा सन्तकाव्य से नवीन जी में आती है। मॉ के द्वारा सुनाए गए सन्तो के पदों का यह भाव संस्कार है। यह प्रेम मानव को मुक्ति की ओर ले जाता है। नवीन जी ने लिखा है, "मानव को मुक्ति का सन्देश देना और अपने को भी बन्धन-पाश से छुड़ाने का सतत् प्रयत्न करते जाना, यही भारतीय साहित्य का चरम, अन्तिम और परम् उद्देश्य है।" जीवन-प्रसंगो के आवेग मे नवीन जी भाव-दशाओं को भारतेन्दु और प्रेमधन जी की तरह कविता बनाने मे माहिर हैं। साथ ही इन कविताओ में वास्तविक जीवन-प्रसंगों के सामाजिक-राजनीतिक ताने-बाने गुँथे मिलते है। यह प्रेमकाव्य जीवन की विचित्रताओ पर विविधताओ के भीतर से फूटा है। इसलिए इसमे सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति है- रीतिवादी देह विलास की नही है। भावों में चमत्कारवादी कलाकारी न होकर निखालिस जीवनानुभवों की उपमा है। इसी अर्थ में यह सृजन सांस्कृतिक प्रक्रिया का सहज विस्तार है जिसमें अपने हृदय को लोक-हृदय में मिला देने का अरमान है। उनकी लोकप्रियता का रहस्य यही है कि वे मूल मनोरागों को गाते है, उन्हें लोक-राग-रागनियों में बॉधकर सॅवारते हैं। वही पर यह काव्यात्मकता अधमरी हैं जहॉ संवेदन दुर्बल है या अनुभव रक्त तोड़कर नही उमड़ा-घुमड़ा है। 'बिनोवा स्तवन' और 'प्राणार्पण' काव्य का मूल्य काव्यात्मकता की दृष्टि से कम है पर सन्त-परम्परा के नए रूप विस्तार की दृष्टि से ज्यादा है। जीवन जगत् के व्यापक और गम्भीर प्रश्नों पर इस रचनाकार को सोचने की आदत है। 'उर्मिला' काव्य में वे जीवन-भर निचुड़ते रहे, पर बात बनी नही। इसमें कवि के पास मैथिलीशरण गुप्त बाला उदात्त, बौद्धिक विश्लेषणात्मक

आधार नही है। कम से कम वह आधार तो नही ही है जो मार्मिक प्रसंगों के साथ एकाकार होकर काव्य दृश्यों में एक नई कौंध निष्पन्न कर दे। फिर नवीन जी की वैचारिकता भी पौराणिकता के खतरे से भरी है। वह आधुनिकता यहाँ नही है जिसमें स्वचेतनता की दहकती लपट होती है। यह भी कहना पड़ता है कि 'उर्मिला' के काव्य-सृजन की प्रदीर्घता ने—लम्बे अन्तरालो ने प्रेरणा को भीतर से घनीभूत नही होने दिया। इसी कमजोरी ने काव्य-भाषा को भी ढीला कर दिया है। जहाँ कही कवि ने रामकथा की अनुगूँजों को नए अर्थवृत्तो में ढालना चाहा है वहाँ उनके भाव-अंगार बुझ से गए है। प्रबन्धात्मक कसाव मे झोल पड़ गया है। जाहिर है कि नवीन जी में मुक्तककार की प्रतिभा है, प्रबन्धकार की नही। दुःख इस बात का है कि चालीस-पचास वर्ष तक सृजन-संघर्ष करने वाले नवीन जी प्रसाद या निराला की टक्कर की प्रबन्ध कृति नही दे सके। जबकि गीतो मे उन्होंने नए से नए प्रयोग किए और काफी दूर तक सफल भी रहे है। इन गीतो मे ठेठ देशी स्वच्छन्दतावाद की ठसक का अपना गौरवमय इतिहास है।

इस रचनाकार ने नेहरू युग का काला अंधकार झेला। अब 'मधुमय स्वप्न रंगीले' जैसी कविताए नही लिखी जा सकती थीं, अब तो 'बीत-चली वासन्ती' वेला का ही अहसास किया जा सकता था। और यह अहसास परवर्ती सृजन पूरी सच्चाई से कराता है। □

लोक में 'मृत्यु'

प्रो. नर्मदा प्रसाद गुप्त

जीवन गतिशील है और इस गतिशीलता में मृत्यु एक विराम है। मृत्यु शाश्वत जीवन का सत्य भी है। यह शब्द सांसारिक के लिए भय उपजाता है तो साधक के लिए मुक्ति का स्वर सुनाता है। मृत्यु सार्वभौमिक है। प्रो० नर्मदा प्रसाद गुप्त विचारक तथा चितक हैं। 'मृत्यु' जैसे विषय पर उनका शोधपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत है।

'मृत्यु' की-कल्पना का साहित्य विश्व की हर भाषा मे मिलता है, क्योंकि वह मानव-जीवन की एक अनिवार्य, किन्तु असाधारण घटना है। दूसरे, मृत्यु एक ऐसा रहस्य है, जो मनुष्य को तब अनुभूत होता है, जब वह उससे साक्षात्कार करता हुआ उसी की गोद में सदा के लिए सो जाता है और अपना अनुभव कह नही पाता। अनुमान के सहारे हर व्यक्ति मृत्यु का मूर्तीकरण बिम्बो और प्रतीको द्वार करता है। नाश्वान परिणाम देनेवाले उपकरण जैसे जहर, सर्प, प्रलय आदि के गुण-सादृश्य से भी मृत्यु के रूप को बिम्बित किया जाता है। गतिहीनता या क्रियाहीनता ही मृत्यु है, इसीलिए उसे चिर-निद्रा, चिरशान्ति आदि विशेषणों से भी पहचाना जाता है। आशय यह है कि मृत्यु की वैयक्तिक कप्लना सभी भाषाओं के साहित्य मे किसी-न-किसी रूप में व्याप्त है, लेकिन लोकमन की मृत्यु का लेखा अभी तक उजागर नही हुआ है।

मृत्यु का लोक मनोविज्ञान

लोक और मृत्यु का संबंध उतना ही अटल है, जितना लोक और जन्म का। इसीलिए लोकमन ने मृत्यु से जहाँ भय अनुभव किया है, वहाँ उससे आश्वस्त होने के लिए मानव की नश्वरता का सहारा लिया है। भय की ग्रथि के उपचार के लिए मृत्यु का लोकदर्शन स्थिर करना आवश्यक था। लोक ने परख लिया था कि मृत्यु अनिवार्य है, इसलिए मनुष्य की देह को क्षणभंगुर और आत्मा को अमर माना गया। आत्मा को परमात्मा की प्राप्ति के लिए देह का त्याग करना ही पड़ता है। इस रूप मे देह की नश्वरता अर्थात् मृत्यु परमात्मा से मिलन का माध्यम सिद्ध हुई। इस प्रकार मृत्यु के भय से मानव को छुटकारा मिला। इतना ही नही, इस संसार को माया-जाल का रूपकत्व देकर उससे मुक्ति का प्रयास किया गया और मृत्यु उस मुक्ति का द्वार सिद्ध हुई। लोककवि ईसुरी की फाग मे बखरी के रूपक द्वारा देह की नश्वरता का चित्र देखे —

बखरी रइयत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भीत उठी बेबाड़ा माटी की, छई फूस चारे की।
बेबंदेज डरी बेबाड़ा, जेइ मे दस द्वारे की।
किबार किबरियाँ एकउ नइयाँ, बिन कुची तारे की।
"ईसुरी" चाय निकारौ जिदना, हमे कौन बारे की॥

हम (जीव) और प्रियतम (ईश्वर) के ईसरी प्रतीक परम्परित हैं, लेकिन देह को "किराए का घर" कहना एक नये प्रतीक की सृष्टि है। "भारे की बखरी"; जिसकी दीवाले मिट्टी की हैं और उनको चारे-फूस से छाया गया है। उसमें न तो किवाड़ है और न ताले। फिर उस बखरी का स्वामी (ईश्वर) उसमे बसने वाले जीव को किसी भी क्षण निकाल सकता है। इस प्रकार लोक कवि ईसुरी ने एक आंचलिक रूपक के द्वारा मानव की नश्वरता स्पष्ट कर दी है। बहरहाल, लोक का दृढ़ विश्वास है कि देह नष्ट हो जाती है, पर आत्मा (जीव) देह के पिजड़े से मुक्त हो जाती है।

मृत्यु के निकट आने से लोकमन डरता अवश्य है, भले ही उस भय की शान्ति के लिए लाखो प्रयत्न हुए हों या हो रहे हो। कोई दुर्घटना, कोई रोग आदि और सामने फुफकारता काल-सर्प मन में मर्मान्तक पीडा भर देता है, तब "अरे राम" कहने तक की सामर्थ्य क्षीण हो जाती है। फिर भी अस्सी वर्ष पार करने के बाद वृद्ध जब प्राण त्यागता है, तब लोकमन का उत्साह उमड़ उठता है और उसके भीतर के बाजे बज उठते हैं। उसका विश्वास है कि उसने जीवन जी लिया है और उसकी "मृत्यु" आनन्द का द्वार खोलेगी। तभी तो वृद्ध की ठठरी को विमान का रूप दिया जाता है, बाजे बजते हैं, और शव को निछावर करते रूपये-पैसे फेंके जाते हैं। लोक इस आनंद की अभिव्यक्ति कही-कही गीतों मे व्यक्त करता है और कही-कहीं प्रशंसा से भरे वाक्यों में भीतरी मन उमग उठता है।

एक लोककथा में वेश्या अपने सेवक से कहती है कि वह जाकर पता लगाये कि अमुक व्यक्ति स्वर्ग या नरक का भागी हुआ है। यह सुनकर संस्कृति व्यवहार सीखने आया राजकुमार उससे पूछता है कि सेवक स्वर्ग या नरक का पता कैसे लगायेगा।

रीति-नीति सिखानेवाली वेश्या का उत्तर था कि यदि चार लोग (लोक) बडाई करें, तो मृतक स्वर्ग गया है और यदि चार लोग उसकी निदा करें, तो वह नरक पहुँचा है। तात्पर्य यह है कि मृत्यु के बाद स्वर्ग या नरक की कसौटी लोग ही है। यह तो सिद्ध ही है कि लोकमन मे उसी की प्रशसा का भाव होता है, जो लोकहित का कार्य करता है या जिसके लोकाचरण लोगो को प्रिय लगते है।

पीड़ा और आनंद की अनुभूति के बीच की मध्यवर्तिनी मानसिकता है शान्त रस के स्थायी भाव निर्वेद से परिपूर्ण वैराग्य की। विरागी लोकमन जगत के रागों से उदासीन भिक्षु की मुद्रा नियत्रण और सयम का प्रतीक होता है। उसमे जागतिक या भौतिक सुख-दुख के प्रति नकारात्मक भाव रहता है और पारलौकिक वैचारिकता से संपुष्ट शान्ति के प्रति सकारात्मक भाव। ऐसे लोकमन के प्रति लोक की श्रद्धा से यह स्पष्ट है कि लोक इहलोक के आधार पर परलोक के हित की मानसिकता निर्मित करने में अपनी सिद्धि समझता है।

लोक सस्कृति मे मृत्यु

लोक संस्कृति मे मृत्यु की भूमिका कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो लोकसंस्कृति के चितन पक्ष के लोक दर्शन और लोक मूल्य के निर्माण में मृत्यु की भागीदारी काफी उपयोगी रही है। मृत्यु ने लोक की दार्शनिकता को बहुत अधिक प्रभावित किया है और लोकादर्शो की परम्परा मे शाश्वत मूल्यो की प्रतिष्ठा की है। इन दोनो के प्रभावित होने से लोक संस्कृति की प्रवृत्तियों मे भी शाश्वतता की प्रकृति बनी है। मृत्यु एक अमिट सत्य है, एक शाश्वत घटना। यही कारण है कि लोक संस्कृति मे भी कुछ शाश्वत तत्त्व निरंतर क्रियाशील रहे है। दूसरा पक्ष है लोकाचरण का, जिसमें मृत्यु एक प्रमुख लोक संस्कार है, जिससे अनेक लोकाचार जुड़े हैं। यहाँ इन दोनों पक्षों में "मृत्यु" की क्रियाशीलता और उसके परिणाम को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

मृत्युः एक लोक संस्कार

जन्म और विवाह जैसे लोक संस्कारो के समान मृत्यु भी एक अनिवार्य, किन्तु प्रभावी लोक संस्कार है। जन्म और विवाह में न्यौता देने पर वही लोग आते है, जिनसे आपका संबंध निकट का है, लेकिन मृत्यु होने पर बिनबुलाये अधिकाधिक लोग एकत्रित हो जाते हैं। स्पष्ट है कि लोक का सर्वाधिक जुड़ाव अंत्येष्टि संस्कार से ही है। लोक का विश्वास है कि इस सस्कार में सम्मिलित होना एक पुण्य कार्य है और इस लोक विश्वास की रक्षा

आज भी हो रही है, जबकि लोक में हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस लोक संस्कार के उद्‌भव का एक लोक दर्शन है, एक इतिहास है और तत्कालीन परिस्थितियों से उत्पन्न एक नवजागरण है।

मृत्यु का लोक दर्शन

अंत्येष्टि सस्कार के मूलाधार के रूप मे जिन विशिष्ट दर्शनो ने वैचारिक मान्यताएँ प्रतिष्ठित की है, उन्हीं का लोकमान्य अवशिष्ट लोकदर्शन है। इस लोक दर्शन मे किसी खास दर्शन का लेबुल नही है। लोक की कसौटी पर जो मान्यता लोकोपयोगी और व्यावहारिक रूप मे खरी उतरी है, वह लोक दर्शन का अग बन गयी है। इस वैज्ञानिक विधि से तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल लोकबुद्धि ने दीर्घकालीन इतिहास-क्रम में जिन दार्शनिक मान्यताओं को लोक स्वीकृति दी है, उन सबका समुच्चय आज का लोक दर्शन है।

आदिम मनुष्य के लिए मृत्यु-भय का मनोविज्ञान था, जिसके समाधान के लिए विरोधी प्रयत्नों के बाद भी असफलता ही हाथ लगी। फिर भी दीर्घकाल तक मनुष्य के अनुभव जारी रहे और अंत में उसे स्वीकार करना पडा कि मृत्यु मानव-जीवन का अनिवार्य अग है तथा मृत्यु के उपरांत व्यक्ति जीवित रहता है। उनका यह विश्वास कि आत्मा देह से विलग हो जाती है, बाद के अनुभवों पर निर्भर था। मृत्यु होने पर वह सगे संबधी या प्रेमीजन के आस-पास मंडराता रहता है, जबतक उसे विधि-विधान से विदा नही किया जाता। आज भी लोक मे यह मान्यता है कि आत्मा नही मरती, परंतु वह दूसरी योनि मे घर बना लेती है। इस धारणा के फलस्वरूप आज भी एक चौडी थाली मे राख बिछा दी जाती है और रात के सूनेपन मे उस पर जो चिह्न बनता है, उससे योनि का अनुमान हो जाता है।

मृत्यु के बाद जीव की यात्रा की कल्पना और उसके लिए भोजन तथा जल की व्यवस्था आदिम काल से आज तक चली आयी है। परलोक के मार्ग में वैतरणी नदी पार करने के लिए एकमात्र सहारा ब्राह्मण को प्रदत्त गाय होती है, जिसकी पूंछ पकड़कर ही उस पार जाना संभव है। वस्तुतः यात्रा और उसमे आनेवाली नदी के सादृश्य से उसकी साधना और उसमें निहित कष्टों या बाधाओं का संकेत किया गया है।

इस लोक संस्कार में परलोक की चिता अधिक है। इस लोक की हर वस्तु अशुद्ध है। मृतक की हर वस्तु, यहॉ तक की देह भी उससे पृथक कर दी जाती है, ताकि वह शुद्ध रूप में परलोक की यात्रा कर सके। इस यात्रा में भूख-प्यास है, अंधकार है और खून एवं अस्थियों से भरी वैतरणी है, इसीलिए अंत्येष्टि संस्कार में भोजन-जल, दीपक और दान की सार्थकता है।

मृत्यु और लोकधर्म

लोकधर्म लोक का वह धर्म है, जो लोकहित में लोकमान्य होकर लोक द्वारा पालन किया जाता है। मृत्यु का शास्त्रीय धर्मों में बहुत महत्त्व रहा है। उदाहरण के लिए, धर्म के परमलक्ष्य, मोक्ष का द्वार मृत्यु ही खोलती है। यही बात लोकधर्म में मान्य है। इसीलिए मृत्यु होने पर अंत्येष्टि में लोक अपने-आप, बिना बुलाए एकत्र होने लगता है। तेरह दिन तक शोक मे सहानुभूति देना लोकधर्म ही है। इस लोक संस्कार के कृत्यो का स्वरूप धर्म ने ही निर्धारित किया है, जिसे कुछ लोक कवियों ने पाखण्ड तक कह दिया है। शास्त्रीय कर्मकाण्ड को लोक ने सरल बना दिया है और बहुत से कृत्यो को त्याग दिया है। दान का पात्र और वस्त्र के रूप मे रूमाल तक दिया जाता है। संक्षेप मे, लोकधर्म ने शास्त्रीय धर्मो से लोकोपयोगी तत्त्व ही ग्रहण किये है। अब तो मृत्यु भोज के विरोध मे भी आवाज उठने लगी है।

मृत्यु और लोकमूल्य

मृत्यु लोकमूल्यो के केन्द्र मे भी रही है। वस्तुतः मृत्यु अनिवार्य और असाधारण सिद्ध हुई है, अतएव लोक की चुनौतीपूर्ण समस्या के रूप मे खडी हुई। पहले लोक ने उसे गहराई से सोचा और विशिष्ट दार्शनिको के मतो को समझा, बाद मे मृत्यु का लोक दर्शन (फोक फिलासफी) बना। धार्मिक विद्वानों ने पारलौकिकता के लक्ष्य के लिए मृत्यु को एक सोपान ही नही, अनिवार्य माध्यम घोषित किया। लोक ने लोकोपयोगिता को लोकधर्म की कसौटी माना। दोनों के समर्थन से ही लोक-मूल्य का जन्म हुआ। मृत्यु को केन्द्र मे रखकर लोकमूल्य बनने का एक उपयुक्त उदाहरण चन्देल युग की आल्हा गाथा है। महाकवि जगनिक ने लिखा है कि -

मानुस देही जा दुर्लभ है, आहै समै न बारंबार।
पात टूट के ज्यो तरवर को, कभऊँ लौट न लागे डार ॥
मरद मनाये मर जैबे करो, खटिया पर कें मरै बलाय।
जे मर जैहै रनखेतन माँ, साकौ चलो अँगारूँ जाय ॥

"आल्हा" जैसी राष्ट्रीय लोकगाथा की ये पंक्तियाँ युद्ध - वीरता से बलिदान होने के परम मूल्य का आधार मृत्यु ही मानती है। इतना ही नही, आधुनिक काल की राष्ट्रीय कविताओ मे भी मृत्यु को लोकमूल्य की प्रेरणा के रूप मे मान्यता दी गयी है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के गीत - "है वही मनुष्य जो मनुष्य के लिए मरे" में मानवतावादी मूल्य की स्थापना के लिए मृत्यु की सार्थकता को महत्त्व दिया गया है।

लोक साहित्य में मृत्यु

लोक साहित्य की सभी विधाओ में मृत्यु को महत्त्व मिला है। खास तौर से मरणासन्न व्यक्ति की मानसिकता, मृत्यु का आभास, अंतिम इच्छा, मृत्यु के बाद के निर्देश, मृत्यु का वर्णन, अंत्येष्टि के लोकगीत, सती के लोकगीत, लोक कथाओं और लोक नाट्यों मे मृत्यु, लोकोक्ति साहित्य में मृत्यु आदि के द्वारा साहित्य मे उसके महत्त्व को समझने मे सुविधा रहेगी। साथ ही यह पता चल जाएगा कि लोक पर उसका क्या प्रभार रहा है।

मरणासन्न की मानसिकता

मरणासन्न की मनोदशा की अनुभूति मन के भीतर होती है, एव बाहर से उसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है। किसी लोक कवि के आत्मकथ्य से उसकी सही पहचान हो जाती है।लोक कवि ईसरी ने चौकड़िया फाग मे उस मनः स्थिति का यथार्थ प्रस्तुत कर दिया है—

आ गया मरबे के दिन नीरे, चलन चात जे जीरे।
अब तो देह अगिन बा रई ना, हांत पांव सब सीरे।
डारन लगे रात है नइय़ाँ, पात होत जब पीरे।
जितनी फाग बनाबें "ईसुर" गारे पंडा धीरे॥

मृत्यु की निकटता से जहा व्यक्ति अपनी शक्ति - सामर्थ्य के अभाव की चिन्ता करता है, वहां शरीर की नश्वरता की दुहाई देकर संतोष कर लेता है। अपने सगे-सबंधियो की दाय करता है, और अंत में निराशा की चरम सीमा पर राम के भरोसे अपने को छोड़ देता है —

बिगरी तबियत देत दिखाई, आज नीद ना आई।
सुमरत सीताराम परे रये, कटी न रात कटाई।
गांव बगौरा रजउ न ऐंगर, को दुख लेत बटाई।
बिन रघुनाथ प्रान की पीसी, मिटती नई मिटाई।
"ईसरी" कात कौन कौ को है, बिटिया भई पराई॥

मृत्यु का आभास

ईसरी ही ऐसा लोक कवि था, जो जीवन की अंतिम सांस तक फाग रचता रहा। असल में, उसे फागों में बात करने की आदत थी, वरना ऐसे संकट - काल में कवि के मुख से रचना निकलना एक आश्चर्य है —

लैलो सीताराम हमारी, बेराँ प्यारी।
"ईसुर" हंस उड़न की बेराँ, झुक आई अँधियारी॥1॥

मोरी राम-राम सब खाइयों, चल दये आज गुसइयाँ ।
दै लो दान बुलाकें बामन, छिरका दइयो गइयाँ ।
बैठी रओ जात न रइयौ, अब हम ठैरत नइयाँ ।
जियत पुन्न कर लेव "ईसरी", जम पकरे हैं बइयाँ ॥2 ॥
धीरे पण्डा इतै तो आहें, हमें मरो मुन पाहें ।
समजा दइयो सोच करें ना, होतब पै बस ना है ॥3 ॥
बालापन से मब लौं धधके, जीवन की होली मे ।
"ईसुर" काल भोर के पारे, धर दइयो डोली में ॥4 ॥

उक्त पंक्तियों में मृत्यु के आभास होने के कई प्रमाणिक साक्ष्य मौजूद है । हंस रूपी जीव उडने के समय अधकार छा जाना(1) ब्राह्मण को बुलाकर गायों के संकल्प का आग्रह करना और अपनी "रजउ" (प्रेमिका) से यम का बॉह पकडने की सूचना देना (2) फाग गायक धीरे पण्डा के आने पर यह समझाने के लिए कहना कि होनी पर किसी का वश नही है (3) जीवन के संघर्षो की होली में धधकने की तीखी अनुभूति से उबरकर निराशा प्रकट करना और प्रातः विदा करने का निवेदन (4) मृत्यु के आभासित होने के लक्षण तो है ही, साथ ही ग्रामीण लोकमन की बानगी भी देते है ।

अंतिम इच्छा

मरण की स्थिति मे सगे-संबंधी इच्छा के लिए पूछते हैं, ताकि उसे मरणोपरांत पूरा किया जा सके । ईसुरी अपनी इच्छा बिन पूछे कह देते है -

यारो इतनौ जसकर चिजौ, लीता अंत ना कीजौ ।
गंगा जू लौ मरे "ईसरी", दाग बगौरा दीजौ ॥

व्यक्ति की इच्छा उसके व्यक्तित्त्व की कुंजी है, इस आधार पर ईसुरी का अंतर्मन जहां अपनी "रजउ" के प्रति अनन्य प्रेम का प्रकाशन इस फाग मे करता है, वहां गांव मे ही अपनी निष्ठा व्यक्त करने की दृढ़ता जुटाता है ।

अत्येष्टि के लोकगीत

उत्तर भारत के अधिकाश जनपदों मे शुभ न समझे जाने के कारण इन गीतों का प्रायः अभाव है । सदन का लयात्मक रूप ही मृतक के प्रिय पदार्थों के नाम लेकर अथवा उसकी प्रशंसा में कुछ शब्द जोड़कर प्रचलित है । अगर हम नाम देना चाहें, तो रूदन गीत कहना उपयुक्त है । कही-कही शोकगीत के रूप में विशिष्ट जाति, वर्ग और पंथ में इनका प्रचलन है । ये शोकगीत चार वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं ।

विशिष्ट जाति या वर्ग के गीत	संत से प्रभावित गीत	करुण विलाप के गीत	तातिया के मरसिया

तीसरे प्रकार के भूत प्रेत के गीत हैं, जो अंत्येष्टि के अवसर पर नही गाए जाते। चौथे प्रकार के सतीगीत हैं, जो पत्नी के पति के साथ अंत्येष्टि मे और सती की स्मृति मे सती - स्मारक को झंकृत करते हैं।

रुदन-गीत

ये गीत ब्रजी, बुन्देली, खडी बोली, बघेली, छत्तीसगढी, भोजपुरी आदि जनपदो मे प्रचलित है। रुदन के स्वर मे मृतक की प्रिय वस्तुओ, आदतों, व्यापारो गुणो आदि के नाम लेकर लयात्मकता और संगीतात्मकता के प्रारम्भिक रूप का सहारा इन गीतो की वस्तु एव शैली के दो स्वाभाविक अग है। एक बुन्देली गीत की बानगी देखे, जिसे प्रौढ़ाएँ और वृद्धाएँ ही गाती है-

अरे ..... भइया ..... नौनी दुलइया ..... छोड़के ..... कितै ... चले ... गये।
अरे ..... भइया ... हम तौ ... मौ देखत ..... जियत ... हते .....।
तमाओ हँसके बोलबौ ..... अरे ..... ई ऑगन मे ... अबै तक ... झूलत ...।

शोकगीत

शोकगीतो का पहला प्रकार - विशिष्ट जाति या वर्ग के गीत - बिना वाद्यों के ब्रज की चौबे जाति और दक्षिण बघेलखण्ड के अमरकंटक एवं मंडला क्षेत्रो में आदिवासियों द्वारा गाये जाते है। डा. वैरियर ऐल्विन ने आदिवासियो के गीतो, दादरिया को तेरहवी के दिन गाया जाता बताया है। दोनो के एक - एक उदहारण देखें - (1) ब्रज का गीत-

काये के कारन जौ बये, और काये के हरे-हरे बॉस,
हरि रे किसन कैसें तिरयओ
अरे धरम के कारण जौ बये, मरन के काजे हरे-हरे बॉस, हरि०० ।
बेटी न व्याही अपनी, मढ़हे न लीयौ कन्यादान, हरि०
काये के कारण गऊ दई, काये के दीये गऊदान, हरि० ।
पार के काजें गऊ दई, और तरन कूं दये गऊदान, हरि० ।

उक्त गीत में हरे बॉस का पौधा लगाना, पुत्री का कन्यादान एवं विवाह, गोदान को मरणोपरान्त मोक्ष का साधन कहा गया है। लोक - विश्वास बॉस के बढ़ने से वंस की वृद्धि होती है।

भूत-प्रेत के गीत

लोक विश्वास है कि मृत्यु के बाद भूत-प्रेत की योनि मे रहना पड़ता है, इसीलिए स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय रूप में भूत-प्रेतों की कथाएं प्रचलित हैं। स्थानीय भूतों मे कोई गोंडबाबा, ठाकुर बाबा, दूला-देव, नट बाबा आदि उनके चबूतरों पर पूजित होता हैं, जबकि घटोई बाबा सैयद आदि सर्वत्र हैं। बुन्देलखण्ड के सर्वाधिक चर्चित लोकदेवता हरदौल प्रेत योनि के चमत्कारो के कारण ही उत्तर भारत मे पूजे गये। इस जनपद मे लोगो का यह भी विश्वास है कि व्यक्ति के दूसरे विवाह मे सोने या चॉदी के पत्ते पर पहले मृत पत्नी के प्रतीक स्वरूप स्त्री की आकृति खुदवाकर चढावे में इसलिए चढायी जाती है कि उसके पहनने से मृत सौत नव विवाहिता को प्रताड़ित नही करेगी। वस्तुतः भय और अनिष्ट की आशका ने ही भूत - पूजा और उसके संबंध मे गीत - गायन को जन्म दिया है। बुन्देली के एक गीत की पक्तिया देखे -

आज मोरे भूतन की भिजमानी।
कौना खो कइये पांच बिराम्हन, कौना के पांच फकीर।
भूमिया को कइये पांच बिराम्हन, सैयद के पॉच फकीर। आज।
मन भर कनक सदा दूधा, छः घट सीतल पानी।
पी गए दूद कनक सब फॉकी, अचमन सीतल पानी। आज।

लोक कथाओ और लोक नाट्यों मे मृत्यु

लोक कथाओ मे मृत्यु जैसी असाधारण घटना का अधिक महत्त्व उनके कथानक, चरित्र और उद्देश्य की संरचना, परिवर्तन और प्रकाशन मे केन्द्रीय धुरी की भूमिका अदा करता है। यह तो स्पष्ट है कि मृत्यु का संबंध धर्म से अधिक है, क्योंकि धर्म के गंतव्य - मोक्ष का द्वार मृत्यु ही है। इस कारण व्रत कथाओ मे मृत्यु प्रधान घटना रही है। नागपंचमी की कथाओं में नाग के बच्चों की मृत्यु का बदला नागिन लेती है। जब उसे डसने आती है, तब वह कटोरे में दूध रखकर उसको पिलाती है। लड़की का प्रेम देखकर नागिन सभी का विष खीचकर जीवित कर देती है। हरछट व्रत कथा में एक अहीरन का बच्चा हलवाहे के हर द्वारा पेट फट जाने से इसलिए मर जाता है कि अहीरन ने व्रत के दूध में मिलावट की थी। जब उसने व्रतधारियो से व्रतभंग के पूर्व सच बता दिया, तब बच्चे का पेट कांस से सिलने से बच्चा जीवित हो गया। करवा चौथ की कथा मे बहिन द्वारा चन्द्रोदय के पूर्व भोजन करने से व्रत भंग हो गया और उसका पति मृत हो गया। व्रत के स्वरूप की रक्षा करने से उसका पति पुनः जीवित हो गया। सोमवती अमावस्या की कथा में धोबिन के द्वारा वैधव्य से बचाने के लिए युवती को सुहाग देने से उसका पति मर गया। पातिव्रत्य धर्म के पालन से उसे आभास हो गया था, इसलिए उसने पीपल वृक्ष की 108 बार परिक्रमा

खपरियों के टुकड़ो से की, जिसके फलस्वरूप पति जीवित हो गया।

उक्त कथाओ में मृत्यु का कारण हिसा, असत्य, या मिलावट, व्रत-भंग और सौभाग्य का दान है, जबकि पुनर्जीवित होने का कारण प्रेम, सत्य, व्रत-पालन और पातिव्रत्य है। स्पष्ट है कि हर नारी को प्रेम, सत्य शुद्धता, व्रत-पालन, और पातिव्रत्य का निर्वाह आवश्यक है, क्योकि उनसे मृत्यु तक टल जाती है। स्पष्ट है कि मृत्यु इन लोक कथाओ के उद्देश्य की संवाहिका है और समाज मे लोक मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है।

लोकनाट्यों में मृत्यु को उतना महत्त्व नही मिला, जितना कि लोक कथाओ मे दिया गया है। वीरता या राजभक्ति - परक लोक नाट्यो में मृत्यु लोकोपयोगी होने के प्रमुख अभिप्राय बन गयी है। लोकोत्सवी, प्रेम-शृंगार परक, भक्तिपरक, और धार्मिक लोकनाट्यो मे मृत्यु का अभाव-सा है। सामाजिक और व्यंग्य - परक नाटको में मृत्यु की भूमिका कम है, केवल ग्रामीण लोक के जमीन-संबंधी संघर्ष या अंधविश्वास अथवा रूढ़ियों पर व्यग्य करते नाटकों मे मृत्यु का माध्यम ग्रहण किया गया है।

लोकोक्तियों में मृत्यु

बुन्देली कहावतो मे मृत्यु की चुनौती के सामने मानव को विवश और पराजित बताया जाता है, जिसका साक्ष्य "मौत की दबाई नइयॉ" "मौत से सब हारे", "मौत के आगे कौऊ कौ बस नई चलत", "अमरौती खाके को आओ" जैसी उक्तियॉ देती है। बुन्देली लोक साहित्य मे एक विधा है - औठपाय, जिसका अर्थ अठपाव या शरारत है।

इन शरारतो के परिणाम - मृत्यु से अवगत कराकर लोकवर्जनाओ की बानगी प्रस्तुत की गयी है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

कुऑ को पनघट बैठके, गोड़ लये लटकाय।
पीठ मिड़ाबैं सौत से, जेई मरबे के औठपाय ॥1 ॥
एक ऑख तो कुऑ कानी, दूसर लई मिचकाय।
भीत पै चढ़के दौरन लागी, जेई मरबे के औठापाय ॥ 2 ॥

लोक बात की बात मे व्यंजना से लोकोक्ति रचने में समर्थ है। आज तो लोगों को "मरबे की फुर्सत नइयॉ", नही तो "मरबे कों का हाथी-घोड़ा लगत" वैसे इस संसार से "मरे लौं कौ नातो" है और फिर "मरे-पूत की बड़ी ऑखें", जैसे गुजराती में "मुई भैंस ने धी घणो" और मराठी में "मेल्याचे डोले पशाएवढे"। मृत्यु देश के पूरे जनपदों में एक संदेश, एक-सा ज्ञान और एक-सी वैराग्यनी शान्ति ही नही, पूरी मानव जाति, पशु-पंछी और सभी जीवधारियो को "वसुधैव कुटुम्बकम्" की सीख देती ही।

निष्कर्ष

लोक का लोकमन दो प्रकार का होता है - चेतन एवं अवचेतन। चेतन लोकमन "मृत्यु" देखता है, महसूस करता है और उसके संदेश को ग्रहण करता है और यह सब समय के एक निश्चित अंतराल मे अवचेतन में पहुँचकर सुरक्षित रहता है। इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के बावजूद अवचेतन लोकमन से मृत्यु का भय निकाल देना अथवा उस मानसिकता का मार्गीकरण एक कठिन कार्य है। लोकमन मृत्यु के यथार्थ का सामना करने में समर्थ नही है। इसी वजह से वह मृत्यु के बाद की व्यवस्था मे लीन हो जाता है। वस्तुतः मृत्यु से पराजय का चेतन अनुभव उसे बार-बार कचोटता है और इस कचोट की प्रतिक्रिया मे ही उसने जीव के सूक्ष्म शरीर की यात्रा, उसकी बाधाएँ, उसके पडाव, और उसका गतव्य ठीक वैसा ही बुना है, जैसा भौतिक यात्रा मे होता है। गतव्य के लोक की कल्पना भी जागतिक है। यदि गहराई से सोचा जाय, तो मृत्यु को लोक चिन्तन-लोकदर्शन, लोकमूल्य लोकधर्म का समुच्चय निश्चित ही दार्शनिक मष्तिष्क की उपज है। प्रश्न कृत्रिम या काल्पनिक बनावट का नही है, क्योकि वह लोकमान्य और लोकगृहीत होकर चिन्तन और आचरण, दोनो रूपो मे लोक का हो गया है।

. भारतीय लोक संस्कृति मे ही नही, विश्व भर की लोक संस्कृतियो मे मृत्यु के लोकचिन्तन और लोकाचरण में अनेक समानताएँ हैं, जिनसे मृत्यु और मानव का दीर्घकाल संघर्ष, बौद्धिक समझौता और उनसे मथित लोकोपयोगी लक्ष्य का अमृत सार्वभौमिक और सार्वकालिक हो गए हैं। विश्व भर का लोक साहित्य इस तथ्य का प्रामाणिक साक्ष्य है। मृत्यु संबंधी लोक चितन, लोकाचरण और लोक साहित्य की यह समानता से सिद्ध है कि मानव की सर्व प्रधान समस्या के समाधान के लिए विश्व भर का मानव एकजुट होकर सोचता और प्रयत्न करता है। भेदभाव उत्पन्न करना विशिष्टों का काम है, लोक तो समानता और समरसता का प्रतीक है। लोक संस्कृति और लोक साहित्य पर प्रारंभिक लेखन के समय "लोक संस्कृति के व्यापीकरण की जरूरत" नामक शीर्षक से मैने लिखा भी था कि विश्व-शान्ति लोक संस्कृति के व्यापीकरण से ही संभव है और निष्कर्ष के रूप में पुनः यही दोहराता हूँ। □

एक आदि प्रश्न

अमरेंद्र किशोर

अमरेंद्र किशोर अपने लेखो मे जीवन की सघनता, उत्साह और अवसाद सब एक साथ लेकर चलते हैं। अपनी बात बेहद कलात्मकता और संयम से कहते हैं। ये उत्तर भारत के आदिवासी क्षेत्रो का मानवीय अध्ययन कर रहे है, कोरी समाजशास्त्रीय पैमाइश नही। जनजातीय समाज से गहरा लगाव इनके लेखो में दिखाई देता है।

आदिवासियो को लेकर कई तरह की मान्यताए है। 'ये हमारी संस्कृति के धरोहर है', 'भारत के मूल वाशिदे है,' 'इनकी परपराएं आज भी बेदाग और अक्षुण्ण है।' 'सभ्य समाज' इन्ही विचारो को लेकर जनजातीय विकास की रणनीति तय कर रहा है। हम उन्हे आदिम कहते हैं। दूसरी ओर शीर्षस्थ नीति-नियंता उन्हे असभ्य, क्रूर और पिछडा मानते हैं। अतः इस दृष्टि के अनुरूप वनांचलो के विकास की ऋचाएं गढी जा रही है। मंत्रालयों से लेकर सचिवालयो मे ठसा-ठस भरी संचिकाएं आदिवासी कल्याण की संतोषप्रद आश्वस्ति देती हैं। सोनभद्र, पलामू, बस्तर, कालाहांडी जैसे दर्जनों भू-भाग विकास की चरम स्थिति पा चुके है। यह उस विकास का अर्द्ध-सत्य है जिसे भावुकतावश हम झुठला नही सकते। इसके अलावा पूर्वाग्रही समाज जनजातीय समाज से जुड़ी तमाम कल्याणकारी योजनाओं का या तो समर्थन या विरोध ही करता मिलेगा। इस समाज का शेष सत्य तो यह है कि आदिवासियों की किस्मत मे इंसानी जीवन सभी असद आयाम खुमसे हुए हैं। अतः वनवासियों के सत्य आपसी बहस-विवाद की वजह से उपेक्षित हो

जाते हैं। आजादी के बाद यह सिलसिला बड़ी तेजी से हमारे अंतर्मन में निराशा पैदा कर रहा है।

उत्तर-पूर्वी भारत के अलावा देश के सारे जनजातीय इलाकों की तस्वीरो में एकरूपता है। उसी तरह आजादी के पहले का वनवासी समाज आज भी पहले वाली वर्जनाओं, अवरोधो और संकटो से जूझ रहा है। कुछ भी नही बदला। चंद सुविधाएं उन्हे जरूर दी गई है लेकिन इसके लिए इन्हे भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। आंकड़ो का जाल-जंजाल तो बड़ा ही मायावी होता है। विश्वास कर ले तो बड़े व्यापक भ्रम और धोखे मे जीते रहेगे। यदि आंकडे सफेद झूठ है तो आप-हम घोर निराशावादी बन जाते हैं। उपलब्धियो को उजागर करते आंकडे सच्चाइयो से सरोकार कहां रख पाते है। यदि जनजातीय भू-भागों मे समुन्नत विकास सुचारू रूप से संपन्न हो रहा है तो बस्तर और कालाहांडी मे हर साल दर्जनों आदिवासी क्यो मरते है? कोई मलेरिया से मर रहा है तो कही कुपोषण से बच्चे काल देवता की भेड चढ़ रहे हैं। कभी ठाणे (1992) तो कभी अमरावती (1993) चर्चित होते है। उड़ीसा के आमझाड़ी गाव तो अतरराष्ट्रीय मीडिया के बूते पर सर्वविदित हुआ। इन चर्चाओं का कारण सिर्फ यही है कि इन इलाको मे न अनाज मयस्सर होता है और न ही शुद्ध पानी। आजाद देश के आदिवासी क्या खाते हैं? कैमूर, पलामू और सोनभद्र के वनवासी गर्मी के दिनो में कंदा गोठी और चकोर घास खाकर गुजारा करते है। और बस्तर? वहां के बीजाकुड़ा गाव के लोग फसल तबाह होने की स्थिति मे जंगली जडी 'बैजन कडा' खाकर पेट भरते हैं। इस जडी के लगातार सेवन से गुर्दे खराब हो जाते है। उसी तरह शंकरपुर के कोरबा वनवासी जंगल फल-फूल की कमी की स्थिति में बंदरो का मांस खाते है। हाय रे आजाद देश का हतभाग! संविधान के प्रस्तावना में लोक-कल्याणकारी राज्य का संकल्प और भूख से बिलखते-तडपते आदिवासी-लोकतंत्र कितना अंतर्विरोधो में सांसें ले रहा है। पालने से लेकर कब्र तक सुरक्षा देने के वायदे कितनी नृशसता से दमित किये जाते हैं।

बिहार के गढ़वा, चतरा और पलामू जिलो के 2696 गांवो का हाल मत पूछिए। नगेसर भूइयां को बीते दस सालो से भात (चावल)-दाल नसीब नही हुआ। कवल गांव के नगेसर की कहानी और भी शोचनीय है। कडवे कंद-मूल से पेट भर पाना संभव नही होता। अतः वह रातभर इकट्ठे कंद-मूलो को पानी में डालकर उनका कड़वापन दूर करता है। जहरीले कंदा-गोठी का कड़वापन दूर करना तो नगेसर के लिए मुश्किल नही है। लेकिन व्यवस्था में घुली-मिली कड़वाहन कैसे दूर हो—यह सवाल देश के सात करोड़ आदिवासियों के सामने है। आदिवासियो की यह भूख मिटनेवाली नही है। जब तक व्यवस्थातंत्र में बुनियादी परिवर्तन नही होते तब तक जनजातीय विकास में भी आधारभूत बदलाव दुष्कर हैं।

आजादी के बाद के भारत का रूप कितना संवारा गया है। रोज-बरोज समाज के साथ प्रगति के नवीन आयाम जुडते चले गये। आत्मनिर्भरता पचवर्षीय योजनाओ का मूल स्वर था। पहाड़ों की पसलिया तोड़-तोड़कर कंक्रीट के जंगल उगाये गये। ऊर्जा-संपन्न होने के लिए नदियों की धार मनमाने ढंग से रोकी गयी। जंगलो के बीच उत्तुंग चिमनियां धधक उठी। दस-पंद्रह वर्षों मे करतब और तमाशे खूब किये गये। जो काम यूरोपीय राष्ट्रो सहित अमेरिका ने दो सौ सालों में पूरा किया, उसे हमने बीस साल मे स्पर्श कर लिया। कितु इसके नतीजे क्या हुए? हमने इसे कभी गंभीरता से लिया है? कभी नही। यह विकास पूजीवाद में पगा होता है। तत्काल मिलता मिठास बाद में कड़वापन देता है। आदिवासी इलाको मे ऐसा ही हो रहा है। इनके लिए विकास मात्र छलावा है, प्रपंच है। देश का हर तीसरा विस्थापित आदिवासी है। इतना ही नही, एक आदिवासी अपनी पूरी जिदगी मे करीब चार बार विस्थापित होता है। पुनर्वास की योजनाएं भी उनके लिए मृगमरीचिका हो जाती है। औरंगा बांध के तीस विस्थापित परिवारों के प्रति सरकार का रवैया कैसा रहा है? रिहंद बॉध निर्माण को लेकर बड़ी दारुण कहानी है। नर्मदा घाटी में खतरे की घंटियां बज रही है। अतः अपने नीति-नियंताओ से पूछना आज जरूरी हो गया है कि इस विकास की कीमत हम कब तक चुकाते रहेंगे।

विकास अपने साथ कैसे-कैसे प्रभाव छोडता है, यह एक ज्वलंत प्रश्न है। चूंकि विकास के तीन आधारभूत लक्ष्य होते हैं—उत्पादन, व्यवस्था और संस्कृति का संरक्षण। अतः जडो की तलाश व सास्कृतिक पहचान के उद्देश्य जब विकास से दूर हो जाते है तो प्राप्त दुष्परिणाम जन-जीवन के लिए घातक हो जाते हैं। आज से दस साल पहले चार सौ आदोलनो की ऐसी सूची तैयार की गयी थी जो जातीय भावना पर आधारित थे। चूंकि विकास की विकृतियों ने जगली जीवन की शांति और सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। अतः सारे वनवासी आज जल, जमीन और जंगल के संरक्षण के लिए आंदोलित हैं, आगे भी रहेगे।

सारे आदिवासी क्षेत्र ईसाई मिशनरियों की कर्मभूमि बन चुके हैं। उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही वनवासियो की बदहाली का लाभ धर्म-प्रचारको ने उठाया है। इसके नतीजे भले और बुरे दोनों तरह से देखने को मिले हैं। उत्तरी-पूर्वी भारत को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में विकासोन्मुख करने का बड़ा श्रेय इन मिशनरियो को जाता है। यहां जो भी विकास हुआ, वह शिक्षा पर आधारित था। किन्तु शेष भारत के आदिवासी इलाके रोजगारोन्मुख विकास के जरिए आजादी के पचास साल पूरी करने जा रहे हैं। यह विकास दाल-रोटी का जुगाड तो जरूर कर देता है कितु इसके दूरगामी परिणाम सुखद नहीं होते। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि जिन जनजातीय इलाकों का थोड़ा विकास संपन्न हो रहा है, वह भी अपनी सांस्कृतिक निजता त्यागकर ही। आदिवासी एक नही, कई षड्यंत्रों के

शिकार हो रहे है। स्वतंत्रता-पूर्व एक व्यापक योजना तय की गई थी। इसके अनुसार उ० पू० भारत, छोटा नागपुर तथा केरल के कुछ भाग में ईसाई राज्यो के गठन का विचार रखा गया था। ये प्रस्तावित राज्य है हैदराबाद तथा पूर्वी पाकिस्तान के बीच एक शृंखला व एक गलियारे का काम करते। खैर, यह योजना तो सफल नही हो सकी लेकिन गिरिजनों की सांस्कृतिक अस्मिता की शुचिता जरूर भ्रष्ट की जा रही है।

आदिवासी आज हर तरह से शोषित है। उन्हे 'आदिम' शब्द से निरूपित करने के बाद हमने 'उद्धार' का काम शुरू किया। ऐसी स्थिति में हमारे संकल्प सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप से बेहद अंतर्विरोधी हो गए। सत्ता और समाज ने बेहद साधारण तौर से उन्हें 'अविवेकपूर्ण जीवन जगल मे जीने वाले लोग' मान लिया। इसके आगे क्रूर, असभ्य, अमर्यादित जैसे विशेषण उनके साथ जोड़े गए। सीमांत प्रदेश विनियमो के प्रचलन ने जनजातीय व्यवस्था को मटियामेट कर दिया। वेरियर एल्विन जैसे महान मानवशास्त्रियों के विचार लोकसिद्ध होते ही 'आरक्षित क्षेत्र' की संकल्पना अस्तित्व में आयी। अर्थात् वनवासी समाज के चारों ओर एक परिवृत्त बनाया गया ताकि उनकी परंपरा व संस्कृति यथावत रहे। लेकिन इस परिवृत्त को लांघ-लांघकर यीशुवादी, सूदखोर बनिए, बागानों के लिए गुलाम और उन पर चाबुक चलाने वाले ठेकेदार जंगलों में बसते चले गए।

जनजातीय समस्याओ की जटिलता लगातार बढती जा रही है। पूंजीवाद के वैश्विक परिवेश में संपूर्ण प्राकृतिक संसाधन बहुपयोगी हो गए। आदिवासी विकास नीति की निर्माण प्रक्रिया मूल रूप से समुद्र-मंथन का पर्याय सिद्ध हुई है। इस मंथन मे अमृत 'सभ्यजन' ले गये। आज भी हम उन इलाको से अमृत ला रहे है। शेष बचा हलाहल गिरिजनों के हिस्से पड़ा। इसके अलावा वनवासियो के लिए आज तक कोई श्रम नीति अस्तित्व मे नही आयी। यह व्यवस्था उनके शोषण की अनेकानेक विधियां ढूंढती है। बस्तर की हस्तशिल्प लौह मूर्तियां विदेशो में बेहद प्रसिद्ध हैं। राज्य सरकार शिल्पकारों को चालीस रुपए प्रति किलो की दर से लोहा बेचती है। सरकार आदिवासी शिल्पकारो से साठ रुपए प्रति किलो की दर से निर्मित मूर्तियां खरीदती है। महानगरीय बाजारो में ही ऐसी एक मूर्ति की कीमत सौ रुपए से लेकर पांच हजार रुपए तक होती है। पलामू के जंगलों से व्यापारी चार रुपए से लेकर चालीस रुपए प्रति किलो की दर से कच्चे लोह (लाख) की खरीद करते है। तेंदु पत्ता की खरीद तीन सौ रुपए प्रति क्विटर है। उन्हे सुखाकर व्यापारी अठारह सौ रुपए प्रति क्विटर की दर से बेचते हैं। आखिरकार यह सब उनके साथ क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? कौन जबावदेह है—आप, हम या और कोई? आजादी के बाद भी आजादी पाने का सवाल कई मायनों में हमारे लिए घातक होता जा रहा है।

सुनने में आया है कि जगल अब किसी व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य या राष्ट्र की

संपत्ति नही रहेगे। सन् 47 के पहले तो जंगलो के साथ आदिवासियो का सनातन संबंध था। जीवन का राग-रंग सब के सब हरियाली के कुबेर पर ही आश्रित थे। तब हमने महसूस किया कि जंगलो का विनाश इन्ही वनवासियो की वजह से हो रहा है। आजादी के बाद कई कानून बने। इसके जरिए बधन ही बंधन देखने को मिले। प्रकृति और पर्यावरण की चिता मे हमने दर्जनो कानून वगैरह बनाकर आदिवासियों की जीवन शैली पर खग्रास लगा डाला। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की आस बडी बेदर्दी के साथ निराशा मे बदलती चली गई। युगीन विसगतियो, मानव नियति और वर्तमान सघर्षशील परिस्थितियों ने एकाकार होकर आदिवासी जीवन की सहजता को नष्ट कर डाला। विकास की उद्धत अभिलाषा मे हमने अपने लोगो का बडा अहित किया है। इस पूरी प्रक्रिया मे हम सवेदन-शून्य हो गए। प्रकृति के मनोनुकूल विकास को नकारकर हम कुछेक सालो मे समुन्नत विकास की दौड मे शामिल हो गए। किन्तु यह यथार्थ नही था। यथार्थ तो अब महाविनाश के रूप मे प्रकट हो रहा है। आधुनिक विकास ने मानवीय सबदो मे अजनबीपन का भाव पैदा किया है। रिश्तो के मध्य गहराते अकेलेपन ने हमे अंतर्मन से निर्मम बनाया है। 'सभ्य समाज' और आदिम समाज के बीच पड़ी दरारे और उनसे उपजती स्वार्थलिप्सा ने जगलो मे असतोष पैदा किया है। हमारी भोगवृत्ति ने जंगल और जगली समाज के सौदर्य को बेहद नृशसता के साथ विरूपित किया है। अतः संवादशून्यता से जनमते अहसास की परिणति लगातार हिसक होती जा रही है। देश के प्रायः हर आदिवासी इलाके मे लाल परचम मे लिपटा हिसाचार बड़े आक्रामक ढंग से समानांतर सत्ता स्थापित करने मे सफल रहा है। इस हिसक सत्ता के अधीन आदिवासी न तो सुखी है और न ही सुरक्षित। बल्कि वे दोहरी मार के शिकार हो रहे है। नक्सलियो से संबंधित सूचना नही देने की स्थिति मे पुलिस आदिवासियों को प्रताडित करती है। यदि किसी आदिवासी ने कुछ बता दिया तो वे नक्सलियो के निशाना बनते है। विदर्भ के सैकडों आदिवासी पुलिस की नाराजगी की वजह से आतकवाद और विध्वसक गतिविधि निरोधक कानून (टाडा) की चपेट में आ गये। गढचिरोली और सुकड़ी इलाकों के वनवासी अपनी दास्ता सुनाते-सुनाते रो पड़ते है। जगलो मे न्यूनतम भोजन जुटाने के लिए कंद-मूल इकट्ठा करने गये आदिवासी पुलिस की गिरफ्त मे आ जाते हैं। आशंका व्यक्त की जाती है कि आदिवासी जंगलो मे बारूदी सुरग बिछाने जाते है। अतः 'टाडा' के तहत उन्हे थाने और जेल मे हमेशा के लिए बद होना पड़ता था।

आज एक आदि प्रश्न है। यह कई ज्वलत सवालो का सम्मिलन है। धूसर पहाड़ियो का अछोर विस्तार अपने अस्तित्व को लेकर क्यो आशकित है? घन अंजन, वर्णवाले मेघ क्यो फीके और निस्तेज होते जा रहे हैं? जंगलों और वनवासियो के लिए प्राणवान बने बरसात मे हहकारने वाले झरने आंसुओं की धार क्यों बनने को विवश हैं? जगली फूलो

की गंध मे डूबते बतास क्यो थम रहे है? बनैली धरती पर खिलती चॉदनी मे वह सात्विकता क्यो नही रही? उजाड़ पड़ते जंगलों में श्मशान की भॉय-भॉय की खामोशी है। कुछ नही बचेगा। कुंजव कलरव की टेक धीमी पड़ चुकी है। चारों ओर सियार रो रहे है। टिटीहरी पक्षी का रोदन और अंदर से हिला देता है। रात-रात भर चलनेवाला नृत्य—उन पर सधे मन से बजती मादल, आदिवासियों के साफ-सुथरे घर और उनकी नारियो के बगुल पंख कसे परिधान दोहन के इस दौर मे कितने दिन तक बचेगे। उम्मीद की कोई किरण नही दिखती। पहले बघेरखंडी आदिवासी युवती करमा के गीत गाती थी—'यह युवक बडा अलबेला है, देखने मे सुहावना। पीले रंग का कौन फूल फूलता है और लाल रंग का कौन फूल? और कौन फूल रस से भरा हुआ फूलता है, जहां यह सुहावना छैला दरबार लगाता है। राई का फूल पीला फूलता है—सेमर का फूल होता है लाल-लाल। महुआ का फूल रस से भरा फूलता है, वही वह छैला अपना दरबार लगाता है।' आदिवासियो का धर्म, आचार-विचार, गीत आदि प्रकृति से जुड़े हैं। कितु प्रकृति का अस्तित्व सकटग्रस्त है। औद्योगीकरण और विश्वबाजारवाद की भेट चढ़ती वन्य संस्कृति का महत्त्व बडी तेजी से धूमिल पडता जा रहा है। तो भविष्य में क्या बचेगा? बघेलखंडी युवती के गीतो की प्रासंगिकता कितनी रहेगी?

आजादी की पचासवी वर्षगांठ मना रहा देश अपनी समृद्धि पर चाहे जितना भी मुदित हो ले, वह इस सच्चाई को नही नकार सकता कि वन, पहाड़, पठार और तराई मे रहने वाले आदिवासी काल के बड़े नाजुक दौर से गुजर रहे है। वे संसार-सपन्न हैं किन्तु भूखे-प्यासे मर रहे है। मैदानी इलाको मे गले की तरावट और खेतों मे पटवन के लिए पानी चाहिए तो उपाय क्या है? नर्मदा घाटी परियोजना को लेकर महत्तम आकाक्षाएं है। कई राज्य सुखी-संपन्न होगे। यही आश्वस्ति है। लेकिन इसके एवज मे सैंकडो गांवो की जलसमाधि देखने को मिलेगी। प्राचीन संस्कृति के कई धरोहर डूब जायेगे। यह कहानी नर्मदा की है। एक बांध बनाये जाने का मतलब है कि हजारो हेक्टेयर भूमि की बर्बादी। देश के सारे कोयला खदानों का 98 प्रतिशत भू-भाग जनजातीय इलाकों मे है। औद्योगीकरण से कई तरह की विसंगतियां इसानी जीवन को लुंज-पुंज बना देती है। इसकी चपेट में फंसे आदिवासियो का हर तरह से शोषण होता है। वहॉ की बेटियां राष्ट्रीय राजमार्गो के किनारे बने ढाबो की भेट चढ रही है। महाराष्ट्र के पुणे-धुले इलाकों के आदिवासी एड्स के शिकार होते जा रहे है। भविष्य मे यह समस्या और भी भयंकर होगी।

जीवन की हकदारी से जुड़ी सारी समस्याए लोक-कल्याणकारी राज्य की संकल्पनाओ को निष्प्राण कर रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार को लेकर जनजातीय समाज गहरे अंधकूप में गिरता जा रहा है। आरोप है कि तमाम जनजातीय कार्यक्रमों को

बंदर के मृत बच्चे की तरह अपनी छाती से चिपकाये हुए सरकार सच से मुंह चुरा रही है। वह उसकी मौत और सडांध की चर्चा करने से कतराती है। लेकिन इस आरोप के साथ हमारी दायित्वहीनता भी संलग्न है। आज आदिवासी जिस हाल मे जी रहे हैं, उसके प्रति क्या केवल सरकार के लोग ही सक्रिय हों? समाज के व्यक्ति-व्यक्ति का दायित्व क्या है? सभा-संगोष्ठियो में शब्दों से मुदित करने की प्रवृत्ति मूल रूप से बुद्धि-विलास ही है। भावुक रोदन से लरजती चिताओ का निष्कर्थ प्रायः शून्य ही होता है। ये सारे आरोप ऐसे ही सेमीनारों की उपज है।

हमारी वन नीति समस्याओ का समाधान नही है। आज वन पंचायत की आवश्यकता महसूस की जा रही है। जगल के प्रत्येक पेड पर आदिवासियो का अधिकार हो। एक आदिवासी के जिम्मे एक पेंड हो। हर साल एक आदिवासी एक वृक्ष लगाए। लेकिन पेडों की जाति क्या हो? वे फलदार हो, छायादा हो। वे इतने सघन हो कि उनसे हमारे कई उद्देश्यो की प्राप्ति हो सके। हमारे अतर्मन मे ईमानदारी बडी जरूरी है। अकेले सरकार क्या कर लेगी, यदि हमारी नीयत मे खोट हो तो सारे संकल्प प्राणहीन हो जाएगे। केरल के सक्रिए एक गैर सरकारी सगठन (एन जी ओ) ने वनरोपण की परियोजना शुरू की। लेकिन इसके निष्कर्ष बड़े निराशाजनक निकले। रिपोर्ट है कि परियोजना की कुल लागत 13 लाख रुपए थी और मात्र 6 पौधे लगाए गए। उनकी दलील थी कि कुओं की कमी से वनरोपण का काम नही हो पाया। अब सरकार क्या करें?

जनता जागरूक हो। एक जनादोलन की जरूरत है। वनो मे आग की लपटे तेज न होने दें। आयुर्वेदिक जडी-बूटियो का जबर्दस्त दोहन हो रहा है। अपने देश मे 300 प्रकार की जड़ी-बूटियो का संरक्षण जरूरी है। वनो पर आबादी का बोझ बढ रहा है। वनवासियो की प्रतिबद्धता से ही वनो का बचाव हो सकता है। हर साल वनों से 900 करोड़ रूपए प्राप्त होते हैं। हम इसे बढ़ाना चाहते है तो वैज्ञानिक वनीकरण के जरिए ही यह संभव हो सकता है। केरल में यह प्रयोग पूर्णतः सफल रहा है। केरल राज्य के इस फार्मूले को लागू करने के अच्छे नतीजे सामने आ सकते हैं। आदिवासी पिछड़े है और जनजातीय इलाके भी पिछड़े है। उन्हे और उनके समाज को साधन-संपन्न कैसे करे?

1988 की वन नीति का मानना है कि 'वन प्रबधन से जुडे सभी प्राधिकरण वनवासियों से जुडें।' वनवासियो का इतना अधिकार तो जरूरी है कि वे सहजता से जंगलो मे अपना मवेशी चरा सकें। समस्या है कि घास की कमी से वर्षा के दिनो मे मिट्टी खँगलने लगती है। विशेषज्ञों ने पशुपालन को पर्यावरणीय दृष्टिकोण से गलत ठहराया है। पशुओं की आबादी जंगलो के क्षेत्रफल के अनुरूप ही हो; अन्यथा चारे का कोई दूसरा विकल्प ढूंढना पड़ेगा। कुछेक राज्यो मे ऐसी वन नीति है कि आदिवासी घास, बांस और जलावन की लकड़ियां निश्चित मात्रा मे उपयोग मे लाएं। वन प्रबधन की खासियत चाहे जो भी हो

लेकिन यह ध्यान देने की जरूरत है कि वनों पर बाजार हावी न हो; अन्यथा दोहन का सिलसिला तेज होगा। काष्ठ पर हमारी निर्धनता कम कैसे हो? हमारी छोटी-छोटी लापरवाही की वजह से देश के वन सिकुड़ते जा रहे हैं। जंगल की नदी और नरा की अस्मिता बचाएं। वन कट रहे है। अतः जल संसाधन सूखते जा रहे हैं। बीहड़ों को विस्तार मिल रहा है।

वन बचाकर ही हम वनवासियो को बचा सकते है। दर्जनों पारित कानून जनजातीय समाज को अपराधी साबित कर रहे हैं। सच्चाई तो यह है कि न तो वे घुसपैठिए है और न ही चोर हैं। इनकी संस्कृति वन में न केवल जनमी है बल्कि वही पली-बढ़ी है। वही निरतर परीक्षित होकर तप और त्याग की कसौटी पर निखरी है। हमने एक विशेष प्रकार की उच्छृखलता को इस समाज के साथ जोड दिया है। वास्तविकता मे वनवासी समाज हिसक और लोलुप नही है। वन नीति कि धारा 64 ने वन अधिकारियो को मदांध बना डाला है। अब वे किसी भी व्यक्ति को बगैर वारंट के हिरासत में ले सकते है। इस पर गभीरता से विचार किया जाना जरूरी है। क्योंकि इस धारा की वजह से पेडो पर कुल्हाड़ी चलाने वाले तो गिरफ्तार किया जाता है और आरा चलाने वाले लोग मालामाल हो रहे है। दोनो स्थितिया गलत है।

आजादी की पचासवी वर्षगाठ पर आदिवासी समाज की बदहाली को लेकर हमारी चिताएं सार्थक हो—ऐसा प्रयास जरूरी है। उ.पू. भारत से लेकर राजस्थान, पलामू-बस्तर से लेकर केरल के आदिवासी मुझे बड़े सहज लगते हैं। सामाजिक मर्यादाओ के बीच इनका खुला समाज है। नृत्य-गीत-मनोरंजन के अलावा इनकी दिव्यता और समाज की भव्यता ईसाईयत से मडित नही होती। यह समाज उस सहज विश्वदृष्टि से जुड़ा है जिसके हम सभी भाग है। 1935 के अधिनियम ने उन्हे शेष भारत से अलग कर दिया। क्योकि वनवासी इलाको को 'वर्जित क्षेत्र' मानकर उसे गर्वनर के प्रशासन मे रख दिया। विकास की लंबी दौड़ मे हम अपना निजपन खो रहे है। प्रकृति के मनोनुकूल यहां कोई भी काम नही हो रहा है।

आदिवासी प्रकृति, ग्रह, नक्षत्र, जीव-जंतु इन सबके साथ अपना महाराग जोड़ते हैं। समाज ही नहीं बल्कि सपूर्ण इंसानी आबादी के साथ स्वयं को पूर्णतर बनाने का प्रयास करते है। उनके पास बेहद समृद्ध वाचिक परंपरा है। इनके गीतो मे स्नेह है, मातृत्व है, भातृत्व है। विरह के साथ अकुलाहट और निजत्व है। आमंत्रण हैं और उलाहने भी है। मतलब, रचनात्मक व्यापारो की सामग्री इस समाज मे है। दुःख है कि यह समाज तमाशा बन रहा है। तमाशा बनाया जा रहा है। इनके नसीब राष्ट्रीय विकास के हवनकुंड मे समिधा के रूप में प्रयुक्त किए जा रहे हैं। वास्तविक रूप में ये हमारे संपूर्ण सास्कृतिक सौष्ठव के अभिन्न अंग है। हमे अपना व्यक्तिगत दायित्व समझना होगा। हर असफलता

को सरकार के मत्थे मढ़ने की प्रवृत्ति किसी भी समस्या का हल नही है। उपभोक्तावादी अपसस्कृति की मार से जनजातीय समाज को बचाना होगा। यह काम देश के मत्रालयों, सचिवालयों या समाहरणालयों से नही हो सकता। वनवासियों में एक अविश्वास पनप चुका है कि वे हमारे किसी साध्य के साधन मात्र है। इसे दूर करना होगा। जब यह बात उनके मन मे घर करेगी कि भारत उनका भी है, तभी वे सहज होकर राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमो से जुड सकते है। यही हमारा संकल्प होना चाहिए। इनकी संस्कृति मे अद्भुत विश्वचेतना है। सकल्प ऐसा हो कि उन्हे हम सहजता से रेखांकित कर सकें। □

*लेखक भारतीय राष्ट्रीय जनजातीय कल्याण न्यास के उपाध्यक्ष हैं।

भारतीय चित्रकला की मोनालिसा

दिनेशचंद्र अग्रवाल

लियोनार्दो दि विन्सी की कृति मोनालिसा विश्वविख्यात कलाकृति है। किशनगढ-कलम के चित्रो मे 'बणी-ठणी की छवि' को ही सर्वश्रेष्ठ कलाकृति माना जाता है। कला जगत को भारतीय चित्रकला की यह अनूठी देन आज अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करती जा रही है।

प्राचीन काल से ही विविध युगो मे भारतीय कला और साहित्य मे अनेक बेजोड़ तथा अनुपम कृतियो को सृजित किया है जो न केवल भारत में वरन् विश्व के कला-जगत् मे अपना अति विशिष्ट स्थान रखती है। रूप और भाव की इस अविभाज्य जुगलबन्दी ने अठारहवी शती मे जिस अनोखी रूप-छवि को सिरजा वह भारतीय चित्रकला की एक अद्वितीय उपलब्धि बन गयी। कला-जगत् मे 'बणी-ठणी जी की छवि' नाम से ख्याति-प्राप्त इस अन्यतम चित्र का सृजन विविध कलाओ की उर्वरा भूमि राजस्थान में अजमेर के निकट किशनगढ़ रियासत मे हुआ था। इस रियासत के राजदरबार की छत्रछाया मे पोषित चित्रकारो ने चित्रकला की एक विशेष शैली को विकसित किया था जो भारतीय चित्रकला के इतिहास मे किशनगढ़-कलम के नाम से विख्यात हुई। यद्यपि राजस्थान की अन्य रियासतो मे भी कई महत्त्वपूर्ण-कला-कलमो का विकास हुआ किन्तु किशनगढ़ कलम की समानता कोई कलम नही कर सकी। 'बणी ठणी जी' की यह छवि इसी कलम की सर्वोत्तम रचना है जो अपने आंचल में एक इतिहास और प्रणय-गाथा को समेटे हुए दो सदियों तक चुपचाप दरबार के तोशखाना में गुमनामी के

अधकार में पडी रही थी। 1943 ई. में इस कलाकृति को सर्वप्रथम एक यूरोपीय कला-पारखी ऐरिक डिकिन्सन प्रकाश मे लाये और उसके बाद तो डॉ. फैयाज अली खां, कार्ल खडालावाला और एम.एस. रंधावा ने अपनी विद्वत् समीक्षाओं से इसे विश्व की अन्य श्रेष्ठ कलाकृतियों के समकक्ष सम्मानित किया।

किशनगढ़ की चित्रकला को समृद्ध और चरमोन्नत करने का श्रेय वहां के राजकुल मे छठे उत्तराधिकारी राजा सावंतसिह को पहुंचता है। सावतसिह के अनोखे व्यक्तित्व मे राठौरवशीय शौर्य, हिन्दू संस्कृति और प्रजा-वात्सल्य का समागम था। वह राधा-कृष्ण भक्ति के वल्लभ सप्रदाय द्वारा प्रशस्त पुष्टि मार्ग के अनुयायी थे। वह अत्यत रसिक, शृगार-प्रिय, भावुक, कला-मर्मज्ञ और चित्रकार भी थे। उनको हिन्दी, फारसी, संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। इसके अतिरिक्त वह एक अच्छे कवि भी थे और 'नागरीदास' छद्म नाम से कविताए लिखते थे। इन्होने 75 काव्य रचनाओ का सृजन किया था जिनमे से उत्सव से कविताए लिखते थे। इन्होने 75 काव्य रचनाओ का सृजन किया था जिनमे से उत्सव माला, पद्मुक्तावलि, मनोरथ मंजली, ग्रीष्मविहार, वर्णा के कवित्त, बिहारी चंद्रिका और रसिक रत्नावली उल्लेखनीय है। इन सभी का सकलन 'नागर समुच्चय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। अतएव पूर रियासत का सारा जनमानस इस प्रतिभावान राजा का बहुत सम्मान करता था।

यद्यपि सावंतसिह के राज्यारोहण से पहले भी किशनगढ़ रियासत में राजा राजसिह के आश्रय मे राजदरबार की चित्रशाला मे सिद्धहस्त चित्रकार निहालचन्द के निर्देशन मे अन्य चित्रकार कार्य कर रहे थे कितु कलाप्रिय सावंतसिह का उदार आश्रय और कलात्मक अभिरुचियो से प्रेरणा पाकर चित्रकला की यह धारा अत्यधिक सम्पन्न और परिपक्व हो चली। चित्रकला की कलात्मक उपलब्धिया हुई और वह सोलह शृंगार से सज-संवरकर मोहक छवि मे प्रकट हो उठी।

सावंतसिह ने 1748 ई. मे किशनगढ राज्य की बागडोर सम्भाली थी, उनका जीवन और शासन भली-भांति चल रहा था किन्तु एक घटना ने किशनगढ़ में हलचल मचा दी। हुआ यह कि 1741 ई. मे सावंतसिह की विमाता बाकावत जी किसी राज-काज से दिल्ली के मुगल दरबार में गयी थी। तब बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले मुगल साम्राज्य की डावांडोल होते सख्त पर आसीन थे। वहां दरबार की एक कोकिला-कंठी गायिका बांकावत जी की आंखो मे चढ गयी जिसे वह दरबार से तीन रुपये में खरीदकर अपनी निजी सेविका के रूप में किशनगढ़ ले आयी थी। यह अल्पवयस्क कुमारी ललना अपने आप मे गुणों का अच्छा-खासा खजाना थी। कृष्ण-भक्ति से भरे अनेक पद-पदावलि उसे कंठस्थ थे, रनिवास की शहनाइयों की मंगलध्वनि की भांति उसकी भी वाणी गूंजा करती थी। कहा तो यह जाता है कि उसकी वाणी के मुखरित होते ही भोर और संध्या का

आगमन होता था। महल की जनानी ड्योढ़ी के भीतर कोई भी उत्सव उसकी वाणी के बिना सम्पन्न ही नही होता था। वह दरबार में भरपूर नखशिख शृंगार किये हुए आती थी, अंधकार में जलते दीपक की दमकती बाती की भांति, दरबार मे सबकी निगाहों का केन्द्र वही बन जाती थी। इसीलिए उसे सभी लोग 'बणी ठणी जी' के नाम से जानने लगे थे।

रूप-सौंदर्य और युवावस्था की सीढियो पर चढ़ती हुई बणी ठणी सावंतसिंह के हृदय की गहराइयो में समाती चली गयी। उसकी देह यष्टि से प्रभावित हो कर ही ऐसा सरस विवरण सावंतसिह ने अपनी लेखनी से किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो रीति कवियो की नायिकाओं का सारा अप्रतिम सौदर्य विधाता ने स्वयं एकत्रित कर उसकी रूपराशि को उकेरा था। सावंतसिह की काव्य रचनाओं मे राधा राधा नही वरन् बणी ठणी ही है और प्रेमी कृष्ण नही वरन् वह स्वयं सावंतसिह (नागरी दास) ही है।

यद्यपि सावंतसिह की जीवन-डोर 1720 ई. मे भावनगर रियासत के राजा जसवंत सिह की पुत्री के साथ बांधी जा चुकी थी कितु उनका हृदय तो उस डोरी को तोड़कर बणी ठणी की डोर से जा बंधा था। सावंतसिह जी बणी ठणी के साथ बहुत समय मर्यादित शाश्वत प्रणय सूत्र में बंधे रहने के पश्चात स्वयं को रोक नही पा रहे थे। बणी ठणी को पूर्ण रूप से अपनाना चाह रहे थे। राजा और एक दरबारी गायिका के इस प्रणय से उत्पन्न घोर गृह-कलह, तिरस्कार, हर प्रकार के विरोध-अवरोध और समकालीन राज-कलह के आघातों को हृदय में सहकर वह अपने राजकाज और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की रंगीनियों से विमुख होते गये। उनके भीतर एक ओर यह विरक्ति और दूसरी ओर हृदय में प्रिया के प्रति आसक्ति इतनी प्रबल हो उठी कि आखिर 1757 ई. मे एक दिन अपना राजपाट छोड़कर, वह अपनी पासवान बणी ठणी को सहचरी बनाकर वृन्दावन जाकर बस गये।

बणी ठणी अब 'रसिक बिहारी' उपनाम से काव्य रचना करती और उसे वाणी से मुखरित करती थी। वृन्दावन में इस प्रेम-सुधा को छकते हुए छः वर्ष ही बीते थे कि 1763 ई. मे एक दिन बणी ठणी इस प्रेम डोर को तोड़कर गोलोकवासिनी हो गयी। उनका यह बिछोह न सह सकने के कारण सावंतसिह भी 1764 ई. में गोलोक धाम सिधार ग़ये।

यही अनूठी प्रणय-गाथा किशनगढ़ के चित्रों में साकार हो गयी थी। सावंतसिह ने अपनी रचनाओं में स्वयं को कृष्ण और बणी ठणी को राधा के जिस रूप में प्रस्तुत किया था उसी को चित्रकला में प्रतिबिम्बित किया गया था। वस्तुतः चित्रों में जिस नारी छवि को किशनगढ़ के चितेरों ने सिरजा था वह नागरी दास (सावंतसिह) की काव्यगत उपमाओं में राधा की कल्पित छवि और बणी ठणी की यथार्थ रूपराशि के ही सम्मिलन में जन्मी थी, अतएव सभी नारी आकृतियां इसी सांचे में ढाल दी गयी।

किशनगढ़-कलम के चित्रो में 'बणी-ठणी की छवि' को ही सर्वश्रेष्ठ कलाकृति माना जाता है जिसमें उसका दमकता गौर वर्ण, घने काजल से रचे कमलाकृत नेत्र, धनुषाकृत

भवे, कपोलो पर लहराती घनी अलकें, तीखी लम्बी नासिका, पतले होठ, सुराहीदार गर्दन, ऊंचा माथा—कुल मिलाकर कमनीय चेहरा, सलीके से पहने हुए बेशकीमती आभूषणों और अन्य शृंगार-सामग्री से सजी देह यष्टि, सुनहरी बूटियोदार पारदर्शक दुपट्टे से झांकता रूपहरा बांकपन, मेहंदी से रचे लम्बी अंगुलियो वाले हाथ, नारीसुलभ लज्जा व मर्यादापूर्ण आकर्षण, स्निग्ध सौदर्य और गम्भीरता अनोखा दर्शनीय है। इस आकृति के रूप-सौष्ठव, कलात्मक गुणो और सफल अभिव्यक्ति के आधार पर कला समीक्षको द्वारा भारतीय चित्रकला की मोनालिसा कहा जाता है। स्मरणीय है कि सोलहवी शती मे इटली के महान् चित्रकार लियोनार्दो दि विन्सी द्वारा बनाया गया मोनालिसा का पोर्ट्रेट विश्वविख्यात कलाकृति मानी जाती है। कला जगत् को भारतीय चित्रकला की यह अनूठी देन आज अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करती जा रही है। □

रुदन एक महती परम्परा

रेणु गुप्ता

आंसू बहाना महत्त्वपूर्ण के साथ-साथ कलापूर्ण भी है। यानि आंसू बहाने वाला ज्ञान के साथ आंसू बहाने की कला नही जानता हो तो वह सामने वाले को भाव विह्वल नही कर पाएगा और उसके सभी प्रयत्न निरर्थक सिद्ध होंगें।

रुदन शब्द का अर्थ है रोना, आंसू बहाना। रुदन शब्द के मस्तिष्क मे उभरते ही हमारे सामने एक उदास-सा चेहरा आ जाता है। क्या आपने कभी सोचा है कि ये रुदन मात्र उदासी को प्रकट करने मात्र का साधन नही है, बहुत से बिगड़े काम बनाने की सामर्थ्य भी रखता है? यह एक कला है। अपनी इस कला से स्त्रियॉ समय-समय पर अपने कितने ही बिगड़े काम सरलता से बना लेती हैं।

रुदन का अपना एक स्वतंत्र इतिहास है जो भारतीय परम्परा में प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसमें समयानुसार आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं, फिर भी इसका अपना एक महत्त्व है। केकैयी के रूदन की महिमा को हम भूल नही सकते।

रुदन का महत्त्व सर्वोपरि है यह तो सही है, परन्तु यह तभी सम्भव है जब रुदन सही समय पर, सही मात्रा में किया जाए। अर्थात् रुदन के लिए भी ज्ञान व अभ्यास की आवश्यकता है। बिना ज्ञान के आप अपना कार्य सरल करने की अपेक्षा कठिनतर भी कर सकते हैं। कितने आंसू किस समय बहाए जाएं यह जानकारी होने पर आप भली प्रकार किसी भी स्थान पर अपना कार्य मात्र कुछ प्रयत्न से ही करवा सकते हैं।

नारी की महत्ता को हमारे समाज में प्रारम्भ से ही माना जाता है। यह महत्ता क्यो है ? क्या आपने कभी सोचा है ? इसका मूल है उसका रुदन ज्ञान। जिसे हमारे यहॉ 'त्रिया हठ' का नाम भी दिया जाता है। नारी सदा-पुरुष से महान रही है, क्योंकि उसे इस बात का भली प्रकार ज्ञान रहता है कि किस समय वह कितने आंसू बहाए। केकैयी नारी की इसी महत्ता को साबित करने वाली नारी है। यदि केकैयी रामराज्य के समय आंसू रोक लेती या अपने त्रिया हठ को न प्रदर्शित करती तो आज हमारा इतिहास ही कुछ और होता। इसी प्रकार अनेक रानियां राजाओ की अपने इन्ही आंसुओ द्वारा समय-समय पर दिशाएं परिवर्तित करती रही है। जिसके कारण हमारे इतिहास का आज यह रूप है।

आंसू बहाना महत्त्वपूर्ण के साथ-साथ कलापूर्ण भी है। यदि आंसू बहाने वाला ज्ञान के साथ आंसू बहाने की कला नही जानता तो वह सामने वाले को भावविह्वल नही कर पाएगा और उसके सभी प्रयत्न निरर्थक सिद्ध होगे।

आंसू मात्र समय का ज्ञान ही नही चाहते व्यक्ति सापेक्ष भी होते है। आपको इस बात का भी ज्ञान होना चाहिए कि आंसू किसके सामने बहाए जाए जो ज्यादा प्रभाव उत्पन्न कर सकें। जैसे आपके परिवार में सास जी का परिवार पर पूर्णाधिकार है और आपका कोई भी कार्य पति भी सास की आज्ञा के बिना नही कर सकते, तो आप अपने आंसुओ को पति के सामने बहाकर व्यर्थ न करे। वे अपनी सास के सामने बहाएं। क्योंकि यह तो आप भी जानते हैं कि आदान-प्रदान सीधा हो तो अधिक प्रभावशाली होता है। यदि बीच मे किसी को माध्यम बनाकर किसी अस्त्र का प्रहार करेंगे तो वह उतना मारक नही हो पाएगा। इसी प्रकार समय और शक्ति के साथ स्थितियो के अनुसार यदि अपने इन अस्त्रो का प्रयोग किया जाए तो वह अधिक प्रभावी होगा और आपकी क्षमता को भी बढाएगा। क्योकि सफलता क्षमता को सदा बढाती है।

रुदन का यह गुण व इसका ज्ञान नारी को अधिक है इस बात से इनकार नही किया जा सकता। इसीलिए बाहर से पुरुष प्रधान दिखने वाला यह समाज भीतर अर्थात् पारिवारिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो नारी प्रधान ही है। घरों के भीतर आप भी नारी का ही एक क्षत्र राज्य रहता है।इसके कुछ अपवाद अवश्य हो सकते है, परन्तु यह अपवाद वही है जहॉ नारी अपने इन स्त्रियोचित्त मूल्यवान गुणो को भूल चुकी है। मुझे तो लगता है कि नारी की बाह्य परिवेश करवाना शायद पुरूषों की एक साजिश ही है। वह नारी को भूल-भुलैया मे डालकर उसके इस गुण को समाप्त कर देना चाहता है ताकि वह भी चीख-चिल्ला कर अपनी बात मनवाने का प्रयत्न करे और इस स्थिति मे उसकी बात न मानने में कठिनाई नही होगी और पुरुष अपनी बातो को घरो में भी महत्त्व दे पाएंगे।

आज हमारे समाज मे तलाक की समस्या बढ़ती जा रही है। आपने देखा होगा कि यह समस्या उन्ही परिवारों में अधिक है जहॉ नारी शिक्षित है और कामकाजी है। अब

आप समझे कि ऐसा क्यो ? सीधा-सा उत्तर है क्योंकि वहाँ नारी अपने इस गुण को भूल गई है। दफ्तरों में या घर से बाहर उसे एक अलग भूमिका निभानी होती है। जहाँ थोड़ा कड़ाई से काम लेना होता है। उनका वही रूप जब घर के भीतर भी आ जाता है तो एक समस्या बन जाता है। जब वह घर के भीतर कड़ाकर पेश आती है तो उसकी बात सुनी नहीं जाती। अतः यदि वह अपना यह दफ्तरी रूप आफिस तक की रखकर घर मे वैसे रहे तो और अपने स्त्रियोचित्त गुणो को ध्यान मे रखे तो यह समस्या उत्पन्न ही नही हो सकती। मै समझती हूँ कि यदि नारी थोड़ा ध्यान दे तो यह तलाक की समस्या तो जड़ से ही समाप्त हो सकती है। तलवार भी आसुओ के सामने बेकार है। आप जो काम मात्र दो आसुओ से निकाल सकती है उसके लिए तलवार-भाले चलाने की क्या आवश्यकता है। अतः 'जहाँ काम आएं आसू कहाँ करे तलवार' वाली बात को ध्यान मे रखकर यदि हम अपने कार्यों को अंजाम दे, तो हमारी सफलता निश्चित है।

आपने यदि मैथिलीशरण गुप्त जी की 'यशोधरा' पढ़ी है तो आप इस बात को और भी अच्छी तरह समझ सकते है। गौतम बुद्ध रात्रि के समय यशोधरा और पुत्र राहुल को छोड़क़र चले जाते है। तब उनके वियोग मे यशोधरा का रुदन गुप्त जी ने प्रदर्शित किया है। यशोधरा प्रलाप करते हुए बार-बार एक ही बात दोहराती है -'सखि वे मुझसे कहकर जाते' उसे गौतम बुद्ध के चले जाने से भी अधिक दुख इस बात का है कि उससे कहे बिना चले गए। क्योंकि वह जानती थी कि यदि वे उससे कहकर जाते तो वह जा ही नही सकते थे। यशोधरा एक कुलीन नारी थी। उसे आत्मविश्वास था कि यदि वे उससे कहकर जाते तो वह अपने आसुओं द्वारा रोक लेती और अपना जीवन सुरक्षित और संपूर्ण सुखों से पूर्ण कर लेती।

परन्तु गौतम बुद्ध भी कोई साधारण पुरुष तो थे नही। आखिर वे दूरदर्शी थे और सृष्टि को भली प्रकार समझते थे, महान थे तभी तो निर्वाण प्राप्ति कर सके। एक ऐसा कार्य जो हर सामान्य व्यक्ति के लिए सभव नही। इस महानता और दूरदर्शिता का सबसे बडा परिचय उनके गृहत्याग के प्रथम कदम से ही हमे मिल जाता है, वे पहले से ही जानते थे कि यदि वे यशोधरा के सामने गृहत्याग करेगे तो कभी भी घर से नही जा सकेंगे। नारी की उच्चता को वह समझते थे। इसलिए उसके समझ घर छोड़ने की हिम्मत जुटाने का प्रयत्न उन्होंने नही किया। वे जानते थे कि वे सारे समाज, देश, काल, सृष्टि को जीत सकते है, परन्तु अपनी गृहपत्नी से नही। उसके आंसुओं के समक्ष उनकी सारी शक्ति क्षीण हो जाएगी और वे आजीवन कुछ नही कर पाएंगे।

अतः आज नारी को आवश्यकता है अपनी इन प्राचीन परम्पाओं को संजोकर रखने की। अपनी इस जन्म जातीय शक्ति की उसे अवहेलना नही करनी चाहिए। यदि वह अपनी इस शक्ति का प्रयोग सामूहिक रूप से करे तो वह दिन दूर नही जब वह अपने इस

पुरुष प्रधान समाज को नारी प्रधान बनाने में सफल होगी। तब उसकी अधिकार सीमा परिवार के बाहर समाज तक फैल जाएगी। आवश्यकता है एकजुट होने की। सभी नारी जाति को एक मानने की। यदि वह किसी भी नारी को पहले अपने समान नारी माने और बाद में बहू, बेटी, बहन आदि तो उसका एकछत्र राज्य सारे समाज पर निश्चित है, जिस पर से उसे कोई हटा नही सकता। प्रकृति ने नारी को जो क्षमताएं और गुण दिए हैं वह पुरुषों के पास कहाँ ? अतः नारी यदि स्वय को सही रूप मे पहचान कर चले तो सर्वत्र उसकी जीत निश्चित है। □

सर्प

जी.ए. कुलकर्णी

मराठी के विख्यात कथाकार स्व. जी.ए. कुलकर्णी के रचना संसार में प्रकृति, प्राणी और मानव को अज्ञात, रहस्यमय शक्तियो और गतिविधियों का विचित्र आदान-प्रदान होता रहता है। 'सर्प' आदिम युग से विश्व मानव की 'साइकी' का एक अभिन्न, विशिष्ट पात्र रहा है। भूगर्भ मे निवास कर, मुख मे प्राणांतक विष की शक्ति धारण कर और स्वयं केचुल बदल-बदल कर नवजीवन प्राप्त करने का वरदान पाकर वह भय, आतंक और आदर का पात्र बन गया है। वह आदिम वासना का परिचायक है, मृत्यु का प्रतिनिधि है और पुनर्जन्म का प्रतीक है। तभी कथाकार ने अपनी रचना में नंदनवन की हौवा से लेकर नील नदी की साम्राज्ञी क्लियोपैट्रा से होते हुए अनागत भविष्य तक अतृप्त वासना का सिलसिला चित्रित किया है, 'सर्प' के रूप मे !

उस अंधेरे, चारों ओर से बंद-से विवर में, आसपास में तपतपाते रेगिस्तान की चिलचिलाती धूप या धधकती आंच-सी लगती सूखी हवा, किसी का भी प्रवेश नही होता था और तभी उस हरियाले अंधेरे में अनेक सांप ढीली-ढाली कुंडली मारकर सतोष से रहते आ रहे थे। वहाँ के अंधेरे पर उनकी पलकहीन स्थिर आंखे थी और कभी-कभी उस पर उनकी जीभों के सूत लटकने लगते थे।

वह सांप तेजी से अंदर आया, उसी वक्त दूसरे सुस्त अलसाये-से सांपो को ऐसा

एहसास होने लगा था कि कुछ विशेष घटित हुआ है और जमीन पर उलझी पडी कुंडलियों मे थोडी-थोडी हरकत-सी भी हुई थी। लेकिन, जब वह सांप दमकती आंखों से, सारा खून ही बिजली हो गया हो ऐसी उत्तेजना से, वृद्ध सांपों के आगे भी आदर से न सरकते हुए ऐंठ से तेजी से आगे सरका, तब तो सभी को यह समझ में आ गया कि जरूर रोजमर्रा की घटनाओं से हटकर कुछ हुआ है, कुछ अनूठा, कुछ अलौकिक ! कुडलियो की उत्सुकता बढ़ी और कुछ जीभे आतुरता से लपलपा गई। वृद्ध सापो ने उसकी ओर सिर्फ नजर डाली और वापस अपनी सुस्ती मे लौट आए। मुखिया सांप ने तो उसकी ओर नजर तक नही फेंकी। कोई तो कुछ तो पूछेगा इसकी राह देखता वह साप थोड़ा-सा हताश हुआ। आखिरकार वह सरककर एक चट्टान की दरार में चला गया और फिर सिर्फ अपना मुह बाहर निकालकर जोर से बोला, "आज का दिन मेरे लिए बडा खुशनसीब निकला। मेरी तो जिदगी ही कृतार्थ हो गई। और सबसे बड़ी बात यह कि मुझे जो उत्कट आनंद आज मिला है वह इससे पहले तो कभी किसी को नही ही मिला था लेकिन भविष्य में भी कभी किसी को नही मिलेगा।"

सांपो के झुंड में खलबली मच गई और कुडलियां जल्दी से हिल-डुलकर आगे सरकने लगी। कुछ सांप आगे आये और उससे कुछ दूर पर आकर रुक गए। उसके बाद एक साप बड़ी शान से उसके ही बदन पर से सरकता हुआ आगे आया। वह नौजवान सांप अभी-अभी केचुल उतरे हुए की तरह ताजा चमचमा रहा था और उसकी मामूली-सी हरकतों में भी शक्ति का अहंकार झलक रहा था। उसने फुफकार कर कहा, "दूसरों को इससे पहले मिला नही और इसके बाद मिल सकने की संभावना भी नही बची, ऐसा सुख तुझे मिला, यो तू कह रहा है। लेकिन ऐसा भाग्य तेरे ही हिस्से में आये, ऐसी कोई खासियत तो तुझमे नही दिखाई पडती। लगता है, दूसरो को चौधियाने के लिए और शेखी बघारने के लिए मनगढ़ंत कहानियाँ सुनानेवाला यहां बहुत दिन जिदा नही रहता, यह तू भूल गया है। दो ही दिन पहले तुझ जैसा ही एक यहॉ यह कहता हुआ आया था कि "मैंने मणिधर नाग देखा है !" और दूसरा कोई एक कह रहा था कि "मैंने सुवर्ण कलश की रखवाली करता, एक हजार साल की उम्रवाला नागराज देखा !" और उन दोनों का क्या हश्र हुआ, तू जानता है ना ?"

उसने सिर डुलाया। हां, उन दोनों को दी गई सजा में उसने खुद हिस्सा लिया था। उन दोनों सांपो पर बाकी सारे सांप टूट पड़े थे और डंक मार-मार कर उनकी हत्या कर दी गई थी। फिर, मुखिया सांप के आदेश पर उनके कटे-चीथे बदन को घसीट ले जाकर दूर एक ढलुवी मन-सी जमीन पर फिकवा दिया गया था।

"मैं अच्छी तरह जानता हूँ।" वह हर्ष-से थरथराता हुआ बोला, "लेकिन मैं कोई मनगढ़ंत कहानी नही कह रहा हूँ। यह मेरी भोगी हुई सच्चाई है। मेरी पूरी बात सुन लो

और फिर चाहे जो फैसला करो। लेकिन, इसमें कोई शक नही कि मैंने जो आनंद पाया है वह इससे पहले कभी किसी ने नही पाया। इसके बाद भी कभी किसी को नहीं मिलेगा। सो, तुम लोग उस पर यकीन करो न करो मुझे रत्ती भर भी फर्क नही पड़ता। यो, कोई सामान्य-सा सत्य लोगों के सामने कहते समय हमारी यह कामना रहती है कि लोग उसे कबूल करे, उस पर यकीन करें लेकिन इस पल तो मैं ऐसी टुच्ची कामनाओ से भी परे चला गया हूँ। किसी विराट सत्य को एक के बजाय सौ लोग स्वीकार करते हैं, सो वह ज्यादा विश्वसनीय सत्य होता है, यह मानना तो बडी बचकानी बात है।

"मै यहां बहुत कम रहता हूँ यह तुम लोगो को पता ही है। तुम लोगो की कुत्सित जबाने इस पर कई बार लपलपाई भी हैं। पर अब साफ-साफ कह देने मे कोई हर्ज नही है। उतना वक्त भी इस अधेरे मे, तुम लोगो की संगत में बिताते हुए दम घुटता था मेरा। और इसलिए बहुत जल्द ही मै यहां से हमेशा के लिए चला जाऊंगा, यो मैंने मन ही मन ठान भी लिया था।

"कई दिन पहले की बात है। यों ही भटकते-भटकते मैं एक उद्यान मे जा पहुँचा। वहाँ की हरियाली में बदन को सुकून देनेवाली नरमी थी और बाहर से न दीखनेवाली नमी। बाहर सब कुछ सुलग-झुलस रहा था, पर वहाँ साफ नीलाभ पानी का एक बडा-सा सरोवर था, फौव्वारे थे। उनकी फुहार मेरे बदन पर पड़ी तो मै तो जैसे अपने को बिसार बैठा। थोडी ही देर मे पौ फटनेवाली है ऐसे आसार नजर आने लगे तो मैंने एक लता का सहारा लिया कि अब बची हुई रात उसी के झुरमुट में गुजार दूंगा। मै लता पर सरकता-चढ़ता ऊपर जाता गया कि राह में एक खिडकी दिखी, मैंने हौले-से बारजे से आधार उतरक अंदर झांका।

"एक आलीशान कमरा था और रात को भी दिन मे बदल दे ऐसी रोशनी जगमगा रही थी। वह एक शयनागार था। एक ओर सुनहरे खंभों की, आबनूसी शैया थी, उस पर कलाबत्तूवाली लाल मखमली चादर बिछी थी। शैया के एक ओर एक आदमकद आईना था और उसके सामने खड़ी थी एक औरत ! निहायत खूबसूरत ! !"

'औरत' सुनते ही सारे सांपों की आदिम स्मृति की चिनगारी अनायास सुलक उठी। अब तो वृद्ध सांपों में भी हरकत हुई और उनमें से तीन-चार किसी अदृश्य डोर से खिचे हुए-से हौले-हौले आगे सरके और दूसरे सांपों के पीछे रुक गये। मुखिया सांप की तटस्थता भी थोड़ी कम हुई और बैठे-बैठे ही उसने आधा बदन इस ओर मोड़ा।

"उस औरत ने ढीले से वस्त्र पहन रखे थे जो बीच-बीच मे हवा के झोंके से थरथरा उठते थे। हीरे का एक जगमगाता अलंकार उस वस्त्र को थामे हुए था। उसकी मेखला के रंग-बिरंगे रत्नों पर रोशनी कौंध-कौंध जाती थी, लगता था रंग-बिरंगी आंखें खुल-मुंद रही हैं। आईना गहरे पानी की तरह शांत और आत्मविश्वासी लग तो रहा था लेकिन मुझे

लगा, उस औरत की खूबसूरती की कौंध से कही वह चटख न जाए ! उस औरत के माथे पर फन काढ़े हुए नाग का मुकुट था। हममें से री एक को उसने माथे पर धारण कर रखा है, इसका मुझे बड़ा नाज हुआ। आईने में निहारते हुए उसने अपना मुकुट उतारा और उसकी काली घनेरी केशराशि नीख लहरो की तरह कमर तक झूल आई। मैं उनके बीच छिप जाता तो उसे एहसास तक न होता ! उसने फिर अपनी छाती पर का हीरक आभूषण उतारा। उसके वस्त्र सरसराते हुए ढुलक गये। बस एक छोटा-सा कटिवस्त्र रह गया। अनमोल हाथी दांत-सी उसके अनावृत्त देह की काति खुल आयी। इस एक छुअन-भर से एक शिल्पी की तरह उसने एक नयी मूर्ति गढ ली, अपनी ही। अपना समूचा प्रतिबिब देखने के लिए वह थोडी-सी मुडी और अपनी काली स्याह आंखें मुझ पर गडाये पल भर मेरे सामने खड़ी रही।

"मै आदमजाद को पहचानता हूं। उनकी औरतें भी मैने देखी हैं। उनकी उन्मादक पिडलियां, गोरे-गोरे तलवे, लाल-लाल फल के फांक की तरह दिखती एड़ियां। अनेक बार ज्वर-सा चढ आया है उत्तेजना से लेकिन उस घडी, वह जो सौदर्य मेरे सामने खडा था वह तो हम सर्पो की आंखो को भी चौंधिया देने वाला था। बेजोड़, बेमिसाल ! उस पल ने मुझे जकड़-सा लिया। लालसा से मेरा अग-अग बिजली की तरह थरथरा उठा। और अचानक जैसे आंखो पर रोशनी की कौध आ पडे यो एक दृश्यपटल खुल गया। हां, मुझे नंदनवन और आदम और उसकी स्त्री हौवा की याद हो आई।

"उनके मासूम, पावन सुख मे वासना का निर्माण कर उनका अधःपतन हमारे पूर्वज ने करवाया, ऐसा एक सनातन कलंक हमारे वंश पर लगाया गया है। अगर वैसा सचमुच ही घटित भी हुआ होगा तो उसमे शर्मिदा होने जैसी क्या बात है ? वासना—अतीव तृप्ति के क्षण का निर्माण कर चुकने के बाद भी अनवरत अतृप्ति, तीव्र उत्कंठा से दाहकता पैदा करने वाली यह वासना—चाहे किसी ने क्यो न पैदा की हो, उसमे लच्चा की क्या बात है ? लेकिन सच तो यह है कि वासना—उस पहले सांप ने नही ही पैदा की। वह पैदा हुई उस स्त्री की देह की वजह से और वह देह तो उस सर्प ने नही गढी थी। अगर वह औरत सिर्फ हड्डियो का ढाचा होती, तो उस हमारे पूर्वज ने हजारो साल सिर क्यों न मारा होता उसकी कीमिया से वासना की एक चिनगारी तक पैदा न होती। जबकि, सांप नही भी होता तो उस देह मे आज नही तो कल वासना पैदा हुई ही होती। अलबत्ता, तब बादलों को निहारकर, पानी को देखकर, तारों को गिनकर वासना पैदा हुई, इसलिए बादल, पानी या तारों को दोषी ठहराया जाता बस इतना ही। मानव देह पर मास चढ़ा और वासना का बीज तभी पड़ गया। लेकिन मानव नामका यह जो जीव है, वह है बड़ा धूर्त ! अपना इतिहास खुद लिखता है और अपने सारे पतनों की जिम्मेदारी दूसरों पर थोपता है ! ऊपर से चतुराई यह कि वासना का आनंद तो वह भोगना चाहता है लेकिन उसका निखालिस

आनंद भी नही लेता। जिन जानवरों को वह अपने से हीन कोटि का बताता है उनमे कितनी दिलखोल आदते होती हैं। भोग मे भी खुलापन और सजा भुगतने में भी। लेकिन यह आदमजाद, खाता तो है भुक्खड़ों की तरह लेकिन हर निवाले के साथ नाक-भौ भी सिकोड़ता रहता है। याने न खाने का तथाकथित पुण्य भी नही और मनभर खान का मांसल आनंद भी नही। आदमी की नजर में ही वह खोट रह गई है।

"क्योंकि दूसरे जानवर आदमी से पहले निर्मित हुए थे। आदमी तक आते-आते गढनवाले हाथो का हुनर थक गया था और उस बुनियादी खामी को ढांपे के लिए आदमी मे डाल दिया गया एक थोथा अहंकार कि वह प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह सब कुछ, उस एक पल मे मेरे एहसास मे कौध गया। और मानो उसे भी इसका एहसास हो गया। उसने जैसे मुझे देख लिया, मेरी लालसा को चीन्ह लिया। वह थोड़ी-सी हंसी और फिर जैसे कोई स्वर हौले-से घुलता चला जाये यो एक परदे की ओट मे चली गई।

"मैने उस स्थिति मे बस एक पल-भर ही उसे देखा लेकिन उस एक पल में ही मैने मृत्यु का साक्षात्कार कर लिया! एक नया जन्म ले लिया मैने! बाकी सब बेमानी, बदसूरत लगने लगा। कभी-कभी तो ऐसी असहनीय पीडा उठने लगती कि दहकती आग में घुस जाऊं और देह की, देह के भीतर की आग को जलाकर राख कर डालूं। अगर मैने उसे देखा ही न होता तो तुम लोगों की तरह ही जड़-कुंद दिमाग लेकर मैं जिदगी बिता देता; उस बूढ़े सांप की तरह ठूंठ बदन घसीटता रहता। लेकिन उस एक पल के बाद से मेरी पूरी जिदगी ही बदल गई। कामना पूरी होगी इसकी तो कोई आशा नही थी लेकिन उसे एक दिशा मिल गई। फिर तो मैं इसी आस मे उस महल से आस-पास मंडराता रहा कि बस, एक बार और वह दिख जाए, उसे अपनी स्मृति में दीप्त रखूं, बस!

"और फिर घटी वह घटना! कल! एक औरत अचानक मेरे करीब आकर रुक गई। उसने लकड़ी के चिमटे से औचक मुझे उठा लिया। उस पल मुझे डर नही लगा। बस एक ही एहसास था, मौत, रिहाई, छुटकारा। मेरी कामना पूरी हो जाती तो स्वर्ग भी मुझसे ईर्ष्या करता! मौत पहले आ गई कोई बात नही। आखिरकार वह कामना, वह उत्कट लालसा मुझमें जगी तो! केचुल बदल-बदलकर, घिसटनेवाली जिदगी जीने के बदले मुझे मिल गयी थी हजार-हजार अतृप्त आंखें, अनबुझ प्यास! यह भी किसी खुशकिस्मत को ही नसीब होती है। उस औरत ने मुझे अंजीर के फलो के पिटारे मैं डाल दिया, ढकना लगा दिया और मैंने अपना बदन चुपचाप फलों में एकाकार कर दिया।

"थोड़ी देर बाद पिटारे का ढक्कन खुला। वह क्षण अलौकिक था। जिस क्षण में स्वप्न सत्य बनकर जन्मता है और लालसा का उदय ही तृप्ति बन जाता है, ऐसा दुर्लभ क्षण। वही औरत शैया पर राजवस्त्रों में थी और उसके बदन पर आज रत्न-ज्योतियों का महोत्सव था। उसने नागमुकुट शीश पर चढ़ा रखा था। लेकिन, उसकी आंखों में गहरी,

अथाह उदासी थी। पर उसकी गोरी, सफेद गर्दन और उसके नीचे रत्नमाला से शोभित छोटा-सा प्रदेश पहले जैसा ही उन्मादक, आमंत्रक था। और फिर उसने हाथ बढ़ाया, मुझे गर्दन से पकड़कर उठा लिया और अपनी छाती से लगाकर बड़ी कोमल आवाज मे कहा, "आओ, आ जाओ, अब तुम ही मेरे सखा हो। एक भव्य साम्राज्य अस्त हो रहा है, तुम ही अब उसे अलविदा कहो।"

"और मैने उसका निमत्रण स्वीकार किया। आजीवन सचित वासना से उसकी गौर देह पर दश किया और बार-बार, यहा-वहा, सब जगह दंश करता गया। बदन पर नीलाभ वृत्त फैलते गये और शैया पर बिछे राजवस्त्रो मे उसकी समूची देह नीली पडती गयी और वह समूची मेरी हो गयी। परिपूर्ति के बाद जो थकान आती है, सुख पूरा हो चुकने पर जो आर्द्रता रहती है उससे मै इतना शिथिल पड गया कि यहा पहुँचने तक धूप चिलचिलाने लगी। पर मेरा सुख अपूर्व है।"

ईर्द-गिर्द जमे सापो मे बेचैन हरकते होने लगी। उनमे ईर्ष्या सुलग उठी थी। युवा सांप फुफकार उठा, "तुझे भ्रम हो गया है। बाहर की दुनिया मे एक तू अकेला ही नही घूमा-भटका है। मैने भी कई बार यात्राएं की है। और मैं यह अपने अनुभव से पक्का कह सकता हूँ कि यहा आसपास नागमुकुट पहनने वाली कोई औरत नही है।"

उसकी बात, बाकी सापो को सच लगी और वे क्रुद्ध हो उठे कि एक सिरफिरे ने अपनी मनगढ़त बातो से उन्हे धोखा देने की कोशिश की। कुछ देर को तो उसकी बात सरसार आंखों देखी-सी लगने भी लग थी। धोखेबाज ! मुखिया सांप उनकी हल्की-सी-हल्की सरसराहट को भांप रहा था। उसने निश्चयात्मक स्वर मे कहा, "मैंने अपनी लंबी जिदगी का बहुत बडा हिस्सा बाहर ही बिताया है। यह तो, अब बदन थक गया है सो मै यहां कैद-सा हो गया हू। सच है, इस तरह की औरत है ही नही और हो भी नही सकती। भला कौन औरत सांप को उठाकर अपनी छाती पर दंश करवायेगी, जहर को अपनी मर्जी से, सहज ही अंगीकार करेगी ? यह सांप जालसाल है, झूठा है ! और ऐसे को हम क्या सजा देते हैं यह तुम लोगों को पता है ही।"

मानो उसके इशारे की ताक में ही हो यो लपककर युवा साप आगे सरका और उसने अपने ही सपने में खोये-डूबे, सांप में दांत गडा दिए और खीचकर उसे बाहर निकाला। देखते-देखते सारे सांप उस पर टूट पड़े, थोड़ी ही देर मे वह शिथिल पड़ गया और प्राणहीन हो गया। उस भीड़ में कुछ भी करने का मौका न पाया हुआ एक बित्ता-भर सांप आगे आया, उसने मुर्दा साप के बदन में दांत गडा दिये और उसे घसीटता हुआ ले चला, दूर ढलुवां जमीन मे फेंक आने के लिए।

सारे सांप वापस अपनी-अपनी गुंजलको में लौट गये तो मुखिया सांप ने युवा सांप से कहा, "मुझे थोड़ी देर खुली हवा मे जाना है, तुम मेरे साथ चलो। हम चट्टान के कगार

तक जायेगे । वहां गये, पता नही कितने साल हो गए ।" और उसके जवाब का इंतजार न करते हुए वह चट्टान की ओर सरकने लगा ।

युवा सांप भौचक्का-सा ठिठका । वह चट्टान तो जैसे जमीन से ऊपर उड़ जाने की कोशिस में लगातार सीधी, ऊंची उठती चली गई थी । उसने नम्रता से कहा, "इस उम्र मे वापस उतरते वक्त आपका बूढा शरीर भार झेल नही पायेगा ।"

"वैसी नौबत नही आयेगी ।" बूढ़े साप ने रुखाई से कहा । बूढ़ा सांप बड़ी कठिनाई से सरक-सरककर ऊपर जा पहुँचा और कुछ देर चुपचाप पडा रहा । हवा बडी तेज चल रही थी और सूरज तो बस हाथ-भर ही दूर लग रहा था । बूढा साप एक झाडी के सहारे टिक गया । युवा सांप रुका और फिर बड़ी हिकारत से बोला, "अच्छा हुआ, एक और सिरफिरे से पिड छूटा । कमाल है, कहता था एक खूबसूरत औरत ने उसे अपने हाथों से उठाया, सीने से लगाया और दंश करवाया ! !"

"वह सिरफिरा नही था, खुशकिस्मत था ।" बूढ़ा सांप बोला, "उस औरत ने खुद दंश करवाया या नही यह तो मै नही कह सकता लेकिन उस औरत का वर्णन इतना हूबहू सच्चा था कि वह सचमुच ही घटित हुआ होगा, तभी उसने बयान किया । और वैसी औरत का होना न सिर्फ संभव है बल्कि वैसी औरत तो साक्षात् अस्तित्व मे थी । क्योंकि मैने खुद उसे देखा है ।

"मैं उस महल के एक-एक खंभे, एक-एक झरोखे को जानता हूं क्योकि मैंने अपन जिदगी का बहुत-सा हिस्सा वहा बिताया है । वह औरत सचमुच ही एक साम्राज्य की स्वामिनी है । मैंने उसे राजवस्त्रो मे देखा है; उसी आईने के सामने दासियों द्वारा उसके केशो का सिगार करना, हसाकार बजरे में उसका जल विहार, शैया पर अर्धवस्त्रो में शांत शयन, पहले दूध से फिर सुगंधित जल से विवस्त्र स्नान, सब मैने अनेक बार देखा है । उस साप ने बताया था ना, वैसी ही तपाये लाल-लाल तार की तरह दहकती वासना मुझमें ऊभी पैदा हुई थी और उतनी ही उत्कटता से मैने उसे संजोये रखा था । देखो तो, अब मेरा सारा बदन कमजोर पड़ गया है और मेरे दंश में भी पहले का सा जहर नही रह गया है । पर, उस वक्त की सिर्फ एक ही बात उतनी ही शिद्दत, उतनी ही तपिश के साथ आज भी मुझमे बची हुई है और वह है उस औरत की कामना, उसे पाने की लालसा ।"

"लेकिन आप ही ने तो उस सांप की हत्या कर डालने का निर्देश दिया था ?" युवा सांप ने चकित होकर पूछा ।

"हां", बूढ़े सांप ने शांति से कहा, "मैंने अभी जो कुछ कहा, वह अगर पहले ही कहा होता तब भी मैं तुझे उसकी हत्या कर डालने का ही आदेश देता । लेकिन मै यह सबके सामने नहीं कहना चाहता था, इसीलिए तो तुझे यहां ले आया । मेरी बात ध्यान से सुन । कल जाकर तुझे मुखिया बनना है । उन सांपों पर हुकूमत चलानी है । हुकूमत और सपने

साथ-साथ नही रह सकते । ऐसे सपने सजोनेवाला सांप क्या तेरी हुकूमत के नीचे चुपचाप, शांत रह पायेगा ? जिसके मन में ऐसे पंख फूटने लगते है वह सत्ता, सपत्ति, किसी भी पाश मे बंध नही सकता । सो, जब-जब तुझे ऐसे सपनो के बीज दिखने लगें तब-तब शासक के नाते तू बडी बेरहमी से उसे कुचल डाला कर ! भूलना मत, इस हिदायत को ।

"लेकिन साथ ही साथ यह भी याद रखना कि तू एक व्यक्ति भी है । और ऐसे किसी अनूठे, दिन के आसमान में सितारे देखने वाले, जुनून भरे सपने के बगैर व्यक्ति के जीवन मे प्राण नही आते । सो, अपनी जिदगी में ऐसे किसी सपने को संजोकर रखना । पर याद रख, ऐसे सपने हुकूमत से या ताकत से पैदा नही किये जा सकते । ऐसे सपने को कोई बंदी भी नही बना सकता । लेकिन ऐसे सपनों की सौगात करीब-करीब जानलेवा होती है । तन-मन मे आग सुलगती रहती है, खून का पानी हो जाता है और सबसे अहम बात यह कि ये सपने आते ही है असभावना की छाया के साथ । अगर ऐसा कोई सपना तेरी जिदगी मे आ ही जाये तो उसकी पीड़ा, उसकी असभाव्यता के साथ, बडी कृतज्ञता से उसका स्वागत करना । और अगर न आये तो यह कुबूल कर लेने की समझदारी दिखाना कि तुझे उसके योग्य नही समझा गया, चुना नही गया ।"

बूढा साप सरकता-सरकता चट्टान की कगार तक जा पहुंचा और सुदूर देखते हुए उसने पूछा, "तुझे यहा से क्या दिख रहा है ?"

युवा सांप पीछे ही ठिठक गया था । वही से बोला, "पतली-सी नदी । शहर के सारे भव्य प्रसाद तो खिलौनो की तरह लग रहे हैं और मेरा घर तो दिख ही नही रहा है । वह नीचे, इतनी दूर रह गया है, यह सोचकर ही मन कांप जाता है ।"

"हा, उसे भी एक दृष्टिकोण ही कहना चाहिए ।" बूढ़े सांप ने सिर डुलाते हुए कहा, "धरती ही तो हमारा आसरा है । हमारा जन्म, मृत्यु, हमारी पूरी जिदगी उस पर ह, उसके तले ही गुजरती है । फिर भी, जमीन पर रहने वाले को, ऊपर जाने पर वह कैसी दीखती है, यह बीच-बीच में देख लेना चाहिए । हमारा घर इतना नीचे रह गया, यह कहने की बनिस्बत हम इतने ऊंचे आ गये, यह भी कहा जा सकता था । हां, याने तुझे सपनो के खतरो से सावधान करने की कोई खास जरूरत नही है । तू उनसे कभी पीड़ित नही होगा । तू बडा सुरक्षित लगता है । किसी सपने से ग्रस्त हो जाने की आशा या आशंका तुझे कभी त्रस्त नही करेगी । हा, ऐसे प्राणी तुझे मिल ही जायेगे जो इसे बडे सौभाग्य की ही बात समझेंगे । जाओ, तुम अब नीचे चले जाओ । दूसरे सांप तुम्हारी राह देख रहे होंगे ।"

"और आप ? आपको तो उतरते वक्त सहारे की जरूरत पड़ेगी ।" युवा सांप ने कहा ।

"नही ! क्योकि मै लौटूंगा नही । मेरा एकलौता सपना तो टूट ही चुका है और आज नही तो कल, सत्ता भी मेरे पास से तेरे पास जाने ही वाली है । सत्ता नही और सपना भी

नही। फिर मै ही कहां बचा हूं ? मै तो सिर्फ एक केचुल हूं और उतरे हुए केचुल का क्या करना होता है यह मैं और तू नही जानेंगे तो भला कौन जानेगा ?"

युवा सांप कुछ बोले, इससे पहले ही बूढ़ा सांप आगे सरका और उसने अपना जीर्ण हताश शरीर धूप से तपती हुई निचली चट्टान पर झोक दिया। □

अनुवादक : डॉ. राजम पिल्लै

आदिम

रेखा बैजल

"युवक इस बात से आश्चर्यचकित था। इस शिशु के अस्तित्व का अर्थ था उस भोगी हुई यातनाओं और महाजन के घृणित कृत्य की स्मृति का होना। फिर भी इन सारी बातो को भूल कैसे गयी? शिशु के और उसके संबधों में इतना लगाव, इतनी पवित्रता कहां से आ गयी। अमंगल से उत्पन्न इतना मगल।"

वे दोनो जंगल से गुजर रहे थे। जगल काफी घना और अधेरे से भरा था। लेकिन उसकी ऑखो मे उजाला साफ उग आया था। असामान्य गति से वह झाड-झखड़ो को रौंदता, वह उस पगडंडी पर चला जा रहा था। युवती भी उसकी गति से अपनी गति मिलाकर चली जा रही थी। युवती की ऑखो मे उस गहरे नीले आकाश का विस्तार था। कभी युवक की ऑखो मे समाया प्रकाश थक जाय तो उसे अपने आलिगन में लेने वह आकाश आतुर था।

"मैने तुमसे पहले भी कहा था न, यह राह बड़ी कठिन है। और यह यात्र कब, कहॉ समाप्त होगी इसका भी तो मुझे अन्दाजा नही हैं। बेकार तुम मेरे साथ चली आयी। तुम्हारी ये जिद भी तो बेकार है। वह उसके पसीने से भीगे चेहरे को देखता बोला।

बचपन से हम दोनो साथ-साथ खेले हैं, साथ रहे है, अब जब के तुम उस व्यक्ति द्वारा बताये हुए सत्य की खोज मे निकले हो और रास्ता भी कठिन है, ऐसे मे मैं भला तुम्हारा साथ कैसे छोड़ सकती हूँ? वह मंद-सी मुसकायी।

युवक को देखकर वह जब भी ऐसे मुस्कराती उसकी ऑखों की ज्योति चमक जाती।

युवती की बातें सुनकर युवक के चेहरे की कठोरता भी थोड़ी कम हुई। पर उससे अधिक कोई प्रतिक्रिया उसने दर्शायी नही। युवक का चेहरा पढ़ने की अब उसे आदत सी हो गयी थी।

"क्या तुम सचमुच इतना विश्वास करते हो ऐसे किसी आदमी की बातों पर ?" युवती ने पूछा। "वह कोई ऐसा वैसा नही है, एक ऋषी है। उनका कहा कभी झूठ नहीं होता। क्योकि ज्ञान प्राप्ति करने के पश्चात वह कभी झूठ नही बोलते।"

युवती शरारतभरी मुस्कान से मुस्करायी। "मैं अज्ञानी हूँ, फिर भी एक सत्य तुम्हें बताऊँ ? मैं तुमसे प्यार करती हूँ। तुम्हारे बिना मै जी नही सकती। मैं तुम्हे पानी चाहती हूँ, स्वार्थ मे पाना चाहती हूँ। तुम्हारे साथ सहजीवन चाहती हूँ। तुम्हारा स्पर्श मै पाना चाहती हूँ। अपने गर्भ के अभेद्य द्वार को तोड़कर तुम्हारे बीज को वरण करना चाहती हूँ। युवती ने निःसंकोच हो कर कहा।

"क्या कह रही हो तुम ऐसा कहते तुम्हे संकोच नही होता ?"

"नही, मै ऐसा कुछ भी महसूस नही करती, क्योकि मेरी भावना भी तो एक सत्य है। और किसी भी सत्य को कहते हुए घबराहट कैसी ? क्या सत्य की खोज के लिए ऐसी किसी यात्रा की सचमुच आवश्यकता है ? सत्य तो हमारे आसपास ही होता है न ? इतना ही नही, अपना होना भी तो एक सत्य है।" युवती ने अपने ढंग से उसे समझाना चाहा। उसकी बातें सुनकर युवक की भृकुटी तन गयी।

"मैं तुमसे विवाद नही करना चाहता, तुम्हारा सत्य तो एक आम सत्य है। मुझे तो ज्ञानी व्यक्ति से सत्य जानना है।"

युवती के चेहरे पर विषाद-भरी हँसी छायी। "सत्य तो किसी ज्ञानी और अज्ञानी का भिन्न-भिन्न नही होता न ? सत्य का तो सबसे अलग अपना स्वयंभू अस्तित्व होता है।

युवती की बातें सुन, वह थोड़ा गड़बडाया, दुविधा मे पड़ गया। अपनी इस स्थिति से वह युवती पर चिढ़ा भी।

"तुम इस प्रकार के प्रश्न मुझसे ना करो। यदि तुम मेरे साथ आना चाहती हो तो ऐसे प्रश्न पूछकर मेरे मन में संदेह निर्माण मत करो।"

"यह संदेह नही है। वास्तव में ऐसी किसी यात्रा की आवश्यकती है, इस बातर पर तुम सोच सको इसीलिए मैं तुमसे कह रही हूँ।"

"बेवकूफ ! मैं उस ऋषी में विश्वास रखता हूँ। और उसने कहा है कि सात दिन और साद रातों के समाप्त होते ही मैं एक उँची कग़ार पर पहूँचुगा। उस ऊँची कगार से मैं उगते हुए तेजस्वी सूर्य के दर्शन करूंगा। सूर्य के उसी उज्ज्वल प्रकाश में मुझे सत्य के दर्शन होंगे।"

युवती ओठो को मोडते हुए हँसी, युवक की बातो पर अविश्वास जताते हुए, उसके सुंदर चेहरे की ये भावभंगिमा और भी निखर उठी।

"देखो, यदि ऋषि की बातो पर तुम्हे विश्वास नही, तो तुम क्यो मेरे साथ आ रही हो। अभी भी तुम लौट सकती हो।"

"मैं उस ऋषि पर विश्वास नही करती हू, लेकिन तुम पर तो करती हूँ। केवल तुम्हारे लिए, तुम्हारी इस हठधर्मी के लिए मै तुम्हारे साथ हूँ।"

उसकी ये बातें सुनकर युवक थोडा शात हुआ। उसके चेहरे पर थोड़ी मृदुता आयी।

"थक गयी ? चलो बैठते है, युवती के चेहरे पर से पसीने को पोछते हुए उसने कहा। युवक की इन बातों से स्पर्श मात्र से ही उसने सुख का अनुभव किया।

"तुम भी तो थके हो। देखो कैसे पसीना बह रहा है।" उसने निःसंकोच होकर अपना उत्तरीय निकाला और युवक के चेहरे से, पीठ से पसीना पोंछने लगी।

क्षण भर के लिए उसकी दृष्टि युवती की खुली देह पर अटक गयी। उसका वह तेजस्वी शरीर, यौवन से भरपूर ...... उसने अपनी दृष्टि हटा ली, युवती ने अपना ऑचल ओढ लिया। युवक ने उसका हाथ अपने हाथ मे ले लिया।

"तुम्हारा साथ है ये अच्छा ही हुआ। मुझे अकेले के लिए यह यात्रा कठिन हो जाती।" यात्रा असंभव ना सही, सुखकर भी नही होती। यह वास्तविकता मानते हुए भी उसके अदर का अह उसे कुछ अलग ढग से कहने के लिए बाध्य करता।

युवती भी इस बात को जानती थी, कितु शब्दों से अधिक अर्थ को और उसके चेहरे पर उभरने वाले भावो की ओर उसका ध्यान अधिक होता।

स्वयं थका हुआ होकर भी उसके थकने का बहाना सामने कर वह विश्राम के लिए रुका है यह वह जानती थी, और यह भी जानती थी कि उसकी यह आदत बचपन से है।

उसे याद है, बचपन में दोनों दौड़ा करते। वह थक जाती, कितु वह जोश मे दौडता ही रहता। फिर दोनो एक पेड पर चढ जाते। जरा ऊँचाई पर जाते ही उसकी पिडलियो में दर्द शुरू हो जाता। वह तब तक पेड की शिखा तक पहुँच जाता। और ऊपर जाकर उसे देख मुँह चिढाता होता। तबसे इसी तरह का अंहकार, तबसे ऐसी किसी भी घटना में उसके नथूनों का फूलना, गालो का फूलना। वह रूऑसी हो उठती। फिर नीचे उतरकर वह घरौंदा बनाती। घरौदे के सामने एक ऑगन होता। ऑगन के चारो ओर मिट्टी का बाड़ा होता। पेड़ की छोटी-सी डाली तोड़ कर वह ऑगन में खो देती। डाली की छाया ऑगन में होती। फिर कहीं से इकट्ठे किये गये फूलों से वह घरौंदा सजाती।

"देखो, कितना अच्छा किया है मैंने ......।

वह पेड़ से उतर आता और थोड़े रौब से घरौंदे को देखता। "तुम बना पाओगे

ऐसा ?" वह पूछती । "हॉ, पर ये काम मेरा नही है । यह काम तो तुम्हारा ही है ।" वह फिर रूऑंसी हो उठती ।

"फिर, पेड़ पर चढ़ना भी तो तुम्हारा ही काम है", वह पैर पटक कर कहती,

"हॉ, लेकिन वह तुम्हारे बस की बात नही है ।"

"फिर घरौंदा बनाना भी तुम्हारे बस की बात नही है ।"

"ऐसी बात नही, पर मैं वह काम करूँगा ही नही ।"

फिर दानों झगड़ पड़ते और पता नही कब एक-दूसरे मे हिल-मिलकर खेलने लगते ।

अभी भी वह उन घटनाओ को याद कर रही थी । वह उसकी ओर देख रहा था। एकटक । युवती ने लजाकर दृष्टि फेर ली ।

"तुम बहुत बदल गयी हो ।"

.... ?

अच्छी लग रही हो । पहले बहुत दुबली थी । अब ....

...... ?.....

उसने युवती की देह से दृष्टि घुमाई, युवती को लगा, वह आगे बढ़े और उसे अपनी बॉहो में भर ले । पर युवक झटसे उठ खड़ा हुआ ।

"उस ऋषी ने मुझे कुछ कहा था, नारी से दूर रहने के लिए .... चलो चलते हैं ।"

"पता नहीकहॉ से वह ऋषी आया और इसे भटकने के लिए छोड़ गया उस पर नारी से दूर रहने के लिए कह गया" युवती मन ही मन ऋषी पर चीढ उठी । पता नही कितना चलना है अभी । यह तो बस झट पट पैर उठाता है । इसका चलना देखकर लगता है कि किस हाड़-मास का बना है ।

चलते समय कभी वह आगे तो कभी युवक । अचानक वह रुक गयी । सामने एक बड़ा सर्प अपना फन निकाले खड़ा था । उनकी आहट से संतप्त, किसी भी क्षणदंश करने की मुद्रा लिए । मृत्यु का वह दैदिप्यमान लहलहाता रूप देख उसके पैर जमीन पर ठिठक गए । लौट जाए या दूर चली जाए, कुछ भी तो वह समझ नहीं पायी ।

स्तंभित बनी उस युवती को युवक ने झट से पीछे खीच लिया । एक लाठी हाथ में लिए वह आगे बढ़ा । उसके लाठी के बढ़ाते ही सॉप ने लाठी पर दंश किया । उसी क्षण युवक ने सॉप की ग्रीवा पकड़ ली । सर्प ने अपनी पूँछ से युवक के हाथों को लपटने का प्रयास किया । पर युवक ने दूसरे हाथ से उसकी पूँछ को पकड लिया । फिर अपने चारों ओर एक परिक्रमा करते हुए उसी वेग का सहारा लिए सारी शक्ति के साथ उसने सर्प को दूर फेंक दिया ।

सर्प नही साक्षात मृत्यु मानो हवा से होते हुए दूर जा गिरी । वह युवती के पास

आया। "डर गयी ?"

"हाँ।" वह अपने धड़कते हृदय पर हाथ पर रख कर बोली। "तुमने तो सर्प हाथ से पकड़ लिया। काट लेता तो ?" उसकी बात पर गर्दन को छोटा-सा झटका देकर वह हँस पड़ा। सर्प के काटने से मरने वाला मे नही हूँ। अपनी भुजाओं को उठाकर एक बार उसने अपने गठे हुए स्नायुओं को देखा।

"देखो, तुम इस तरह मेरे आगे-आगे मत चलना। मैं आगे चलता हूँ, तुम मेरे पीछे-पीछे आना। हमारी अनिश्चित यात्रा, केवल सर्प देखा और ठिठक गयी, वही के वही, पगली।

युवती को लगा वह सचमुच पगली है।

"पता नही कब वो कगार आयेगी ? मुझे तो केवल जमीन दिखायी देती है यहाँ से वहाँ तक फैली हुई।

"अरे, उस ऋषी का क्या भरोसा ? नौ-दस दिन कहा था, नौ-दस महिने भी हो सकते है। उनके सारे हिसाब ही निराले होते हैं, उनके बहकावे मे आने का अर्थ है .....

युवक ने झटसे उसे पलट कर देखा, युवती बात कहते-कहते रुक गयी। "तुम्हारी पहली बात सच है, ऋषी के लिए क्या दिन और क्या महीने। चाहे जो हो, नौ-दस महीने क्यों "नौ-दस वर्ष भी मैं यात्रा करने के लिए तैयार हूँ। चलो।" वह उसके पीछे-पीछे चलनें लगी।

"युवक के साथ चलना है", यही एक मात्र इच्छा उसे चलने के लिए बाध्य करती थी। पर वह था कि थकने का नाम नही लेता था। न खाना, न तन की सुध थी। भले ही कहता न हो, लेकिन अन्य समय तेजी से चलने वाले उसके कदमों को उसे बलपूर्वक उठाना पडता।

वह जान चुकी थी और डरती भी थी। वह ऐसा जिद्दी और आवेगी, यदि नही पहुँच पाया तो ...। वह मन ही मन टूट जाएगा।

"देखो, दो दिन इस जंगल में हम गुजरेंगे। थोडा आराम कर लेते हैं। दो दिन कंद, फल खाएंगे। थोड़े ताजे हो जायं, तो आगे चलते हैं।"

फिर अपने आप पर चीढ़ कर उसने गर्दन को नकारात्मक झटका दिया। और फिर कुछ न कहकर हाँफते हुए आगे बढ़ने लगा।

उसका हाँफता स्वर युवती के माने वक्ष मे अटक जाता। उसके थके पैरों को देख युवती अपने पैरों में वेदना महसूस करती। उसके काले पड़ते मुख को देख उसके अपने मन में अंधेरा छाने लगता।

अब तो युवक से अधिक युवती उस ध्येय पूर्ति के लिए ललक उठी थी। उस ध्येय

पूर्ति के बिना युवक सँवर (संभल) नही पायेगा यह वह खूब जानती थी। लेकिन इस अन्तहीन यात्रा में वह टिक पायेगा या नही, इस विचार ने भी युवती को डरा दिया था।

और ऐसे मे ही वे दोनों एक नगर तक आ पहुँचे। एक पेड़ के नीचे दोनो ही विश्राम करने लगे। इतने में वहाँ से गुजरती एक दयाशील नारी ने युवती के हाथ में एक मुद्रा रख दी।

युवती क्षण भर स्तंभित रह गयी। वह तो अपनी हथेली पर की प्रेमरेखा को देख रही थी और यह मुद्रा।

उस स्त्री के चेहरे पर दया उभर आयी। उसने युवक की ओर देखा। जंगल की यात्रा करते-करते चिथड़े बनी उसकी कमीज, चेहरे पर उभर आयी व्याकुलता, थकान, बिखरे केश और मेरी अपनी भी वही दशा। उस स्त्री ने उन्हें भिखारी समझ लिया तो कौन-सी आश्चर्य की बात है ?

युवती उस स्त्री के पीछे दौडी। उसने मुद्रा स्त्री के हाथ मे रख दी।

"हम भिखारी नही हैं" उसने मृदुता से कहा।

हिचकिचाकर उस स्त्री ने मुद्रा वापस ले ली। फिर युवती को निहारा। थकी हुई पर सौदर्य से भरपूर।

"तुम्हारी इन अदांवो का कारण कुछ भिन्न लगता है। बताओ क्या है ?"

"मेरा कारण तो बस यह है।" युवती ने युवक की और निर्देश किया।

"और उसका कारण ?"

उसका कारण है एक ऊँची कगार। उस कगार से दिखायी देने वाला उगता सूरज, और उस सूर्यप्रकाश में दिखाई देने वाला सत्य।

"भला ऐसा भी कुछ हो सकता है।

"हॉं लगता है। उसे लगता है एक ऋषी है, एक यात्रा है, एक सत्य है।" युवती ने कटुता से कहा।

"और तुम्हे क्या लगता है ?"

"मेरे लिए तो सब कुछ वह है। यह भी तो एक सत्य हो सकता है ना ?" प्रश्न करते-करते उसकी ऑंखें, भर आयी, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने अपने आप को संभाला। इन बातो को झेलना उसके लिए कष्टप्रद है। स्त्री को युवती की बातों से दया आयी।

"तुम्हें एक मार्ग बताऊँ" ?

"कहो"।

"यहॉं एक महाजन है। उसे बहुत-सी विद्याएँ अवगत है। अनेक सिद्धियॉं प्राप्त है। यातनाओं को समाप्त करने की सिद्धि, भूख न लगने वाली सिद्धि।"

"क्या ? सच कह रही हो तुम ?"

"हॉ बिल्कुल सच, तुम जा सकती हो। पर किसी सिद्धि को पाने के लिए किसी दिव्य से भी गुजरना होता है।"

"मैं हर दिव्य से गुजरने के लिए तैयार हूँ, मुझे उसका पता - ठिकाना दो", युवती ने उतावलेपन से कहा।

उस स्त्री ने युवती को महाजन का पता-ठिकाना बता दिया। युवती दौड़ते हुए युवक के पास पहुँची। थकान से चूर कदमो मे दौड़ने की शक्ति कहॉ से आयी यह बात वह समझ नही पा रही थी। उसके सामने दो ही बाते थी। एक थकान से चूर युवक, दूसरे महाजन द्वारा प्राप्त सिद्धि।

"चलो, हमे एक महाजन के पास जाना है।"

"किसलिए ?" युवक ने निरूत्साहित स्वर से पूछा।

क्षणभर के लिए युवती ठिठकी। किसी सिद्धी के लिए किसी के सामने याचना करना युवक के अहंकारी स्वभाव के विपरीत था, यह वह जानती थी।

"अरे वह एक वैभ संपन्न व्यक्ति है, चलो देख तो लें।"

क्यो तुमने कभी संपन्नता देखी नही ?

"बात ये नही है। अब हम यहॉ तक आ ही गये हैं तो उसकी संपन्नता भी देख लेते हैं।" वह सिद्धि की बात छिपा गयी।

युवक ने उसे विचित्र दृष्टि से देखा।

"चलो, तुम कहती हो तो, और तुमने मुझे यात्रा में सहयोग भी तो दिया है। वैसे मुझे ऐश्वर्य के प्रति कोई आकर्षण नही।"

वे दोनों उस वैभव संपन्न महाजन के पास पहुँचे। युवती की ऑखो मे उतावलापन, युवक उदासिन और महाजन ......। युवती को कहा पता था कि वह स्वयं किस वैभव से संपन्न है।

और अब तो जंगल की झाड़-झंखडों से भरी यात्रा मे उसके वस्त्रों को तो और भी विदिर्ण कर उसकी वैभवसपन्न देह को अनावृत्त कर दिया था। युवती की उत्कंठा से भरी दृष्टि, ऑखों की तेजस्विता, रेखांकित चेहरा, छरहरी देह और फटे वस्त्रो से झॉकने वाली सुनहरी काया .....महाजन की अतृप्त दृष्टि युवती की देह को निहार रही थी।

महाजन की ऐसी दृष्टी से युवती सचेत हुई, डर भी गयी और उसका मन घृणा से भर गया।

"देख ली तुमने वैभव-संपन्नता ?" युवक ने पूछा।

देख रही हूँ। वह समझ नहीं पा रही थी कि महाजन से कैसे बात करे।

इतने में महाजन ने थोडी गर्दन झुकाकर युवती को संबोधित किया।

"रुको, मैं अभी आयी, वह मुझे बला रहा है।"

वह जल्दी से महाजन के पास पहुँची।

"क्या चाहिए? महाजन ने आँखे गडाते हुए पूछा।"

"सिद्धि" यही तो समय है साफ-साफ कहने का, युवती ने सोचा।

"कौन सी सिद्धि?"

शक्तिदायिनी सिद्धि। सामर्थ्य वर्धिनी सिद्धि।

"हर प्रकार की सिद्धि पाने के लिए कुछ देना पड़ता है। क्यो तुम दे पाओगी?"

महाजन की दृष्टि युवती की सारे देह को टटोलते हुए अपना सौदे को आँक रही थी। और खुश हो रही थी। वह जान गया था कि वह फायदे में है।

युवती घृणा से रोमांचित हुई। अपना निचला ओठ उसने दाँतों तले दबाया। सहसा उसका ध्यान युवक की ओर गया। वह शक्तिहीन-सा खड़ा था।

"मै कीमत देना को तैयार हूँ। वह दृढ़ता पूर्वक बोली।

"तो फिर में भी सिद्धि देने के लिए तैयार हूँ।" वह महाजन लार टपकाते हुए तथा ओठ चबाते हुए बोल उठा।

युवती युवक के पास आयी।

"क्या तुम आगे चलोगे?"

"क्यों?"

"मुझे जरा महाजन से काम है। मैं तुम्हें इसी रास्ते पर आकर मिलूंगी।"

वह घृणा भरे चेहरे से उसे देखता रहा।

"उस अजनबी महाजन से भला तुम्हें क्या काम हो सकता है। आखिर तुम भी वैसी ही निकली, वैभव से चकाचौंध हो गयी।

"मैं तुम्हे बाद में बताऊँगी।"

"बाद में ? क्या तुम इस जकड़न से छूट पाओगी? मकड़ी के जाल में जिस तरह मक्खी अटक जाती है, उसी तरह अटक जाओगी।"

युवती ने गर्दन झुका ली।

"फिर मेरे साथ इस रास्ते पर चलने की क्या आवश्यकता थी। मैं चलता हूँ। अब मैं तुम्हारी प्रतीक्षा भी नहीं करूँगा।" वह क्रोध से बोला और उसी रौं में पैर पटकता महल के बाहर चला गया।

"तुम्हारी राह न देखने की आदत से परिचित हूँ। फिर भी मैं तुम्हारी राह नही छोड़ सकती।"

वह मुड़ी महाजन की वासना भरी दृष्टि के अंगारों पर हर पग रखती उसकी ओर बढ़ ।

वह चलता ही जा रहा था, तीन दिन हो गये । वह उससे दूर थी, उसके आने की भी कोई उम्मीद नहीं थी । 'छिछोर' । वह मन ही मन जल-भुन गया ।

कौन है वह महाजन ? धन मे लिडनेवाला । उसकी बातों में आ गयी । बड़ी आयी मेरा साथ निभाने वाली । उसके घृणित ऐश्वर्य के प्रभाव में आ गयी और सारा जोश ठंडा पड़ गया । लेकिन एक बात है, जब वह साथ थी, तब चलना अच्छा लगता था । वेदना से भरे पैरों को जब वह हाथ से सहलाती, दबाती तब कितना अच्छा लगता । उसका साथ देना मन को कितनी शक्ति देता । लेकिन इन तीन-चार दिनों मे अकेले पन से थका जा रहा हूँ । यह यात्रा भी अब अच्छी नही लगती । क्यों उसने ऐसा बर्ताव किया ? चंद सुनहरे सिक्कों ने उसे आकर्षित किया । हूं । नीच । लालची । उसकी यादों से असहाय हो वह उसे कोसता रहा । मेरा बर्ताव भी तो गलत था । उसकी ओर से मैं कितना बेफिक्र था । कितनी उपेक्षा की मैंने उसकी । मेरे लिए ही तो वह इस जंगल तो रौदती रही । कभी मैंने उसकी प्रशंसा भी तो नहीं की ।

उसकी वह कोमल काया । वह भी तो थकती होगी । लेकिन जब भी विश्राम करने बैठ जाता, वह मेरे पैर दबाती ।

इस क्षण भी उसके मन में अनेकानेक भावनाएँ उमड़ रही थी । उसी की फिक्र करने वाली उसकी याद से वह दुःखी हुआ । उसकी कोमल काया को बॉहों मे भर लेने के लिए वह छटपटा उठा । और एक पेड़ तले पीठ लगाए वह बैठा रहा । पीछे छोड़ आये रास्ते को वह देखने लगा, सहसा उसका देखना सार्थक सिद्ध हुआ ।

एक छोटा-सा बिदु रास्ते पर आकार लेने लगा था । शीघ्रता से निकट होता जाता । देह का लाल उत्तरीय दूर से ही चमकने लगा ।

वही तो है । दौड़कर आती हुई । अन्ततः वह दृष्टि में स्पष्ट होती गयी ।

वह एकटक देखता रहा । मन ही मन उसे घृणा भी होने लगी । वह महाजन ।

जैसे ही वह निकट आयी, अपने दौड़ने की गति को कम कर, वह धीरे-धीरे आने लगी । वह उसे देख रहा था । जरा ठुमकती चली आ रही थी । उसका इस तरह ठुमकना देख युवक ने मन ही मन उसे गाली दी । पास आते ही युवती प्रसन्नता से हॅसी । वह उसके पास बैठ गयी और अपना मस्तक युवक की गोद में रख दिया । "आ गयी ? क्यों वह वैभव नही भाया तुम्हें ?" वह विडंबना भरे स्वर से बोल उठा ।

वह हॉफ रही थी ।

तीन ही दिन में वहाँ के औरतों की ठुमकने की आदत तुम्हें भी लग गयी ।

"क्यों री? उस धनवान ने तुम्हें कोई नया उत्तरीय भी नही दिया? वही पुराना उत्तरीय?" युवती ने उसके ओठों पर हाथ धरा। "मैं उत्तरीय के लिए नहीं रुकी थी वहाँ।

"फिर?" वह ...... धनवान तुम्हें भोग कैसे देता है यह देखने के लिए रुक गयी थी?

युवती के आँखों में अंगारे दहक उठे। वह आवेग से उठी।" भोग? हाँ भोग ही तो। यंत्रणाओं का।"

उसने अपना घागरा पैरों से उपर सरकाया। युवक विस्फरीत नेत्रों से देखने लगा। दोनो जंघाओं पर, मांडीयों पर ऐसे नाखूनो के खरोंच थे, मानो किसी हिसक पशु के हो। सारा खून जमकर काले-नीले धब्बे पड़ गये थे।

"ये देखो", युवती ने देह से उत्तरीय हटाया। वह रोमांचित हुआ। खरोचो से सारा सौंदर्य नष्ट हो गया था। लगता था सारी देह काट-काट कर क्षत-विक्षत हो गयी थी।

उसने कातर हो कर युवती की द्रेह को सहलाया, जँघा पर उभर आये व्रणों को सहलाया।

युवती की आँखें भर आयीं, कंठ अवरूद्ध हो गया। "तुम नही जानते, नारी के लिए वासना से भरा रास्ता वेदनाओं के जंगल से गुजरता है। बहुत यातनाएँ हुई। नीच पशु था वह। चार दिन-चार रातें वह मुझे नोचता रहा। युवक ने सुनकर आँखें मूँद ली।

"जब तुम ये नही देख पाये तो और आगे देखकर तो बेहोश ही हो जाओगे। क्षत-विक्षत हूँ है। मै ठुमक कर नही चल रही हूँ। मैं चल ही नही पा रही हूँ।

युवक ने उसे अपनी बाहो मे भर लिया, साथ में अपने अश्रुओ को भी छिपा लिया। युवती मुक्त होकर रोने लगी।

"क्यों किया तुमने ऐसा? क्या आवश्यकता थी तुम्हे इस तरह पाशवी भोग देने की?"

मैं तो तुम्हारे लिए बलसिद्धि प्राप्त करना चाहती थी। वह सिद्धि महाजन के पास थी। इस भोग के बदले उसने मुझे वह सिद्धि दी है।

"क्या ....ये सब तुमने मेरे लिए?"

"हाँ ....। तुम्हारे लिए मैं प्राण भी दे सकती हूँ। यह तो कुछ भी नही। केवल शरीर। दुःख केवल इस बात का है कि, जिस देह को तुम्हें भोगना चाहिए था, उसे उस महाजन ने भोगा। जाने दो इन बातों को।"

"जरा अपना कान इधर करो, मैं तुम्हें वह सिद्धमंत्र बताऊँगी।"

युवक अवाक् था। उसके कान में युवती ने मंत्र का उच्चार किया। सामार्थ्य प्रदायनी शब्द। "इस मंत्र को तुम्हे केवल ग्यारह बार दुहराना है, तुम्हारी थकान भाग जायेगी।"

"मंत्र एक बार एक ही व्यक्ति पर असर करता है। यदि मैने भी उसका उच्चार किया

तो वह तुम्हे फल नही देगा। कहा ना वह मंत्र .... .यः

युवक समझ नही पा रहा था कि युवती से क्या कहे, युवती ने उस दिव्य बलिदान से स्तंभित अवस्था मे ही उसने ग्यारह बार मत्र का उच्चारण किया।

उनकी यात्रा अविराम थी। दिन बीतते गये, कुछ महीने बीत गये। युवक नये जोश से चला जा रहा था। युवती को उसके पीछे दौडना पडता। वे दोनों विश्राम के लिए एक वृक्ष के नीचे रुक गए। युवती ने कुछ कंदमूल इकट्ठे किये। युवक ने शिकार करके पक्षी पाया। सूखी लकड़ियॉ इकट्ठी कर आग पर मॉस भूनने लगी। युवक लेटे-लेटे युवती का निरीक्षण कर रहा था, वह उठ बैठा।

"तुममे काफी परिवर्तन दिखायी देने लगा है। बता सकती हो क्यो ?" युवक ने उत्सुकता से पूछा।

युवती दहकती ज्वालाओ को देख भी रही थी और नही भी। शायद ज्वालाओ से परे उसकी नजर थी।

युवक के प्रश्न से युवती गभीर हुई। उसने अपने पेट पर हाथ रखा।

"कुछ तकलीफ हो रही है ?"

"हॉ, मैं मॉ बनने वाली हूॅ।"

"क्या ?" उसने चौक कर पूछा।"

"हॉ।"

"यानी उस महाजन के शिशु की मॉ ?"

"नही मैं अपने शिशु की मॉ।"

"छीः नही चाहिए वह बच्चा। जिसने पशुता से तुम्हें भोगा हो, उसका शिशु ?"

"मेरे गर्भ में जो पल रहा है, वह मेरी अपनी क्षमता है। मै स्वयं में से किसी का निर्माण कर सकती हूॅ। शायद भोग लेने वाले से भी अधिक यातनाओं को सहने वाले व्यक्ति का होता है शिशु।"

"मुझे शिशु चाहिए।" उसने दृढतापूर्वक कहा।"

"तुम स्वयं इस दुख को ओढ रही हो।"

"जीवन का निर्माण भी तो दुखदायी होता है।"

"लेकिन तुम भी तो इस अन्तहीन यात्रा पर हो। और ऐसी यात्रा में यह शिशु ?"

"मैं सम्भालूॅगी अपने शिशु को।"

"इस शिशुकी तुम्हें लज्जा नही आयेगी ?

"लज्जा .. तो उस क्षण के प्रति है। मातृत्व की लज्जा कैसी ? वह तो मेरी क्षमता है, अधिकार है। मेरी पूर्णता है।"

युवक उसे एकटक देखता रहा। युवती की ऑखों से शैशव कब का लुप्त हो चुका था।

अब वहाँ केवल शाति थी।

युवक को लगा युवती उससे कही अधिक श्रेष्ठ है। युवक की दृष्टि का अर्थ वह जान गयी। एक संतोष भरी मुस्कान उसके चेहरे पर थी।

युवक ने सेका हुआ अन्न युवती के सामने रखा। उस अन्न में से थोड़ा ज्यादा ही हिस्सा युवक ने युवती के सामने रख दिया।

"तुम यह खा लो। और अब अधिक खाया करो। अब तो तुम्हें दो जीवो को पालना है।"

उसकी इन बातों से युवती का गला भर आया, पर धुँए का बहाना कर उसने ऑसू पोछ लिए। युवती की गति जरा मंद होने लगी थी। वह भी उसकी गति से अपनी गति मिलाता चलता।

"मेरे कारण अब तुम्हे धीरे चलना पड़ रहा है।"

"मुझे क्या हुआ है? इतने दिन तुम भी तो मेरी गति से गति मिला कर चल रही थी।" वह उसके भरे-पूरे गर्भ की ओर देखता हुआ बोला।"

"कुछ पीड़ा होती है?"

"पीडा तो होती है पर लगता नही। देह बोझिल हो जाती है, पर अपनी ही गोद मे एक जीव आकार ग्रहण कर रहा है, बाहर आने के लिए छटपटा रहा है, यह भावना ही सारी यातनाएँ दूर कर देती है।"

"कैसी होती है उस शिशु की अनुभूति? उसने कौतूहलवश पूछा।

युवती संतोष से मुस्करायी। उसने देखा इन दिनो उसका अहंकार कुछ कम हुआ है। किसी ऐसी क्षमता को उसने जान लिया था जो उसके पास नही थी। युवक के प्रश्न का उत्तर देना उसके लिए असंभव था। उसने युवक का हाथ अपने पेट पर हौले से दबाया। गर्भ से बाहर आने के लिए छटपटाते जीव का हिलना-डुलना, वह स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा था। वह किसी शिशु के समान मुस्कराया।

"वह जल्दी ही जन्म लेगा।"

"बाप रे!"

"इतना क्यों घबरा रहे हो। जितना मैं कहूँगी उतनी सहायता तुम मेरी करोगे?"

"हॉ।" उसने शीघ्रता से उत्तर दिया। और फिर किसी ऐसे ही क्षण वह देखता रहा ......उसका छटपटाना, कराहना, वेदना सहना, पसीने से भीग-भीग जाना वह देख रहा था। इस कोमल देह में इतनी सहनशक्ति कहॉ से आयी। वह विस्मित होकर देख रहा था।

दूसरे क्षण उसकी मुक्ति। वेदनाओं का अंत, उसके चेहरे पर छायी सार्थकता, शिशु का रोना। युवती ने उठाकर उत्तरीय की आड़ लेकर वक्ष से लगा लिया।

वह चुप था।

फिर उसी यात्रा का आरंभ। अब उस यात्रा के तीन यात्री थे, उनमे एक सबसे अनभिज्ञ केवल निसर्ग की पुकार पर हुंकार भरने वाला। दोनो में से किसी एक की गोद में यात्रा करने वाला। फिर युवती ने पेड़ो की खाल से झोली बनाकर अपनी पीठ में बॉध ली। शिशु को उसमें सुलाया और युवक की गति से गति मिलायी।

वह दोनों एक जगह रुक गए। बीहड जंगल मे एक घने वृक्ष की छाया मे।

युवती शिशु से खेलने मे मग्न थी।

युवक इस बात से आश्चर्यचकित था। इस शिशु के अस्तित्व का अर्थ था उस भोगी हुई यातनाओ और महाजन के घृणित कृत्य की स्मृति का होना। फिर भी वह इन सारी बातों को भूल कैसे गयी? शिशु के और उसके सबधो मे इतना लगाव, इतनी पवित्रता कहॉ से आ गयी, अमंगल से उत्पन्न इतना मंगल।

इतने मे एक साधू की साडसी बजी। वह झट से उठा। साधू के सामने झुक गया।

"कहॉ जा रहे हो बेटा?"

"सूर्य की ओर (दिशा में.)"

"सत्य का दर्शन कराने वाले सूर्य की दिशा की ओर?"

"हॉ...हॉ... तुम जानते हो उस सूर्य को। कहॉ है वह स्थान।" युवक ने कौतूहल से पूछा। "बिल्कुल निकट। कुछ प्रहर के अतर पर, तुम वह सूर्य देखोगे कैसे?"

"अर्थात्?" उसने चकित होकर पूछा। युवती भी शिशु से खेलना छोड़, दोनो की बातें ध्यान पूर्वक सुनने लगी।

"जिसने तुम्हे सूर्य के बारे मे बताया, क्या उसने तुम्हें सूर्य के बारे में ये नही बताया कि उस सूर्य को तुम अपनी ऑखो से देख नही पाओगे। उस सूर्य के बिंब को किसी दूसरी वस्तु पर प्रतिछावित करना होता है, वह प्रतिबिब ही हमे ज्ञान देता है।"

"नही, उसने ऐसा कुछ भी तो नही कहा था।"

"तो फिर सुनो, वह बिब तुम खुली ऑखों से नही देख पाओगे। सूर्य के प्रतिबिब को ही तुम्हें देखना होगा। और उस समय इस जंगल में ऐसा कोई भी साधन नही है। क्या तुम्हारे पास कोई ऐसा साधन है?"

"नही, मेरे पास भी कोई ऐसा साधन नही, है, लेकिन मैं निकट के किसी गॉंव से ....।"

"अब इस का कोई अर्थ नही, क्योकि कल प्रभात के प्रथम प्रहर में ही सूर्य दो वर्ष के लिए अमंगल छाया मे प्रवेश कर रहा है। उसके पहले ही सूर्योदय के क्षण में ही तुम्हें उस

सत्य के दर्शन करने होंगे। कोई भी गॉव इतना निकट नही है कि तुम रातभर में लौट सको। फिर तुम्हें दो वर्ष के लिए रुकना होगा।"

"क्यों दो वर्ष ?"

"हॉ।" कह कर वह साधू निःसंग-सा चला गया।

युवक निराशा से मस्तक को हाथ लगा कर बैठ गया।

युवती उठी, उसने युवक के कंधों पर हाथ रखा।

"सारी यात्रा विफल हुई। अंतिम क्षण मे सफलता मुझे भुलावा दे गयी। और इस यात्रा के लिए भी तो केवल एक बार प्रस्थान किया जा सकता है। अब मैं वह सूर्यदर्शन कभी भी कर नही पाऊँगा।

युवक के ओठ उस निराशा के आवेग मे थरथराने लगे। ऑखे उसके पराभव के साक्षी थीं। हर समय उन्नत रहने वाले उसके कंधे झुक गये थे।

युवती से उसकी वह दशा देखी नही जा रही थी, वह भी सोच में पड़ गयी। दूसरे ही क्षण उसकी ऑखें चमक उठी।

"चलो, अब उठो यहॉ से हमें जल्दी पहुॅचना है।" वह उत्तेजित स्वर में बोली।

"लेकिन, प्रतिबिब का वह साधन .... ?"

"अब और अधिक कुछ न पूछो, चलो मुझे उपाय मिल गया है।"

"कौन-सा उपाय ? तुम्हारे पास तो कुछ भी नही है, और कहती हो उपाय है।

"तुम मुझ पर थोड़ा तो भरोसा करो।"

"मैने तुम्हारे साथ इतनी लंबी यात्रा की है, फिर भी तुम्हें मुझ पर भरोसा नही है। क्या मै कुछ कह नही पाऊॅगी।"

"अब तुम कह रही हो तो चलो," वह निरुपाय होकर उठा।

सवेरे-सवेरे वे दोनों उस कगार पर पहुॅचे। पूर्व दिशा उज्ज्वल हो रही थी। सूर्य की पहली किरणे पूर्वा के गर्भ से निकल धीरे-धीरे फैल रही थी।

वह शांत मुद्रा लिए पूर्व दिशा की ओर देखती रही, शिशु को अपने वक्ष से लगाये बीच-बीच में कभी वह अपने शिशु को देख लेती, कभी उसकी ओर। किन्तु वह अस्वस्थ। अचानक चिढ़ कर बोला।

"मैं समझ नही पा रहा हूँ, तुम्हारे मन में क्या है ? युवती ने एक रहस्यमयी मुस्कान लिए उसकी ओर देखा। देखते-देखते सूर्य बिंब ऊपर आ गया। अत्यंत तेजोमय, चमचमाता वह बिब। उस दिशा की ओर दृष्टि उठाना भी असंभव। वह उठी, उसने अपना संपूर्ण चेहरा उस बिब की ओर किया। उसने अपने विशाल, काले नेत्रों को पूर्णतया खोल दिया।

"सुनो, तुम्हें उस बिब का प्रतिबिब देखना है ना, देखों, मेरी ऑखों में।" उसका स्वर

मानो स्वय के लिए कठोर बन गया।

युवक सहम उठा।

"नही, यह बिब तुम्हारी दृष्टि बिद्ध कर देगा।"

"मैं तैयार हूं। तुम्हें सौगध, तुम्हें इस बिब का दर्शन मेरी आँखों मे करना होगा।"

"तुम दृष्टिहीन हो जाओगी।"

"तुम मुझे जीवनभर साथ दोगे। पर अब समय न गँवाओ। कुछ ही पल में सूर्य निस्तेज होगा। फिर कोई उपाय नही रहेगा। तुम्हे शिशु की सौगध।"

वह युवती के सामने खड़ा था। उसके विशाल नेत्रों ने उस बिब को झेला था। पलक भी न झपकते हुए वह विस्फारित नेत्रो से बिब की ओर देखती रही। और वह उस प्रतिबिब को।

युवती की मुट्ठियाँ ऐठने लगी। बिब का तेज नेत्रों की पुतलियों से होकर नेत्रपटल को भेद रहा था। किन्तु उसकी पलके झपकती न थी।

कैसा सत्य? कौन-सा वास्तव जो मुझे इस प्रकाश मे दिखाई देने वाला था? वह खोज रहा था। और ऐसे ही किसी अनुभूति के क्षण मे वह सत्य उसे दंश कर गया।

दुःख के आवेग से चित्कारते उसने अपनी दोनो हथेलियो से युवती की आँखे बंद की।

"मुझे क्षमा करो, मै अपने आप को तुमसे श्रेष्ठ समझता था। किन्तु सूर्य के उस प्रकाश में मैंने इस सत्य को जान लिया है कि तुम मुझसे श्रेष्ठ हो। तुम अपने आप को भुला सकती हो। मै नही भूल सकता। तुम मेरे लिए कुछ भी कर सकती हो। इतने वर्ष से यह सत्य तो मेरे आस-पास ही था पर अहंकारी मैं, उसे देख न पाया। तुम्हारी क्षमता को मैं समझ ही नही पाया। तुममे तो यह आकाश, यह धरा समाविष्ट है, पर यह बात मै जान ही न पाया, मुझे क्षमा कर दो।" युवती की सूर्य तेजस्विता से ज्योतिहीन हुई आँखों के आगे कुछ भी न था।

"अपने श्रेष्ठत्व को सिद्ध करने के लिए तुम्हें दृष्टिहीन होना पड़ा", युवक रूद्ध कंठ से बोला। उसके बिना तो तुम जान ही न पाते युवती बुदबुदायी।

"चलो, मैं तुम्हें सहारा दूँगा। शिशु को अपना नाम दूँगा। कभी तुम्हें अपने से दूर नही होने दूँगा। चलो।"

वह आगे बढ़ा। युवती का हाथ अपने हाथ मे ले लिया। युवती ने अपने अंधत्व को स्वीकार करते हुए शिशु को उठा लिया और उसके पीछे चलने के लिए कदम बढ़ाया। □

अनुवादक : डॉ. सौ. उषा कुमार हर्षे

ऊपर-नीचे कूदिए महामहिम महाराज

मार्टिन वैक्स

एक ऐसी दावत का आमत्रण जो अपनी रचना और शैली मे अजीबोगरीब है। मार्टिन वैक्स की यह प्रतीकात्मक कथा अपने कथन और शिल्प का नवीन प्रयोग उपस्थित करती है।

सेलेस्टीन तथा मैक्सिमॉफ एक दावत देने वाले हैं, आप सबको निमंत्रण है, ऊपर-नीचे कूदने का। यह दावत किसी भी राजधानी मे हो सकती है जिसमे बगीचे, महल, बड़ी सड़कें चलने-फिरने के लिए, छते, संगीत समारोह के बड़े कमरे हो और वहां के लोग खुशी और आनंद में सम्मिलित होना चाहते हो।

अंक एक

एक सार्वजनिक बाग (बगीचा)

पेड़ों के बीच (नेपत्थ के बाएं ओर) चार आदमी, दो भारी खंभे उठाये (जो कि हल्के कपड़े के बने है), लडखड़ाते हुए चलते दिखाई पडते हैं। क्योंकि ये रंगमंच के सामने का भाग है। वे, उन खंभों को सीधा कर खड़ा करते हैं, उन्हे बीस गज़ के फासले पर अलग करते हैं, और उनके बीच एक रस्सी टांग कर एक पर्दा लटकाते हैं। मंच अब तैयार है। अतिथि मंच के सामने एकत्र होते है, पर्दों को खीचा जाता है। उनके पीछे घास पर बारह बक्से रखे हैं। धुर-बाएं ओर आखिरी छोर से, एक भोंपू ट्रम्पेट निकल रहा है। एक स्वर के साथ भोंपू ऊपर उठता है, और उस बक्से से उसके बाद निकलता है हेनरी। वह अगले बक्से पर एक स्वर संचारित करता है और एक शहनाई प्रकट हो जाती है, उसके बाद ही कला उभरने लगती है। तीसरा बक्सा विशेषकर ज्यादा बड़ा है। उनमें तार वाद्य है,

जबकि चौथे में गिटार बजाने का यंत्र है, और पांचवे में ट्रेवर ढीलनुमा यंत्र है। ढोल वाद्य यंत्र के साथ उपस्थित होता है। वह सभी 'तेंदुआ' और स्त्री प्यार में पड़ी नारी बजाते हैं।

संगीत लाउवर लूथर का : शब्द ब्रॉक के

तभी, जब ऐसा हो रहा होता है तब शब्दों का उच्चारण करते हुए मैक्सिमॉफ और सेलेस्टीन, जो कि मेजबान हैं, छः और सात नबर के बक्सो में से निकलते हैं।

बाकी पाच बक्सो में, हर एक मे दो नाचने वाले हैं, उनके नाम हैं (स्त्रियों के नाम पहले जैसे कि होता है) अलाज़ेज और बारथेलेमी, अलगाय और पाथाऊ, गैलार्ड और बेरिनज़र, गाउज़िया और ओथोन, एसलारमांड और फेबरीस। मैक्सीमॉफ और सेलेस्टाइन चीख पड़ते है।

'हमारी दावत मे आपका स्वागत है।'
पूरी कंपनी के लोग चीख पड़ते हैं। अब ऊपर नीचे कूदिये
वे इकट्ठे होकर कूदने लग जाते हैं।
संगीतः जोडे कूद रहे है—वालर

वे संगीतज्ञो को घेर लेते है। पहले जोडे नाचते है फिर संगीतज्ञ भी हिलना शुरू कर देते हैं। जोड़े अलग हो जाते है और द्रष्ट वालो पर नये साथियों को पाने के लिए कूद पड़ते हैं। बाग और मेहमान कूद रहे है। रंगमंच धराशायी हो जाता है। कूदने वाले मेहमान बाग में बिखर जाते हैं।

अंक दो

नदी के पास

शहर के बीचोबीच मेहमान एक नदी के किनारे पर इकट्ठे होते हैं। एक बहुत विशाल नाव उनकी तरफ धीरे-धीरे जलधारा की प्रतिकूल दिशा में जाती दिखाई पड़ती है। इस नाव को खेने वालो में चाटर्ड अकाउटेंट, शेयरों के दलाल, कंपनी संचालक और भूतपूर्व प्रधानमत्री हैं, जो दारोगा है वह एक विशाल अफ्रीकन उपन्यासकार है। उसने प्री-कोनकोर्ड पिछ्ले साल जीता है। वह एक मगरमच्छ की चमड़ी से बना छांटा लिए फिरता है। वह उसे सिर्फ सबसे मोटे दलालो पर ही इस्तेमाल करता है।

नाव के सबसे ऊपरी भाग पर दावत अभी जारी है। मेजबान और मेहमान बेका-टीस की तरह कपड़े पहने है, मेज़ पर दावत से बची चीज़ें लदी हुई हैं। वे अपने आपको एक दूसरे पर अंगूर निचोड़ कर और उसके दिए गए धब्बों को एक दूसरे के, जिस्म से चाटकर प्रसन्न हो रहे हैं।

वह अपने आपको महगी लाल शराब से तरोताज़ा कर रहे हैं। जो दक्षिण से है।

यह शराब हमारी माननीया का खून है—काबेस्तानह की प्रियतमा का। टुपडोर के गानों का कंपन पानी में से होता हुआ लोगो तक पहुंचता है, जो किनारे पर खड़े हैं।

जब नाव किनारे तक पहुचती है वह बहुत धीरे से डूबती है, इसलिए वह लोग, जो ऊपरी हिस्से पर हैं, उन्हे पहले-पहल अपने सहसा डूबने के खतरे का पता नही चलता। कुछ नाव खेने वाले कम भाग्यशाली थे वे अपने चप्पू के साथ ही जुड़े हुए डूब गये, परंतु ज्यादातर समय रहते छूट गये। दावत में जाने वाले नदी में डुबकी लगाते हैं और तैर कर किनारे लग जाते हैं। वह किनारे पर बड़ी कठिनाई से हाथ-पैर से चढते हैं और हॅसते, शोर मचाते हुए, भीड से गुजरते हुए, शहर मे बिखर जाते हैं।

अंक तीन

महल में चाय

एक सौ मेहमान इस अंक मे निमत्रित हैं। उस राजपथ पर जो कि महारानी, राष्ट्रपति, राजा-महाराजा के महल तक जाता है, उस पर पचास पीतल के बिस्तरे दस कतारो मे लगा दिए जाते हैं। उसके साथ ही साथ पांच बिस्तर और भी लगाये गये हैं। हर एक बिस्तर पर एक बिजली का इजन लगा है जो कि शहर मे दूध बेचने वालों से उधार लिया गया है। वह सब एकदम निश्चल खडे हैं, जब तक कि चाय का समय नही हो जाता।

मेहमान, दो, एक बिस्तर पर, एक औरत और एक आदमी, और औरत के साथ, एक ही तरह के कामुक लोगों की तरह बैठे हैं। ये सब लोग दोपहर का भोजन पचा रहे हैं। जो कि (आपको याद होगा उन्होने बड़ी नाव पर किया था)। आदमियों ने धारीदार नरम सूती कपडे के पाजामे और रात को पहनने वाली टोपी पहन रखी है। औरतों ने पुरातनपंथी ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया के समय का महीन कपड़ा पहन रखा है। सेलेस्टाइन निसंदेह मैक्सीमॉफ के साथ पहली कतार के बिल्कुल बीच वाले बिस्तर पर है। वह जागती है, अंगड़ाई लेती है। एक बड़ा भोंपू चादर के नीचे से उठाती है और चिल्लाती हुई कहती है—चाय का समय हो गया है।

लड़कियां और आदमी जागते हैं। आदमी अपने इंजन शुरू करते हैं। लड़कियां अपनी सफेद चादरो के नीचे से उन सफेद कपोतो को आज़ाद कर देती हैं। जिन्होंने कि वहां घोंसले बनाये हुए थे। यह शोभायात्रा आगे चलती है। उनके पास भीड़ पर फहराने वाली झंड़ियां हैं, पार्टी (दावत) में बजाये जाने वाले ची-ची करने वाले यंत्र है, सीटियां हैं, खिलौने जैसे भोपू हैं, और इतने बड़े पटाखे हैं जो कि बिस्तरो से खीचे जा सकते हैं जो कि संयोग से, नावों की तरह ही पतवार से खेये जाते हैं, जो कि अगले पहियों को नियंत्रित भी करते हैं।

वे सब महल मे पहुंचते हैं। उसके सामने एक बडा और सजावटी/कलात्मक फौवारा है। सब बिस्तरे उसके साथ-साथ एक घेरे में लग जाते हैं। जोड़े सावधान मुद्रा मे खडे होते है। आदमी कुशलता से पतवार सभाले हुए है। सभी लड़कियां अब कागज की टोपिया पहने हुए है, जो कि, पटाखो से निकली है, वह चुस्ती से सलामी दे रही हैं।

जब तीसरी कतार के बिस्तर एकदम महल के गेट के सामने लग जाते है तब सभी अपने भोपुओ को उठाकर, एक साथ, उसमे चीखते है—ऊपर नीचे कूदिए, महामहिम।

राजपथ से 50 गज की दूरी पर कुछ सुविधाजनक सीढ़िया है। यहां आकर जोड़े उतरते है। अपनी-अपनी पदवी के अनुसार खडे होकर शहर की तरफ कवायद करते हुए जाते है।

बहादुर बूढा यार्क का सामत। उसने उन्हे पहाडी के ऊपर तक कवायद कराई और फिर नीचे तक।

वे शहर मे बिखर जाते है फिर से? यानी हा। शहर मे अब काफी लोग कुछ नशे मे बिखर गये है।

अंक चार

सीलेस्टीन और मेक्सीमोफ का विवाह सस्कार

एक विशाल गोल कमरा। बीचो-बीच एक गाने-बजाने वालो का समूह बिठा दिया गया है। वह खुशी-खुशी सारी शाम वाद्य बजाते रहे और इसी तरह रात-भर भी। दीवारो के पास मेजे है जिन पर पीने और खाने का सामान रखा हुआ है। यहां नाचने के लिए एक अच्छा फर्श है। कुछ मच गोलाई मे खडे किए गये है। इन हर एक मच पर दूल्हा अपनी दुल्हन का इंतजार कर रहा है। मेक्सीमोफ और सीलेस्टीन तथा सुबह के पाच नाचनेवाले जोड़े कुल मिलाकर छह जोडे है। अन्य जोडे है मेथीना और गीलाऊम, जेनटाइल और जेकयूस वुइसेन और अरनोड़, ऐलीमेडी और पौस, अलीसेड और गूइलदेबरट मेनगार्दी और प्रादिस प्राड। दूल्हो ने ऐसे कपडे पहने हुए हैं जो कि (यद्यपि प्रत्यक्षतः ऐसा नही है) फ्रांसिस्कन भिक्षु की आदत हो सकती है। उनके पीछे ऊंचे गद्दे लगे हुए हैं जिन पर वह कुछ देर के बाद वे लेट जाएगे। दो सेवक उनकी देखभाल कर रहे है। कुछ समय के बाद वह उनके कपडे उतार लेगे। परंतु अभी वह दूल्हों के सामने उन पाठो कोलेकर झुककर बैठे हुए हैं। उन बारह मूल पाठो को जिन्हे कि दूल्हे दुल्हनो के आते ही, एक ही लय मे गाना प्रारंभ कर देगे हर एक का पाठ अलग-अलग है। यह यो है—साइक्लोट्रोन के डिजाइन बनाने के निर्देशः विस्तार से लिखे हुए मशीन के ढाचे का विवरण, फुटों मे आड़ी तिरछी सॅड पेपर बनाने की मशीन की रूपरेखा, वर्णनात्मक ढंग से पहली पानी बंद करने की टोटी का वर्णन, दूषित पानी को रोगाणुहीन करने का ढंग, पूरा कुल्हा बदलने की शल्य चिकित्सक द्वारा रिपोर्ट, एक (शरीर के) अंग का वर्णन जिसे कि मेकसिको के विश्वविद्यालय के उस कमरे में

जहां संगीत होता है, लगाया गया है। एक विक्टोरियन गठीला, कड़वा, मुरब्बा बनाने की विधि, ट्रैफिक। यातायात को कम्प्यूटर द्वारा संचालित करने के निर्देश, एक किताब जिसमें कि 500 साल के टाइप के फोन्ट के विषय बताया गया है।

सुनहरी हिस्से को सुलझा कर बताना, और पूरे शरीर की रचना का विज्ञान—पैर के अगूठे से लेकर..... यह वह आखिरी पाठ है जो कि श्रीमान मेक्सीमोव पढ़ते है।

त्वचा और नाखून के नीचे रेशेदार जाल हाथ की सिरे की अंगुलियो की हड्डियो को ढंके रहते है जो कि पैर की हडिड्यो से मिलते-जुलते हैं। जो पैर की हड्डियां है वह अनुकडरिका और अंतराअस्थि मांसपेशियों से घिरी हुई है, और उनके साथ-साथ ही लबी अकोयनी पेशिया और पैर की प्रसरिणी पेशिया पाष्णिका पेशीबंधन गिलाफ मे हैं। टखने की पांच हड्डियां है। ये है पाष्णिकास, घुटिकास्थि, कीताकार, घनस्थि और नावीकूला। ये सब मिलकर टखने का जोड़ बनाती हैं। पांष्णिका ऐडी बनाती है (ऐडी श्रीमान मेक्सीमोव ने सोचा......) यह एक बहुत भयानक शरीर रचना की पुस्तक है (पांष्णिका मे) भीतर जाकर जुड़ जाती है।ये दो हड्डिया टाग का निचला हिस्सा बनाती है। टखने के जोड़ के इर्द-गिर्द जो मासपेशिया हैं, उनमे बर्हिजघिका जो कि मुख्य है। अंतर्जघिका बनाता है जबकि पीछे का पिछला बनाता है। टांग के नीचले हिस्से की हड्डियां यकीनन जांघ की हड्डी से ....

दुल्हनो को, जो कि वैभवशाली, भव्य सफेद पोशाकें पहने है और जो ताजपोशी पर पहनी जाती है चार दासियो द्वारा लाई जाती है। वहां पर दूल्हे कवायत कर रहे हैं—यह धीमी आवाज मे एक साथ पढा जाता है, परतु अब वह अपनी आवाजों को ऊंचा कर लेते है और अपनी जबान से अष्टम स्वर मे सुर निकालते है जो कि पहले से भी ऊंचा है। यह क्षण दुल्हनो के कपड़े उतारने का है। दूल्हो को सिर्फ एक कार्य करने की आज्ञा दी जाती है—वह अपने-आप ही अपनी प्रेमिकाओ के घूंघट उठाते है परतु यह सब करते हुए भी वह अपने पाठ मे कोई कमी नही आने देते।

नौकरानियां दुल्हनो के कपड़े उतार देती हैं—संपूर्ण आखो देखा हाल के लिए मार्सल डूंचाप को देखिए।

अब घड़ी है—दूल्हों के कपडे उतारने की नौकरानियां अब अनुचरो की सहायता से दूल्हों को गद्दों पर बैठाती हैं और दोनों साथ-साथ दुल्हन को दूल्हे पर चढ़ने मे सहायता करती हैं।

दूल्हों से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपना पाठ जारी रखे परतु एक खास मौके पर आकर उनकी आवाज़ एक कराह बन जाती है। यह कराह जीवन के सुख की है। यह नही कहा जा सकता कि दावत खत्म हो गयी है। दावत तो अभी शुरू हुई है।

"ऊपर-नीचे कूदिए महामहिम" □

अनुवादक : अनीता थापर

किताब

सुरेश उनियाल

संचार क्रांति के इस युग मे पुस्तक कहाँ खो जाएगी, इस आशंका को निरंतर प्रकट किया जाता रहा है। कम्प्यूटर के इस युग को पार कर लेने के बाद लिखे हुए शब्दों का क्या अस्तित्व रह भी जाएगा।

गलती मुझसे हो गई थी, इसे स्वीकार करने में मुझे कोई गुरेज नही है। इनसान हूँ और इनसान तो होता ही गलती का पुतला है।

किताब की खोज मेरी गलती नही थी। गलती यह थी कि अपनी खोज पूरी होने से पहले ही मैने इसके बारे मे अपने दोस्त अनन्तपाणि को बता दिया था। अनन्तपाणि ठहरा व्यावसायिक बुद्धि। वह तो मेरी इस खोज मे अपने लिए रुपए की खान देख रहा था।

मैने उसे बहुत बताने की कोशिश की कि अभी किताब की खोज पूरी नही हो पाई है। मै अभी किताब के भीतर जाने का रास्ता ही बना सका हूँ, बाहर निकलने का नही। इस बात की संभावना तो जरूर थी कि भीतर गया आदमी किताब में से बाहर निकलने का रास्ता अपने लिए बना सकता था और सुरक्षित बाहर आ सकता था, लेकिन इस सबकी प्रोग्रामिग मै अभी कर नही पाया था। यानी मेरे हाथ मे इतना तो था, कि मैं किसी आदमी को किताब के भीतर भेज सकूं और अंदर की किताब की दुनिया में उसे छोड़ दूं।

यह सब कुछ-कुछ वैसा ही था जैसा महाभारत में अभिमन्यु वाले किस्से में होता है कि उसे चक्रव्यूह में जाने का तरीका तो पता था, लेकिन बाहर आने का तरीका पता नही था। यहां फर्क इतना है कि अंदर गए आदमी को जान का कोई खतरा नही था। कम से

कम किसी बाहरी हमले का डर उसे नही था, कमजोर दिल का कोई आदमी वहा के थ्रिल को बर्दाश्त न कर सके और दिल के दौरे से मर जाए तो यह बात अलग है।

मेरा डर था भी यही। मै चाहता था कि मैं किताब की खोज पूरी कर लूं। आदमी किस तरह किताब के भीतर जाए, वहां किस तरह किताब का पूरा मजा ले और फिर किस तरह बाहर निकले, मैं इस सबकी पूरी प्रोग्रामिग तैयार कर लेना चाहता था।

मै ऐसी व्यवस्था भी रखना चाहता था कि कोई व्यक्ति अगर पूरी किताब से गुजरे बिना, किसी भी वजह से बीच मे ही बाहर आना चाहे तो उसे बाहर निकाला जा सके। इस सबकी प्रोग्रामिग अभी तक नही कर पाया था।

माफी चाहूंगा, मै अपनी धुन मे यह सब कहे जा रहा हूँ, बिना इस बात का ख्याल किए कि मेरी बात आप समझ भी नही पा रहे हैं या नही। और आप समझेंगे भी कैसे। आप कैसे जानेंगे कि मै किस किताब की बात कर रहा हूँ। इक्कीसवीं सदी के इन आखिरी वर्षो में किताब का जिक्र ही आपको बेवकूफी लग रहा होगा।

आपका सोचना गलत नही है। किताब जैसी चीज तो कोई सौ बरस पहले हुआ करती थी। वह कम्प्यूटर क्रांति से पहले की चीज थी। कंम्प्यूटर क्रांति ने किताब को प्रचलन से बाहर कर दिया था। जो कुछ पहले किताबों में उपलब्ध था, वह अब कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क, कम्पेक्ट डिस्क (सीडी) और फ्लॉपीज पर आ गया था। पहले होता था कि किसी किताब की जरूरत है तो किताब की दुकानों या लायब्रेरियों की खाक छानते फिरो। कम्प्यूटर के आने के बाद दुनिया की कोई भी किताब आपके मॉनीटर के परदे पर आ सकती थी। जरूरी किताब है तो वह आपकी हार्ड डिस्क पर होगी ही या उसकी सीडी या फ्लापी आपके पास होगी। न हो तो इंटरनेट पर आप अपने किसी भी दोस्त से, जिसके पास वह किताब उपलब्ध हो, अपने सिस्टम मे ले सकते थे।

जाहिर है किताब की किताब के रूप मे उपयोगिता खत्म हो गई थी। दुनिया का सारा ज्ञान आपके कम्प्यूटर के की बोर्ड पर उंगलियां चलाने मात्र से आपके मॉनीटर पर आ सकता था।

इतना ही नही, दुनिया का सारा साहित्य वीडियो बुक्स के रूप में भी आ गया था। एनिमेशन की तकनीक इक्कीसवी सदी के शुरू के दस-बीस वर्षों में ही इतनी विकसित और इतनी सस्ती हो गई थी कि उसके बाद का साहित्य शब्दों के बजाय वीडियो छवियों के द्वारा तैयार किया जाने लगा था। याने सीधे विजुअल में ही बनने लगा था। धीरे-धीरे पुराना सारा साहित्य भी इसी तरह वीडियो बुक्स के रूप में आने लगा था।

इसमें कोई शक नही कि शब्दों मे लिखे साहित्य की तुलना में दृश्यों में तैयार किया गया वीडियो साहित्य लोगों के लिए ज्यादा ग्राह्य था। उन्हें शब्दों के आधार पर कल्पना करने के बजाय सीधे दृश्य देखने को मिल रहे थे।

शाब्दिक पुस्तक से दृश्य पुस्तक की ओर ले जाने की यह प्रक्रिया बहुत सहज थी। फिल्म और टेलीविजन ने बहुत पहले से ही घटनाओ को दृश्य रूप मे देखने की आदत लोगो मे डाल दी थी।

जब किताब थी तब लोगो को पढने की आदत ज्यादा नही थी। ज्यादातर काम हाथ से ही करने पडते थे। मशीनें भी धीमी रफ्तार की होती थी इसलिए आदमी के पास किताबे पढने की फुरसत ही कम होती थी। लेकिन इक्कीसवी सदी के आधे तक आते आते ज्यादातर काम रोबो और कम्प्यूटरो ने अपने हाथो मे ले लिए। तब इनसान के पास फुरसत ही फुरसत हो गई।

इस फुरसत मे मनोरजन के लिए वह वीडियो पुस्तको और वीडियो खेलो मे व्यस्त हो गया।

लेकिन वीडियो पुस्तके एक सीमा तक ही आदमी को बहला सकती थी। आखिर इन सबमें आदमी की अपनी भूमिका क्या है? वह दर्शक ही तो है न। अपने सामने चीजो को घटते हुए देखता है, उसमें कोई हिस्सेदारी नही कर सकता।

वीडियो गेम मे जरूर हिस्सेदारी होती थी। एक तरफ वह होता था और एक तरफ कम्प्यूटर होता था। और खेल की बिसात होती थी। लेकिन यहा दिक्कत यह थी कि खेल की शुरुआत मे भले ही कम्प्यूटर ही बाजी मार ले जाता, लेकिन धीरे-धीरे आदमी की समझ मे कम्प्यूटर की चाले आने लगती और वह कम्प्यूटर को मात देने लगता। यानी यहां भी आदमी बोर होने लगा। उसे कुछ नया चाहिए।

इसे मैने चुनौती के रूप मे लिया और तय किया कि मै कोई ऐसी चीज खोज निकालूगा जो आदमी की इस बोरियत को दूर करे। अब मेरे सामने सकट यह था कि इस काम मे पता नही कितना समय लगे। और तब तक मै कुछ और कर नही सकूगा। इस दौरान मेरी रोजी-रोटी का क्या होगा और जो खर्चा इस खोज पर होगा वह कहां से आएगा?

इस संकट से मुझे उबारने के लिए मेरा व्यवसायी दोस्त अनन्तपाणि आगे आया। उसने मुझे आश्वासन दिया कि जब तक यह खोज पूरी नही होती तब तक के मेरे पूरे खर्चे वह उठागा। शर्त सिर्फ यह होगी कि मेरी इस खोज पर उसका कॉपीराइट मेरे बराबर का ही होगा। इससे जो भी कमाई होगी उसके आधे-आधे के हिस्सेदार हम दोनो होंगे। इस आशय का एक इकरारनामा भी हम दोनो ने तैयार कर लिया था। इसकी एक-एक प्रति हम दोनो के वकीलो के पास सुरक्षित रख दी गई।

सबसे पहला सवाल यह था कि खोज के लिए किस दिशा मे काम किया जाए। विडियो पुस्तको से लोग ऊब गए थे। तो अब ऐसा क्या हो जो इनसे आगे की चीज हो।

अचानक मेरे दिमाग में कौंधा कि क्यों न इन दोनो को मिला दिया जाए। वीडियो

पुस्तक हो, लेकिन आदमी सिर्फ उसका दर्शक या निर्माता न हो बल्कि वह स्वयं भी उसका एक पात्र हो। वह अपने सामने घटनाओ को सिर्फ घटता हुआ ही न देखे, बल्कि वह खुद भी उन घटनाओं के बीच में हो। यह किसी नाटक या फिल्म मे अभिनय करने जैसा भी न हो, क्योकि यहां तो सब तयशुदा होता है और तयशुदा चीजों मे थ्रिल नही होता। बल्कि वह तो कही ज्यादा उबाऊ होता है।

तो फिर यह सब कैसे किया जाए। आदमी उन स्थितियों के बीच मे हो, लेकिन फिर भी न हो। आदमी को लगे कि वह घटनाओ के बीच हिस्सेदारी कर रहा है लेकिन वह वास्तव में वैसा कुछ न कर रहा हो। जो कुछ हो वह उसके महसूस करने के स्तर पर हो। और यह महसूस करना ऐसा भी हो कि आदमी को कही से यह न लगे कि वह वास्तव मे उन स्थितियों के बीच मे नही है। क्योकि ऐसा लगते ही सारा थ्रिल, सारा मजा खत्म हो जाएगा।

यानी मामला पूरी तरह मानसिक होना चाहिए।

इस तरह का मानसिक वातावरण रचना मेरे लिए ज्यादा मुश्किल काम नही था। टेलीपैथी का सिद्धांत तब तक आम हो चुका था। जब आदमी कुछ सोचता है तो उसके दिमाग से एक खास तरह की विद्युत चुबकीय तरंगे निकलती हैं। हर आदमी के दिमाग मे इस तरह की विद्युत चुंबकीय तरगों का रिसीवर भी होता है। जब कभी रिसीवर की फ्रीक्वेसी आने वाली विद्युत चुंबकीय तरगों की फ्रीक्वेंसी के बराबर हो जाती है तो रिसीवर उन विचारों को पूरी तरह से पढ़ लेता है।

अब मेरा काम आसान हो गया था। मेरे काम का पहला हिस्सा यह था कि मै एक ऐसी प्रोग्रामिग तैयार करू जिससे किसी व्यक्ति के दिमाग के रिसीवर की फ्रीक्वेसी पता की जा सके। दूसरे हिस्से मे उसे उसी फ्रीक्वेंसी पर ऐसी विद्युत चुबकीय तरंगे इस व्यक्ति तरफ छोड़नी होगी जिनसे उसके रिसीवर को उस पूरे वातावरण की अनुभूति हो सके जिसमें मै उसे ले जाना चाहता हूँ।

इसके बाद का मेरा काम ज्यादा जटिल था। उस आदमी के एक खास तरह की स्थितियो के बीच पहुच जाने पर उसके अपने दिमाग से भी प्रतिक्रिया के रूप में बहुत कुछ विद्युत चुंबकीय तरंगे निकलेंगी, जिन्हें अपनी कम्प्यूटरीकृत रिसीवर पर लेकर मै यह पता लगा सकूं कि वह क्या करना चाहता है।

मैं समझ रहा हूं, इस तरह के तकनीकी ब्यौरों से आप जरूर ऊब रहे होंगे। सीधे शब्दो मे मैं इतना बता सकता हूं कि यह सब सपने या स्मृति या हेलुसिनेशन से आगे की अवस्था होती है।

अपनी खोज मे मै यहां तक ही पहुंच पाया था। ऐसा प्रोग्राम मैं तैयार कर सकता था कि आदमी को किसी कहानी की शुरुआत मे भेज दूं। पूरी कहानी की प्रोग्रामिग भी कर

सकता था, लेकिन कहानी की इन स्थितियो मे वह व्यक्ति क्या कर रहा है, यह जानने का जरिया मैं अभी खोज नही पाया था।

यहां तक पहुंचने मे ही मुझे करीब एक साल लग गया था। हर महीने मैं अपनी प्रगति की रिपोर्ट अनन्तपाणि को भेजता रहता था। इसके बावजूद वह गाहे-बगाहे मुझे फोन करता रहता।

आदत से वह बहुत उतावला था। यो भी उसका पैसा लग रहा था और वह चाहता था कि जल्दी से जल्दी मेरा काम पूरा हो और वह अपनी कमाई शुरू कर सके।

अपनी इस खोज का नाम मैने 'किताब' रखा था। यह तो मै आपको शुरू मे ही बता चुका हूँ। इसके दो हिस्से थे, एक मे कट्रोल रूम था और दूसरा एक बंद केबिन था जिसमे वह आदमी बैठता था जो किताब मे जाना चाहता था।

एक दिन मैने अनन्तपाणि को बुलाकर यह सब दिखाया और उसे बताया कि अपनी खोज का महत्वपूर्ण हिस्सा मैं पूरा कर चुका हू, थोडा सा काम बाकी रह गया है।

मैने जो कुछ उसे दिखाया उससे वह चमत्कृत था। मैने उसे बताया कि इतना मैंने कर लिया है कि किसी को भी किताब के अदर भेज सकू। प्रयोग के तौर पर मैने उसे 'भेड़िया आया' वाली कहानी का प्रोग्राम सेट करके किताब के अंदर भेज दिया।

वह बाहर आया तो खुश था। कहने लगाः मैने कहानी को ही बदल दिया है। तीसरी बार जब भेड चुगाने वाले ने 'भेडिया आया, भेडिया आया' की पुकार लगाई तो कोई उसके पास नही गया। लेकिन मै एक झाडी के पास छिपकर बैठ गया। जैसे ही भेडिया आया, मैने अपनी बदूक से उसे मार गिराया और वह लड़का बच गया।

इस प्रयोग के बाद यह अंदाजा मैने लगा लिया था कि किताब के अंदर जाने वाले ज्यादातर लोग मूल कहानी का तो सत्यानाश ही करेगे। कम ही लोग ऐसे होंगे जो कहानी को सही रचनात्मक मोड दे पाएंगे।

लेकिन इससे मुझे कोई फर्क नही पड़ता। किताब के अंदर मौजूद आदमी कहानी का कुछ भी करता रहे, मूल कहानी का मेरा प्रोग्राम कम्प्यूटर की मेमोरी में सुरक्षित रहता।

मेरा ख्याल था कि यह सब देख लेने और किताब के भीतर से गुजर चुकने के बाद अनन्तपाणि को यकीन हो जाएगा कि मेरी खोज सही दिशा में जा रही है और जल्दी ही अपनी खोज पूरी करके इसका व्यावसायिक इस्तेमाल करने के लिए उसे दे दूंगा।

लेकिन उस पर इसका दूसरा ही असर हुआ। उसे लगा कि खोज का असली काम तो पूरा हो गया है। क्यों न अभी से इसका व्यावसायिक इस्तेमाल शुरू कर दिया जाए।

मैने उसे समझाने की कोशिश की अभी हमने शुरुआती सफलता ही हासिल की है। एक तरह से हमारी खोज का पहला चरण ही पूरा हुआ है। और दूसरे चरण का काम अभी

बाकी है । उन्हे पूरा किए बिना खतरा हो सकता है । और दूसरे यह भी है कि उनके बिना न तो इस खोज का पेटेट हमारे नाम हो सकेगा और न व्यावसायिक लाइसेसिग विभाग इसे व्यावसायिक रूप से इस्तेमाल करने का लाइसेस ही देगा ।

लेकिन अनन्तपाणि ने यह कहकर मेरा मुंह बद कर दिया कि मेरा काम सिर्फ खोज के तकनीकी पक्ष तक सीमित है । व्यावसायिक पक्ष को वह खुद देख लेगा । उसने मुझसे कहा कि इस खोज की तकनीकी तफसील मै मोडेम से उसके पास भेज दू । आगे का काम वह देख लेगा ।

मैने एक बार फिर उसे जल्दबाजी के खतरो से आगाह करने की कोशिश की तो अनन्तपाणि ने यह शक जाहिर किया कि कही मेरी नीयत मे खोट तो नही आ गया है । उसने चेतावनी दी कि उसके जैसे चतुर व्यवसायी के सामने किसी तरह की चाल चलने की मै कोशिश भी न करू वरना मेरे शरीर के कपडे तक बिक जाएगे । क्योकि ऐसा करने पर वह मेरे खिलाफ अनुबध को तोड़ने का मामला बना देगा और जितने पैसे उसने मुझे अभी तक इस खोज के सिलसिले मे दिए है, उन्हे ब्याज और हर्जाने समेत वसूल कर लेगा ।

जाहिर है मै उसकी इस धमकी से घबरा गया । मै फौरन इस खोज की तकनीकी तफसील तैयार करने मे लग गया । पूरी रात जागकर मैने यह तफसील तैयार की । कोशिश यही थी कि इस खोज के अधूरेपन की तरफ किसी का ध्यान न जाए । जहां जरूरी था, वहा ग्राफ और डायग्राम भी बनाए । सुबह तक मेरा प्रेजेटेशन तैयार हो गया था । एक बार पूरे ध्यान से मैंने प्रेजेटेशन को पढ़ा । एक-दो जगह कुछ सुधार किए और जब तसल्ली हो गई कि इसमे किसी तरह की कोई कोर कसर नही छूट गई, तब मैने यह पूरा प्रेजेटेशन मोडेम पर अनन्तपाणि को भेज दिया ।

थोड़ी ही देर बाद अनन्तपाणि का धन्यवाद भी मोडेम से मुझे मिल गया । उसने मेरे प्रेजेंटेशन की बहुत तारीफ की और पिछले दिन के अपने व्यवहार के लिए माफी भी मांगी । उसने उम्मीद जाहिर की कि मैंने उसकी बात का बुरा नही माना होगा और इस बात को लेकर हमारी दोस्ती या अनुबध में किसी तरह की दरार नही आएगी ।

मैं इस तरह के संदेश की उम्मीद कर रहा था । मै जानता था कि अनन्तपाणि बहुत ही व्यावहारिक किस्म का आदमी है । उसकी यह दिखावटी विनम्रता उसकी इसी व्यावहारिकता की वजह से थी । वरना वह अव्वल दर्जे का धूर्त है । जहां उसे चार पैसे मिलने की उम्मीद होती है वहां तो वह विनम्रता का पुतला है, लेकिन जहां जरा नुकसान होता दिखने लगे वहा फौरन साप की तरह फन फैलाकर फुफकारने लगता है । यह सब समझने के बावजूद मै उसका कुछ नही बिगाड़ सकता था ।

मुझे पूरा भरोसा था कि दो-तीन दिन के भीतर ही वह किताब को पेटेंट भी करा लेगा

और इसके व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए लाइसेस भी ले लेगा । और हुआ भी ऐसा ही ।

अपनी इस सफलता की जानकारी देने जब वह मेरे पास आया, तब एक बार मन हुआ कि फिर से उसे इसके खतरो से आगाह कर दू । लेकिन उसकी नाराजगी की डर से इतना ही कहा कि इसका व्यावसायिक पक्ष वही देखे, मैं फिलहाल किताब के दूसरे और तीसरे चरण पर अपना काम जारी रखना चाहूगा ।

इसके लिए वह राजी हो गया । लेकिन उसकी दो शर्ते थी । एक तो यह कि किताब को आपरेट करने का काम मै उसके किसी व्यक्ति को सिखा दूं और दूसरे यह कि उसके ख्याल से तो प्रोजेक्ट किताब का काम पूरा हो गया है । इसलिए वह इस पर और कोई पैसा खर्च करने के लिए तैयार नही है । अगर मै चाहू तो किताब से होने वाली आय के अपने हिस्से मे से इस पर पैसे लगा सकता हूं । इतना आश्वासन उसने जरूर दिया कि किताब की खोज के दूसरे और तीसरे चरण पूरे हो जाने के बाद अगर उसे लगा कि किताब में इन्हे जोडने का कोई फायदा हो सकता है तो इसके एवज में इस मद में हुए मेरे खर्चे की वह पूरी भरपाई कर देगा ।

मैने उससे कहा कि इसका भी कोई अनुबंध कर लेते है, तो उसने कहा कि इसकी कोई जरूरत नही है । जिदगी मे बहुत कुछ ऐतबार से भी होता है ।

चूंकि मै इस अधूरी किताब के खतरो से परिचित था इसलिए मैने अनन्तपाणि के आदमी को कुछ छोटी-छोटी बाल कथाओ के प्रोग्राम ही बनाकर दिए । जैसे कछुए और खरगोश की दौड की कहानी, बदर और मगरमच्छ की दोस्ती की कहानी, चालाक खरगोश और घमंडी शेर की कहानी, भेड़िया आया वाली कहानी । ये सब छोटी-छोटी कहानियां थी और इनमे किताब के अंदर गए व्यक्ति द्वारा ज्यादा छेडछाड़ की गुंजाइश भी नही थी क्योकि ये कहानिया इसी रूप मे बचपन से ही सबके दिमागों मे बैठी हुई है ।

अनन्तपाणि का भेजा हुआ वह आदमी एक उत्साही नौजवान था । उसका नाम अभिषेक था । हालांकि मै उसे इतना ही बताना चाहता था जितना किताब के संचालन के लिए जरूरी था, लेकिन वह इसके अलावा भी बहुत कुछ जानना चाहता था । मैं उसके उत्साह को खत्म नही करना चाहता था इसलिए उसने जो कुछ पूछा, मै बताता चला गया ।

जब अभिषेक कहानियो की प्रोग्रामिग के तरीके मुझसे पूछने लगा, तब मैने उसे बताया कि फिलहाल वह उन्ही कहानियो को आपरेट करे जिनकी प्रोग्रामिग मैने तैयार की है । जरूरत के मुताबिक मै और कहानियों की प्रोग्रामिग खुद ही तैयार करके देता रहूंगा ।

अनन्तपाणि की किताब अच्छी चल निकली । यह मैने उसे समझा ही दिया था कि किताब का ज्यादा प्रचार-प्रसार न करे क्योकि इसकी फिलहाल हमारे पास एक ही प्रति है । अधिक प्रतियां तैयार करने का खतरा अभी नही लिया जा सकता, क्योंकि अभी इसमे

बहुत कुछ किया जाना बाकी है। जल्दी ही इसके मॉडल मे सुधार करने पड़ेगे। इस बीच इस मॉडल को कुछ सीमित ग्राहकों को ही उपलब्ध कराया जाए। यह भी देख लिया जाए कि लोगो को यह किताब कितनी पसन्द आती है।

बात अनन्तपाणि की समझ मे फौरन आ गई। दरअसल जहां मामला पैसो को लेकर हो, वहां अनन्तपाणि की समझ काफी तेज हो जाती है।

उसने अपने कुछ अमीर दोस्तो के माध्यम से किताब की जबानी पब्लिसिटी की। वह जानता था कि अगर उसने यह काम इटरनेट पर टेलीविजन चैनलो के जरिए किया और किताब क्लिक कर गई तो मुश्किल हो जाएगी।

चूंकि जिन कहानियो की प्रोग्रामिग मैंने की थी, वे सभी छोटी-छोटी कहानियां थी इसलिए किताब का हर पाठक दस मिनट से आधे घटे तक ही किताब के अदर रह पाता था। शुरू मे किताब की दस बारह शिफ्ट रोज लग जाती थी। फिर शिफ्टे धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

अभिषेक के बाद तीन और लडको को किताब के ऑपरेटर के रूप मे ट्रेनिग दी गई। छह-छह घंटे की शिफ्ट मे चौबीस घटे वह किताब 'पढी' जाती रही। जाहिर है अनन्तपाणि का, और उसके साथ ही मेरा भी मुनाफा बढ़ता जा रहा था।

किताब के इस इस्तेमाल से मेरे मन मे डर पैदा हो रहा था कि कही उसके सिस्टम में कोई गड़बड़ी न हो जाए। लेकिन जब हर हफ्ते एक मोटी रकम मेरे बैंक खाते मे आने लगी तो मैंने अनन्तपाणि को रोकने या सचेत करने की कोशिश भी नही की। खुद को यह कहकर समझा लिया कि अगर मैंने ऐसी कोशिश की भी तो वह कहां मानने वाला है।

मैंने इतना जरूर किया कि किताब के अगले चरण के काम में जी-जान से जुट गया।

इस बीच अनन्तपाणि के कई सदेश वीडियो फोन और मोडेम पर मुझे मिले कि मैं कुछ और कहानियों की प्रोग्रामिग तैयार करके उसे भेजू, क्योकि जितनी कहानियो की प्रोग्रामिग मैंने उसे दी थी वे सब बच्चो की कहानियां थी और उनमे ऐसा कुछ नही है कि उन्हे बार-बार देखा जाए। अनन्तपाणि चाहता था कि मैं ऐसी कहानियो की प्रोग्रामिग करके दूं जो एडवेचरस हो, कुछ सैक्स-वैक्स हो, कुछ हिसा-मारधाड़ हो।

मै जानता था कि वह ऐसा कुछ चाहेगा। मैंने उससे साफ कह दिया कि जब तक दूसरे और तीसरे चरण का काम पूरा नही होता, तब तक मै उसे ऐसी किसी कहानी की प्रोग्रामिग नही दूंगा।

जब कई दिनों तक मै उसकी इस मांग को पूरा करने से इनकार करता रहा तो एक दिन वह मेरे घर पर ही आ धमका।

मैंने उसे बताया कि दूसरे और तीसरे चरण का काम काफी हद तक पूरा हो गया है।

जल्दी ही मैं किताब का नया 'संस्करण' तैयार करने का काम पूरा कर लूंगा। तब मै जिस तरह की कहानी वह चाहेगा, उस तरह की कहानी की प्रोग्रामिग करके उसे दे दूंगा।

उसने मेरे साथ ज्यादा बहस नही की। मेरा ख्याल था मेरी बात उसकी समझ में आ गई है और वह मुझसे सहमत है। लेकिन उसे समझने में मैने पहली बार गलती की थी।

इसका पता मुझे उस दिन चला जब मैंने किताब के दूसरे और तीसरे चरण का काम पूरा कर लिया। यही बताने के लिए मैंने उसके वीडियोफोन पर सम्पर्क किया। मैंने उसे बताया कि अब मैं किताब का नया संस्करण भी जल्दी ही तैयार कर लूंगा और फिर हम बड़े पैमाने पर इसका इस्तेमाल कर पाएंगे।

जवाब में उसने मुझे बधाई दी और कहा कि मैं फौरन उसके पास पहुँच जाऊँ।

उसकी आवाज काफी थकी हुई लग रही थी। उसमें वह उत्साह नही दिखाई दे रहा था, जो आमतौर पर किताब के मामले में किसी सफलता पर होता था। मैंने उससे कहा कि थोडा-सा काम बाकी रह गयी है। और फिर मै थक भी गया हूँ। क्या ऐसा नही हो सकता कि हम अगले दिन सुबह मिल ले।

लेकिन वह अगले दिन सुबह तक इंतजार करने के लिए तैयार नही था। वह कह रहा था कि सारा काम छोडकर मै फौरन उनके पास पहुँच जाऊँ। यह इमर्जेंसी है।

उसकी आवाज मे घबराहट थी। मैंने उससे जानना चाहा कि अचानक ऐसी कौन-सी इमर्जेंसी आ गई, लेकिन वह एक ही बात दोहरा जा रहा था कि यह सब मुझे वहां पहुंचने पर ही बताएगा। बस मैं वक्त बरबाद किए बिना फौरन उसके पास पहुंच जाऊं।

मैंने महसूस किया कि उसकी आवाज में घबराहट लगातार बढ़ती जा रही थी। तब पहली बार मुझे खटका हुआ कि कही किताब के साथ तो कोई गडबड़ी नही हो गई है ?

और सचमुच ऐसा ही था। जब मैं वहॉ पहुँचा तो अनंतपाणि और अभिषेक के चेहरे लटके हुए थे।

मुझे देखते ही अनन्तपाणि मेरी तरफ लपका। उसने मुझे बताया कि एक आदमी किताब के अंदर पिछले चौबीस घंटे से है।

चौबीस घंटे से वह किताब के भीतर क्या कर रहा है ? मैंने जितनी भी कहानियों की प्रोग्रामिग उन्हें दी थी, किसी मे भी इतना समय लगने की गुंजाइश नही थी।

मैंने अभिषेक से पूछना चाहा कि किताब में किस कहानी की प्रोग्रामिग में उसे भेजा गया है।

अभिषेक का चेहरा अभी तक लटका ही हुआ था। मेरे मुंह से अपना नाम सुनकर उसने चेहरा उठाकर मेरी तरफ देखा। कुछ कहने की कोशिश में मुंह भी खोला। लेकिन वह इस कदर घबराया हुआ था कि उसके मुंह से शब्द तक नहीं निकल रहे थे। कुछ

अस्पष्ट से स्वर उसके मुह से निकल रहे थे। यह अनन्तपाणि की तरफ इशारा कर रहा था और काफी कोशिश के बाद मैं इतना ही समझ पाया कि वह एक ही वाक्य लगातार दोहरा रहा था; इन्होंने ही कहा था .... इन्होंने ही कहा था।

अनन्तपाणि बहुत गुस्से से उसकी तरफ देख रहा था। मैंने अनन्तपाणि से जानना चाहा कि अभिषेक क्या कह रहा है।

अनन्तपाणि ने बताया कि जो व्यक्ति अंदर है वह शहर के प्रशासक का बेटा है। उसे मेरी कहानियां पसंद नही आ रही थी। वह कुछ थ्रिलर चाहता था। उसी के दबाव मे आकर अनन्तपाणि ने मुझसे ऐसी ही कुछ कहानियों की प्रोग्रामिग करने के लिए कहा था। जब मैंने उसे टका-सा जवाब दे दिया तो उसने अभिषेक से ऐसा करने के लिए कहा। अभिषेक काफी तेज दिमाग का लडका था, गुरुमत्र वह मुझसे ले ही चुका था। लिहाजा उसने एक थ्रिलर कहानी की प्रोग्रामिग तैयार कर ली।

प्रोग्रामिग तैयार कर लेने के बाद उसका इसरार था कि वह प्रोग्रामिग एक बार मुझे जरूर दिखा दी जाए, लेकिन अनन्तपाणि का मानना था कि मै जरूर इस बात पर ऐतराज करूंगा और जरूर कोई न कोई अड़ंगा लगा दूगा।

वह सही सोच रहा था।

लेकिन उसकी एक दिक्कत यह भी थी कि शहर के प्रशासक का बेटा उसे लगातार धमका रहा था कि अगर उसे किताब में कोई थ्रिलर पढ़ने को न मिला तो वह किताब का लाइसेस कैसिल करवा देगा। अनन्तपाणि यह भी जानता था कि उसकी धमकी कोरी नही थी। वह ऐसा कर भी सकता था। वह प्रशासक का लाडला बेटा था और प्रशासक उसकी किसी बात को टाल नही सकता था।

वह रोज पूछता कि किस थ्रिलर की प्रोग्रामिग तैयार हुई या नही। जब उसे पता चलता कि अभी उस पर काम चल रहा है, तो वह काम जल्दी पूरा करने की ताकीद देता और फिर अपनी धमकी भी दोहरा देता।

जैसे ही उसे पता चला कि प्रोग्रामिग पूरी हो गई है तो वह फौरन आ धमका। किताब के अंदर भेजने से पहले अभिषेक ने उसे समझाने की कोशिश भी की थी कि वह कहानी मे ज्यादा उलझने की कोशिश न करे और जितनी जल्दी हो सके बाहर आ जाए। लेकिन वह उस थ्रिलर की कल्पना में इस तरह उलझा हुआ था कि उसने किसी की कोई बात नही सुनी।

किताब का पाठक कहानी मे कहां तक पहुंच गया है, यह जानने का जरिया तो था। एक मॉनीटर पर वह सारी छवियां उभर आती थी जहां से कहानी का पाठक गुजर रहा होता। लेकिन उस समय किताब का मॉनीटर बिल्कुल काला था। उस पर कोई चित्र नही

था।

मैंने अनन्तपाणि से पूछा कि स्क्रीन क्यो ब्लैक है। उसने बताया कि कहानी मे कुछ अपराधी नायक का अपहरण कर लेते हैं और उसे एक अधेरे कमरे मे बंद कर देते हैं। जब से वह अंधेरे कमरे में गया है तभी से स्क्रीन ब्लैक है।

ऐसी स्थिति के लिए मेरी किताब के नए संस्करण मे तो व्यवस्था थी कि मै ऐसे मानसिक सुझाव उसे भेज सकता था कि वह वही सब करता जो मैं चाहता। लेकिन किताब के इस पुराने संस्करण मे ऐसी कोई व्यवस्था नही थी।

लेकिन कुछ न कुछ तो किया ही जाना चाहिए। अभी तो प्रशासक को पता नही था कि उसका बेटा कहा है। एक-दो दिन तो वह बिना बताए भी घर से गायब होता रहता था, लेकिन तीन-चार दिन बाद तो वह उसकी खोज खबर शुरू करेगा ही। ऐसे में उसके लिए यह जानना ज्यादा मुश्किल नही होगा कि बेटा दरअसल कहां गायब हुआ है।

यहां अनन्तपाणि ने मुझे यह भी आगाह कर दिया कि इस सबमे उसकी जिम्मेदारी कम और मेरी जिम्मेदारी ज्यादा बनती है। इसमे आने वाली किसी भी तरह की तकनीकी खामी के लिए मै ही जिम्मेदार हूॅ। यह पूरा धंधा मेरा ही है। अनन्तपाणि तो इसमे सिर्फ पैसा लगा रहा है।

उसकी इस बात के जवाब मे मैंने यह कहने की कोशिश की कि किताब को इस रूप मे इस्तेमाल करने की सहमति तो मैंने कभी नही दी थी। उसने जो कुछ किया मेरी इच्छा के विरुद्ध ही किया। यह बात मै एक दोस्त से शिकायती लहजे मे कह रहा था। लेकिन जवाब एक चतुर व्यवसायी की तरफ से आया।

अनन्तपाणि कह रहा था कि वह सब जबानी बाते है। उनका कोई प्रमाण नही है जबकि उसके पास प्रमाण के तौर पर हमारे बीच हुआ वह शुरुआती इकरारनाम है जिसके हिसाब से किताब के इस धधे मे उसकी भूमिका सिर्फ पैसे लगाने की है, उसकी पूरी तकनीकी जिम्मेदारी मेरी है।

मै उसके जाल मे पूरी तरह से फस गया था। मै समझ गया था कि प्रशासक के बेटे के गायब होने की पूरी जिम्मेदारी वह मेरे सिर पर डालकर खुद किनारा कर लेगा। और एक तरह से यह भी तय हो गया कि अब जो कुछ करना है, मुझे ही करना है।

किताब के दूसरे और तीसरे चरण का पूरा ब्लू प्रिंट मेरे दिमाग में स्पष्ट था, मैं आपरेटर की कुर्सी पर बैठकर की बोर्ड पर झुक गया। मेरी कोशिश यह थी कि किसी तरह किताब के दूसरे या तीसरे चरण के अपने काम का इस्तेमाल इस किताब मे किसी तरह कर सकूं।

लेकिन कोई ऐसी व्यवस्था इसमे होती तो वह सब हो पाता। कई घटे तक मै की बोर्ड

से जूझता रहा, लेकिन सब बेकार। मैं किसी भी तरह से मानसिक सुझाव प्रशासक के भीतर फंसे बेटे तक नही पहुंचा पा रहा था। जब तक वह भीतर से कोशिश नही करेगा तब तक किताब का दरवाजा नही खुल सकता। किताब को आफ करके दरवाजे को खोलने की कोशिश भी नही कर सकता था, क्योकि ऐसा होने पर मानसिक झटके से उसकी मौत भी हो सकती थी।

कुछ हताशा और कुछ गुस्से मे आकर मै की बोर्ड की कुंजियो को अनाप-शनाप दबाने लगा। अचानक मैने देखा मॉनीटर का स्क्रीन काले से सफेद हो गया है। लेकिन उस पर किसी तरह की छवि नही दिख रही थी।

तभी मैने देखा, अभिषेक उछला और किताब के दरवाजे की तरफ लपका। दरवाजा खुला हुआ था।

मैने राहत की सास ली और दरवाजे की तरफ देखने लगा। मुझे भरोसा था कि किसी भी क्षण अभिषेक प्रशासक के बेटे को हाथ पकड़कर बाहर लाता हुआ दिखाई देगा।

अभिषेक बाहर आया तो उसके चेहरे पर हवाइया उड रही थी। उसने बताया कि प्रशासक का बेटा वहा नही है।

ऐसा कैसे हो सकता है?

मै लपक कर किताब के भीतर गया। वहा कोई नही था।

ऐसा कैसे हो सकता है?

किताब की पूरी तकनीक आदमी के दिमाग से ताल्लुक रखती है। उसके भीतर बैठकर आदमी शारीरिक रूप से कुछ करता नही है। उसके सारे अनुभव मानसिक होते है। शारीरिक रूप से वह एक सोए हुए व्यक्ति और एक लाश के बीच की स्थिति मे होता है।

ऐसा कैसे हो सकता है?

प्रशासक का बेटा ऐसे कैसे गायब हो सकता है? उसके साथ ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता था कि वह किसी मानसिक आघात से मर जाता। लेकिन उसके शरीर को तो किताब के भीतर ही होना चाहिए था।

ऐसा कैसे हो सकता है?

मेरे दिमाग मे लौट-लौट कर एक ही सवाल आ रहा था कि ऐसा कैसे हो सकता है?

मैने अभिषेक से प्रोग्रामिग दिखाने के लिए कहा। मैने प्रोग्रामिग के एक स्टेप को अच्छी तरह जांचा-परखा। उसमें कुछ गड़बड़ियां जरूर थी, लेकिन ऐसा कुछ नही था कि जिसकी वजह से इनसान का शरीर ही गायब हो जाए।

लेकिन ऐसा हुआ है। अब मेरे पास एक ही चारा बचा था कि मैं किताब के भीतर

जाऊं। प्रोग्रामिग यही हो। अभिषेक से मैंने कहा कि इस पूरी प्रक्रिया को वह सेव करे। हार्ड डिस्क की कैपेसिटी एक हजार जी बी की थी इसलिए जगह की कोई समस्या नही थी।

किताब के भीतर का अनुभव जितना मैंने सोचा था, उससे ज्यादा रोमांचक था। किताब के भीतर अपनी कुर्सी पर बैठने के बाद मैने अपने दिमाग को खुला छोड़ दिया। मैं नही चाहता था कि मैं अपने दिमाग को अपनी तरफ से कुछ सुझाव दू। क्योंकि ऐसा होने पर मैं उस रास्ते पर न जा पाता जिस पर से होकर प्रशासक का बेटा गया था।

जल्दी ही मै कुर्सी के बजाय एक कार की ड्राइविग सीट पर था। कार एक खूबसूरत वादी मे से गुजर रही थी। लेकिन मेरा दिमाग वादी की खूबसूरती का मजा लेने के बजाय अपने मकसद मे उलझा था। आगे दुश्मनो का एक गुप्त अड्डा था। एक कसीनो की आड में वह गुप्त अड्डा चल रहा था।

कसीनो की एक डांसर को मैंने पहले से पटा रखा था। वह उस दिन मुझे उस गुप्त अड्डे के भीतर ले जाने का रास्ता बताने वाली थी।

जब मै कसीनो के भीतर पहुँचा तो वह नाच रही थी। नाच पूरा होने के बाद उसने मुझे इशारा किया। मै स्टेज के पीछे बने उस कमरे में गया जहां डासर अपने कपड़े बदलती थी। मै कमरे में घुसा तो वहां कोई नही था। अचानक दरवाजा धकेलते तीन चार आदमी घुसे और उन्होने मुझे दबोच कर मेरे हाथ-पाव रस्सियो से बांध लिए। मैने देखा उनके पीछे वही डांसर खडी थी। उसने मुझे धोखा देकर फंसा दिया था।

वे लोग मुझे एक कारीडोर मे से घसीटते हुए ले गए। वहां से वे एक कमरे मे घुसे। कमरे मे एक अलमारी रखी थी। मैने देखा उस अलमारी के ऊपर टाइम मशीन लिखा था। मैं समझ गया था कि ये लोग मुझे टाइम मशीन के जरिए किसी दूसरे वक्त मे भेज रहे थे ताकि मै उनके वक्त मै लौटकर फिर कभी उन्हे तंग न कर सकू।

टाइम मशीन का दरवाजा बंद होते ही अंधेरे ने मुझे घेर लिया। अचानक मैंने अपने आप को बहुत हल्का महसूस किया।

और मैंने यह भी महसूस किया कि मैं किताब के मानसिक संवेग से मुक्त था। मुझे याद आ गया कि मै किताब के भीतर बैठा हू और मुझे प्रशासक के बेटे की तलाश करनी है।

फिर अंधेरा धीरे-धीरे दूर होने लगा। मैने देखा कि मै किसी पहाड़ी जगह में हूं। कुछ कुछ वैसी ही जगह जैसी कसीनो के आसपास थी। लेकिन वहां कसीनो नही था। कसीनो कहानी में था। लेकिन यह जगह भी तो कहानी में थी। फिर मै यहां कैसे? मुझे तो किताब के भीतर होना चाहिए था।

तभी एक विचित्र बात हुई । मुझे अनन्तपाणि और अभिषेक की आवाजें सुनाई देने लगी ।

दोनो परेशान थे कि प्रशासक के बेटे की तरह मैं भी गायब हो गया हूँ । मैंने आवाज देकर उनको अपनी मौजूदगी का आभास देना चाहा, लेकिन शायद मेरी आवाज उन तक पहुँच ही नही रही थी । क्योंकि वे आपस मे ही बातें करते रहे, मेरी किसी बात का जवाब वे नही दे रहे थे ।

आपस मे काफी विचार-विमर्श के बाद उन दोनो ने तय किया कि किताब को डिसमेटल कर दिया जाए । न रहेगा बांस और न रहेगी बांसुरी ।

मैंने उन्हे ऐंसा करने से रोकने की कोशिश की, लेकिन मेरी बात उन तक पहुंचने का कोई जरिया नही था ।

इसके बाद कुछ खटपट की आवाजे सुनाई दी और फिर कोई आवाज नही ।

अब मेरा ध्यान अपनी स्थिति की तरफ गया ।

जहाँ मै था उसके थोड़ा नीचे से एक सड़क गुजर रही थी । मैने देखा, यह सभी बहुत पुराने जमाने की गाड़ियां थी, कुछ-कुछ वैसी जैसी सौ साल पहले होती थी ।

तो कही मै बीसवी सदी मे तो नही पहुंच गया हूं ?

ऐसा कैसे हो सकता है ?

कहानी की टाइम मशीन मुझे यथार्थ मे सौ साल पीछे कैसे धकेल सकती है ?

और उससे भी बड़ा सवाल यह है कि अब मैं यहां उस प्रशासक के बेटे को कैसे तलाश करूंगा । और अगर वह मिल भी गया, तो उसे कैसे उस आगे के वक्त मे ले जाऊंगा ।

क्या आप मेरी कोई मदद कर सकते हैं ? □

एक महामुनि की कथा

नरेंद्र मौर्य

आज के जीवन मे महामुनियों की कमी नही है। कई बार लगता है कि वह संसद के गलियारे हों या साहित्यकारों के आंगन, महामुनि अपने समस्त शरीर सहित उपस्थित है। एक ऐसे ही महामुनि से परिचय करवा रहे हैं नरेन्द्र मौर्य। 'कोलबस जिदा है' जैसी कहानी से चर्चित नरेन्द्र मौर्य का लेखन क्रम अवश्य धीमा रहा है परंतु रचनाएं अवश्य चर्चा का विषय बनती है।

अन्ततः पिता के प्रयत्न फले। मुझे महामुनि के आश्रम में प्रवेश मिल गया। पिता इसे अपनी उपलब्धि मानते थे। जिस पर उन्हे गर्व था। मुझे सकोच था। कहा इतने बड़े महामुनि और कहां मै मूढमति...

हॉलाकि इन दिनो में अत्यन्त व्यस्त हैं। सकल ब्रह्माण्ड शान्ति यज्ञ चल रहा है। जिसमे छत्तीस क्विन्टल शुद्ध घी और बहत्तर क्विन्टल अन्य होम की सामग्री लगनी थी। जौ और मेवे इत्यादि। इत्यादि अर्थात् गांजा और भांग। (पाठको से निवेदन है कि आज के बाद जहॉ कही 'इत्यादि' शब्द लिखा देखें, उसे उपरोक्त अर्थ में ही ले।)

ग्यारह सौ निखालिस साधु हवन पर बैठे है। ग्यारह मेड इन अमेरिका लेबर वाले साधु, भी आयोजन की गरिमा बढ़ा रहे हैं। महामुनि का दावा है यज्ञ समाप्ति के साथ ही संपूर्ण ब्रह्माण्ड में शान्ति स्थापित हो जायेगी। अन्तिम दिन पी.एम. आने वाले हैं। राज्य के मुख्य मन्त्रियो की एक एक दिन ड्यूटी लगी है। मैंने एक मित्र से पूछा, "दादा, मेरे गुरुदेव इतने बड़े ब्रह्माण्ड के पीछे क्यो पडे है? अकेले कश्मीर को शांत कर देते तो

सुरक्षा आदि पर व्यय होने वाली बहुत बड़ी राशि बच जाती ।"

मित्र कहने लगे, "सकल ब्रह्माण्ड की शान्ति में तुम्हारे गुरुदेव को कोई दिक्कत नहीं होती । अकेले कश्मीर की बात करें तो यज्ञ के हफ्ते भर बात ही लोग इतने जुतियायें कि सारी संतगिरी निकाल दें । चाहे जो पूछने को खड़ा हो जाता कि महाराज इतने घी जौ बिगाड़ दिये, कहां हुई शान्ति ? किन्तु सकल ब्रह्माण्ड की बात करने में भ्रान्ति बनी रहती है ।"

मैंने पूछा, "भ्रान्ति से हमें क्या मिलेगा ?"

कहने लगे, "भ्रान्ति से तुम्हें नही, सरकार को शान्ति मिलेगी । सकल ब्रम्हाण्ड शान्ति यज्ञ मे शामिल होकर मंत्री समझते है, वे देश के लिये जो कर सकते थे, कर चुके । ठीक भी है । वे बेचारे इससे ज्यादा क्या करें ? क्या जान दे दें ?"

बहरहाल महामुनि का यज्ञ समापन की ओर अग्रषित था । मेरी धड़कन बढ़ रही थी । पिता प्रसन्न थे । सुबह-सुबह उठकर चौपाई गाते, "गुरु गृह गये पढ़न रघुराई, अल्पकाल विद्या सब आयी ।" मुझे साष्टांग प्रणाम करने की प्रेक्टिस कराते । अभ्यास के दौरान मेरा एक दात टूट गया । कपाल में खरोंचे भी कई जगह आ गयी । किन्तु पिता के उत्साह को देखते हुए लगा रहा । अन्ततः साष्टांग प्रणाम करने में विश्व स्तर की दक्षता प्राप्त कर ली । देश का दुर्भाग्य है कि ओलम्पिक में साष्टांग प्रणाम स्पर्ध्दा नही है । अन्यथा एक स्वर्ण पदक तो पक्का ही था ।

अन्ततः वह शुभ दिन आ गया । मै डरते-डरते गुरु गृह पहुॅचा । जाप कर रहा था, "गुरुर्व ब्रह्मा, गुरुर विष्णु, गुरुर देवो महेश्वरो ।"

सामने प्रतिक्षालय में उनका एक और शिष्य मिल गया । मैंने उसे अपना परिचय दिया, "मैं विनय देवागन महामुनि से शिक्षा प्राप्त करने आया हूँ । आज मेरा पहला दिन है ।" उसने भी अपना परिचय दिया, "मैं यहॉ पिछले एक वर्ष से अध्ययन कर रहा हूं । मेरा नाम हनुमानसिह है । मैं सैद्धान्तिक स्तर का ब्रह्मचारी हूँ... ठीक अपने गुरुदेव की तरह । मेरे जनक अंगदसिह महामना, महाप्रतापी, परम तेजस्वी, ज्ञान-विज्ञान और वेदान्तों के उखाडू विद्वान हमारे गुरुदेव के बाल सखा हैं ।

इसी बीच द्वार खुला । एक भृत्य हमें अत्यन्त विनम्रता पूर्वक अन्दर कक्ष में ले गया । हनुमान सिह अपने वस्त्र उतारने लगा । मैं उसे आंख फाड़े देखता रहा । उसने अपने तमाम वस्त्र उतार कर गेरुआ लंगोट धारण कर लिया । भृत्य ने मुझे भी ऐसा ही करने के लिए कहा । मैं जीवन में इतने कम वस्त्रों में लोगों के सामने नही गया था । मैं संकोच में सिकुड़ गया ।

भृत्य ने समझाया, "महामुनि के अध्ययन कक्ष में प्रवेश लेने से पहले इस यूनीफार्म को धारण करना आवश्यक है । इस यूनिफार्म को धारण किये बगैर कोई स्नातक या

आगंतुक महामुनि के अध्ययन कक्ष में प्रवेश नही कर सकता। यह हमारी नयी संस्कृति नीति का नया उपबध है।"

बहरहाल मुझे हनुमानसिह का अनुसरण करना ही पड़ा। हम दोनों अन्दर पहुँचे। विशाल अध्ययन कक्ष के केन्द्र में महामुनि बज्रासन की मुद्रा में विराजमान थे। उनके चक्षु, मदित थे। शरीर से ओज टप-टप टपक रहा था। उनके सामने दो आसन रखे हुए थे। भृत्य ने हमे पालथी मारकर उन आसनो पर बैठने को कहा और वह कक्ष से चला गया।

महामुनि समाधि की अवस्था को प्राप्त थे। कक्ष में नीरव शान्ति थी। धूपबत्तिया अपनी खुशबू बिखेर रही थी। फर्श पर ईरानी कालीन बिछा था। दूसरी साज सज्जा भी आतंक की हद तक भव्य थी।

कुछ पल बीते होगे कि महामुनि ने नेत्र खोले। मुझे लगा जैसे बल्ब जल गये हों। काल रात्रि का अन्त हो गया हो। वे कुछ देर शून्य मे निहारते रहे। जैसे हमे जानने की कोशिश कर रहे हो अथवा हमारी क्षमताओं को कूत रहे हो।

उन्होने किसी को आवाज लगायी, "मारीच।" वही भृत्य पुनः उपस्थित हुआ। उसने विनम्रतापूर्वक पूछा, "क्या आज्ञा है महामुनि?"

"जल लेकर आओ।" महामुनि ने आदेश दिया।

हम दम साधे बैठे थे। मारीच के जल लाने तक महामुनि शून्य में निहारते रहे। जैसे ही मारीच ने जल लाया, महामुनि ने जल से भरा जग नाक के एक छिद्र से लगाया और देखते ही देखते पूरे जग का पानी उदरस्थ कर लिया। कुछ क्षण उपरान्त उन्होंने नाक के दूसरे छिद्र से सपूर्ण जल वापस उसी जग में निकाल दिया। अपनी इस अद्भुत लीला के बाद महामुनि का श्रीमुख दर्प से दप दप कर रहा था। जैसे छब्बीस जनवरी के कार्यक्रम मे कोई पायलट अपने हवाई जहाज को सफलतापूर्वक गोते खिलाकर नीचे आने के बाद पुरसकून नजर आता है।

वे हमारी ओर उन्मुख हुए। उन्होंने कहा, "शिष्यो, मैं तुम्हें ज्ञान के सूक्ष्म और स्थूल स्वरूपों का अध्ययन कराऊँगा। हम सर्वप्रथम गीता का अध्ययन करेंगे। गीता हमारा महान ग्रन्थ है। यह आध्यात्म, राजनीति और योग का अद्भुत संगम है। ज्ञान की इन तीन प्रमुख शाखाओं को अच्छी तरह समझना आवश्यक है। योग को जानने के लिए भोग का ज्ञान तथा उसके विभिन्न पहलुओं का व्यवहारिक अनुभव आवश्यक है। तृप्त व्यक्ति ही आध्यात्म, योग और राजनीति कर सकता है। जैसे हम। और हमारी तरह की कई अन्य विभूतियाँ। हमारी तरह धर्म के रास्ते राजनीति पर जा चढ़ी हैं या राजनीति के रास्ते धर्म पर सवारी गांठ रही है।

बहरहाल अभी मै एक सप्ताह के लिए सिगापुर जा रहा हूं। उसके बाद हम नियमित अध्ययन करेंगे। वैसे भी चौमासे में हम कही यात्रा नही करते। अतः आप लोगों को

पर्याप्त समय भी मिलेगा। किन्तु आप होम वर्क के बतौर योग और भोग का व्यवहारिक अध्ययन अवश्य कर ले।"

हम उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर बाहर आ रहे थे। हनुमानसिह थोड़ा रूक गया। उसे देखकर मैं भी ठिठक गया। उसने गुरुदेव से अनुमति ली, "क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूँ?"

गुरुदेव ने कहा, "अवश्य वत्स।"

उसने पूछा, "महामुनि मेरी माता अत्यन्त चिन्तित हैं। क्या आप बतायेगे कि मेरे पिता कारागृह से कब मुक्त होगे और आपने किस प्रयोजन हेतु उन्हें वहां भिजवा दिया है?"

महामुनि कुपित हुए, "वत्स, कारागृह के प्रति प्रारंभ से ही तुम्हारी धारणा बड़ी दूषित है। क्या गांधी, नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, इंदिरा गांधी बगैर कारागृह जाये इतने महान लीडर बन सकते थे? विश्व के तमाम ग्रन्थ कारागृह की देन है। यहां तक कि भगवान वासुदेव को तो जन्म लेने के लिए कारागृह से पवित्र जगह नही मिली। आज विश्व मे जो भी सफल व्यक्ति है, कारागृह की ही देन है। नेल्सन मंडेला को आज संपूर्ण विश्व जानता है। हम जानते हैं। क्यों, आखिर किसलिए? उनके कारागृह गये बगैर क्या ये संभव था? नही, नेवर, नॉट एट आल।"

हनुमानसिह गुरुदेव से सहमत हो गया। उसने पुनः प्रणाम किया और हम बाहर आ गये। यूनिफार्म उतार कर यथास्थान रखी और अपने कपड़े पहन कर वापस आ गये।

एक सप्ताह निकल गया। जैसे कि उसे निकलना था। हम अपना होम वर्क नही कर पाये। एक गीता के गुटके से उसका हिन्दी अनुवाद पढ लिया।

हम नियत समय पर फिर गुरु गृह पहुँचे। अपने वस्त्र निश्चित स्थान पर उतारकर यूनिफार्म धारण की और अध्ययन कक्ष मे प्रविष्ट हुए।

गुरुदेव हमारी प्रतिक्षा कर रहे थे। उन्होने हमारे आसन ग्रहण करते ही अपना उपदेश प्रारभ किया, "शिष्यो, गीता महान योगेश्वर भगवान कृष्ण के श्रीमुख से अवतरित हुई है। इसके प्रत्येक श्लोक के स्थूल और सूक्ष्म कई कई अर्थ होते है। विद्वान अक्सर अर्थ का अनर्थ कर बैठते हैं। किन्तु मैं महाविद्वान हूं। अतः मुझसे त्रुटि की संभावना नहीं है। सर्वप्रथम मै तुम्हे सांख्य योग के विषय में समझाऊंगा।"

"हे शिष्यो, आत्मा अमर है। अनित्य है। अनश्वर है। अतः किसी की मृत्यु पर शोक अनावश्यक है। यदि कोई तुम्हारी कार से टकरा कर मर जाये तो इसमें चिन्ता कैसी? आत्मा सदैव अबध्य है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, वैसे ही मनुष्य की आत्मा नया शरीर धारण करती है।

भगवान वासुदेव कहते हैं, "अपने विरोधियों का सर्वनाश करना धर्मयुद्ध है। हमारे

लिए धर्मयुद्ध से बड़ा कोई कर्तव्य नही है। इस प्रकार के युद्धो में विजयी होकर व्यक्ति संसद में सुख प्राप्त करेगा अथवा वीरगति को प्राप्त कर स्वर्ग में प्रतिष्ठित होगा।"

मैंने महामुनि से पूछा, "गुरुदेव, वीरगति प्राप्त करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग में क्या सुविधा प्राप्त होती है ?"

गुरुदेव ने समझाया, "वहां चाहने मात्र से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। प्राणी जैसे ही यहां से डिपार्चर करता है, वहां उसके लिए कोठी अलॉट कर दी जाती है। प्रत्येक कोठी की व्यवस्था के लिए सात-सात अप्सराए नियुक्त रहती है। ये अप्सराएं रूप और यौवन की खान होती हैं। वहां प्राणी नाना प्रकार के सुखो को भोगता हुआ परमानंद को प्राप्त होता है।"

हनुमानसिह ने अपनी जिज्ञासा रखी, "क्या एक-एक व्यक्ति के लिए सात-सात अप्सराएं ज्यादा नही होगी ?"

गुरुदेव ने ताबड़तोड़ उत्तर दिया, "नही होगी, बल्कि कम पड़ेगी। दरअसल क्या है कि स्वर्ग मे शिलाजीत की पैदावार अच्छी होती है। वहां किसी को दफ्तर तो जाना नही पड़ता। नाना प्रकार के सुखो को भोगो, शिलाजीत चाटो और परमानंद को प्राप्त हो जाओ। बस, छुट्टी।"

हनुमानसिह ने पुनः जिज्ञासा रखी, "गुरुदेव, यदि स्वर्ग में इतनी सुविधाएं हैं तो हमें स्वयं वीरगति पाने की चेष्टा करनी चाहिए। संसद.मे सिवा टांग खिचाई के भला क्या मिलेगा ? यही यदि हम एकाध टाइपिस्ट ही रख लेते है तो कितनी बदनामी होती है ?"

महामुनि हनुमानसिह से सहमत नही थे। उन्होंने समझाया, "पाण्डवो ने यही धरती पर रहकर स्वर्ग भोगा था। इसलिए हमे भी यहीं स्वर्ग भोगना चाहिए। फिर गालिब ने कुछ शंका भी प्रगट कर दी है:—

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
दिल के बहलाने को गालिब ये खयाल अच्छा है।

इसी बीच मारीच ठंडाई ले आया। नेत्र बन्द कर उन्होंने पूरा गिलास ग्रहण कर लिया और अपना उद्बोधन पुनः प्रारंभ किया, "हे पार्थ, अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु, ज्योति पुंजों में सूर्य और मंत्रियों में नरसिहराव मैं था।

वेदों में सामवेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन और अभिनेताओं में अभिताभ बच्चन मै ही हूं।

एकादस रुद्रों में शंकर, यक्षों में कुबेर, बसुओं में अग्नि और घोटाला विशेषज्ञों में हर्षद मेहता मैं स्वयं हूं।

पर्वतों में सुमेरु पर्वत, पुरोहितों में बृहस्पति, जलाशयों मे समुद्र और निर्दोषों को

मरवाने वालो में कश्मीर मैं हूं।

महर्षियो मे भृगु, यज्ञों मे जपयज्ञ, स्थिर रहने वालों में हिमालय और तोपो में बोफोर्स तोप मैं हूं।

वृक्षों में पीपल, सिद्धों में कपिल मुनि और हिरोइनो में माधुरी दीक्षित मैं हूं।

हाथियो में एरावत, मनुष्यों में राजा, गायों मे कामधेनु, वृक्षो में कल्पवृक्ष और मुख्यमंत्रियों में सुन्दरलाल पटवा भी मैं था।

हे तात, शासकों में यमराज, दैत्यो मे प्रहलाद, पक्षियों में गरुड़ और प्रजातंत्र में महाराज सा० श्रीमंत माधवराव सिन्धिया मैं हूं।

हे पार्थ, सृष्टि का आदि और अन्त मै हूं। क्षणिका लेखिकाओं में सरोजनी प्रीतम, कवि सम्मेलनो में रामरिख मनहर, दल बदलुओ में देवीलाल मै स्वयं हूं।

पत्रकारो मे अरूण शोरी, पत्रिकाओ में धर्मयुग, आलोचको मे नामावरसिह मै हूं।

कालो में महाकाल, छन्दों मे गायत्री छन्द, ऋतुओ मे बसन्त और महाकवियो में अज्ञेय मै था।

जीतने वालों की विजय मै हूं। हारने वालो की हार मैं हू। राक्षसो मे रावण भी मैं हूं और त्रेता का राम भी मैं हूं।

हे पार्थ, आज कोई भी चर अचर जीव मेरे रहित नही है। अर्थात् डन्डी मारने वाला बनिया भी मैं हूं। नाप तोल इन्सपेक्टर भी मै स्वयं हूं। यथा

यच्चादि सर्वभूताना बीज तदहमर्जन

न तदस्ति बिना यत्स्या मया भूतू चराचर्म।

अर्थात् समस्त चराचर जग मे जो कुछ भी श्रेष्ठ है, वह मै स्वयं हू।

"आप स्वयं?" हनुमानसिह ने जिज्ञासा रखी। गुरुदेव ने स्पष्ट किया, "हा, मैं स्वयं।"

हम कुछ और पूछते इसके पहले भृत्य ने तेजी से कक्ष में प्रवेश किया। कहने लगा, "एक महायुवती अत्यन्त आवश्यक कार्य हेतु, अतिशीघ्र आपके समक्ष उपस्थित होना चाहती है।"

महामुनि ने कहा, "उसे सादर लिवा आओ।" हनुमानसिह और मैंने परस्पर एक दूसरे को देखा। हम लोग अपनी यूनिफार्म में थे। लंगोट के साथ एक पतला-सा वस्त्र। ऊपर शरीर पूरा निर्वस्त्र। इस यूनिफार्म मे किसी महिला के समक्ष जाने का मेरा पहला अवसर था। अब हम महामुनि से क्या कहते? वे स्वयं भी युनिफार्म में सुशोभित थे। जो उनके फलते-फूलते शरीर की तुलना में काफी छोटी हो गई थी।

इस बीच एक रूपसी महिला कक्ष में पधारी। आते ही कहने लगी, "मेरे पति अमेरिका में अपने दूतावास में काम करते हैं। वहां एक टाइपिस्ट से उलझ गये हैं। अब

वे मुझे वहां नही बुलाते। मैं विरह में डूबी हुई हूं। कृपया उनका स्थानान्तरण कही इस तरफ करवा दीजिये। अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। मैं कही की नही रहूंगी। मेरे छोटे-छोटे बच्चे है। उनका भविष्य चौपट हो जायेगा। आप कुछ कीजिये।"

महिला की व्यथा सुन चुकने के बाद महामुनि ने नेत्र खोले, "हे देवी, आप धन्य है। आपका मनोरथ हम अवश्य पूरा करेंगे। किन्तु हे महायुवती यह हमारा अध्ययन कक्ष है। यहां आने वाले प्रत्येक जीव को युनिफार्म धारण करना अनिवार्य है। यहां जो कीट, पतंग अथवा तितली प्रवेश करती है तो वह भी यूनीफार्म धारण करने के बाद ही प्रवेश करती है। अतः आपको भी अध्ययन कक्ष में प्रवेश के पहले मारीच से अपने लिए यूनिफार्म मांग लेनी थी। अन्यथा हमारे अध्ययन कक्ष से बाहर आने तक प्रतीक्षा कर लेनी थी। हे महायुवती, हम नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करते है। नियम, कानून, अथवा संविधान से ऊपर हमारे देश में कोई नही होता।

युवती घबरा गयी, "हे महामुनि, मुझे इस तरह के नियमो, परम्पराओं अथवा आश्रम के उपबंधों की जानकारी नही थी। अन्यथा मैं बाहर कक्ष मे इंतजार कर लेती।"

महामुनि युवती के उत्तर से संतुष्ट नही हुए, "देवी नियमो की जानकारी नही होना क्षम्य नही है। फिर हमने उक्त व्यवस्था के संबंध मे सूचना पट पर नोटिस भी लगा रखी है। युवती की घबराहट और बढ़ गयी, "हे देव, मैं भला कैसे लंगोट धारण कर सकती हूं। मै विवाहित महिला हूं। फिर ये स्नातक भी यहां विराजमान हैं। इनके समक्ष मेरा लंगोट धारण करना, सचमुच मेरे लिए अपकीर्ति का कारण होगा। अतः हे महामुनि, इसे मेरा पहला अपराध जानकर क्षमा कर दिया जाये।"

महामुनि युवती की भावना से प्रभावित हुए। उन्होंने कहा, "तथास्तु।"

मारीच ठंडाई ले आया। एक बड़े गिलास में महामुनि के लिए और तीन छोटे गिलासों में हम लोगों के लिए। हमने अपने अपने गिलास पूरी श्रद्धा से खाली किये। गुरुदेव ने भी अपना गिलास खाली करते हुए कहा, "स्नातको, आज हम अपने अध्ययन को यही विराम देते हैं। मुझे इस महायुवती की मनोकामना पूर्ण करनी है।"

हम यथाशीघ्र बाहर के कक्ष में आये। हमें अपनी यूनीफार्म उतार कर सादे कपड़े पहनना था। हम वस्त्र बदलकर निकलने ही वाले थे कि अध्ययन कक्ष से मारधाड़ की आवाजें आने लगी। जैसे किसी स्टन्ट फिल्म की शूटिग शुरू हो गई हो। हम सकते की हालत में खड़े थे। पांच...दस और कुल पन्द्रह मिनट बाद दरवाजा खुला। वह महिला युद्ध विजेता की हैसियत से बाहर निकली और तेजी से बाहर चली गयी। हम मारीच के साथ कक्ष में पहुंचे। महामुनि बेहोशी की हालत में पड़े थे। गोया राणा सांगा युद्ध भूमि मे लेटे हों।

मारीच उन्हें होश में लाने की चेष्टा करने लगा। भयभीत देखकर मारीच ने हमें

समझाया, "ये कोई विशेष बात नही है। जीवन के साथ तमाम चीजे जुड़ी रहती हैं। किन्तु हमे इस घटना का जिक्र नही करना चाहिए। अन्यथा गुरु निन्दा का पाप लगेगा और दस हजार सहस्त्र वर्षों तक रौरव नरक में खटना पड़ेगा।"

हम चुपचाप घर चल दिये। रास्ते में मैंने हनुमान सिह से कहा, "किसी काल्पनिक रौरव नरक के भय से मैं इस प्रत्यक्ष रौरव नरक की गाथा क्यूं छिपाऊं? आगे से वहां नही जाऊंगा।"

पिता की हजार सदइच्छा के बाद भी मै गुरुदेव के घर फिर कभी नही गया। किन्तु आश्रम की पवित्रता, सामर्थ्य और तांत्रिक शक्तियो के विषय मे सुन-सुनकर यदाकदा अभिभूत होता रहा तथा आज भी हूं। □

एक सपने की मौत

पृथ्वीराज मोंगा

"आज तनु का दसवां जन्मदिन है, और इस बार वह पता नही कितना रोई होगी सोने से पहले। इतनी ...... इतनी छोटी-सी बच्ची की एक ख्वाहिश तक वह पिछले तीन साल से पूरी नही कर पाया है ...... । कहने को सरकारी आफिस में तकनीक सहायक अधिकारी।"

सेकिंड फ्लोर तक तीस सीढ़ियां चढते समय उसका मन पूरी तरह बुझा हुआ था। दरवाजे के सामने पहुंचने के बाद कुछ देर कान लगाकर अंदर की आवाजे सुनने की कोशिश की। जब अंदर से तनु या रश्मि की आवाज सुनाई नही दी तो उसने बेल बजाने की बजाय बहुत धीरे से दरवाजा खटखटाया।

जवाब मे अगले ही क्षण अंदर से पत्नी रश्मि की धीमी सी आवाज आयी—"कौन"? रश्मि उसके इंतजार मे शायद दरवाजे के पास वाली सोफे की कुर्सी पर ही बैठी थी।

"खोलो!" उसने भी बहुत धीमे स्वर में कहा। पत्नी ने दरवाजा खोला और सीधा उसकी आंखो मे देखते हुए "ना" की मुद्रा मे सिर को इधर-उधव हिलाते हुए पूछा—"नही लाये।" उसने पत्नी के "ना" के संकेत या शब्दों का उत्तर देने की बजाय पूछा—"तनु सो गयी?"

"हूं।" पत्नी ने ड्राईग-रूम में दीवार के साथ बिछे दीवान पर सो रही तनु की तरफ

इशारा किया—"वो देखिए। अभी सोई है इंतजार कर-करके।" इतना कहते-कहते पत्नी रोने लगी और दोनों हाथों से आंसू पोंछते हुए रसोई मे चली गयी।

वह दूर से आये मेहमान की तरह खोया-खोया सा वही खड़ा रहा, जिसे घर वालों के ठंडे व्यवहार से काठ मार गया हो। कुछ देर उसी तरह, उसी जगह रुके रहने के बाद दरवाजे को पूर्ववत बंद किया और धीरे से सोफे की कुर्सी पर बैठते हुए तनु को देखने लगा। तनु दोनों हाथ चेहरे के नीचे रखे एक करवट हो बाएं कंधे के बल सोई हुई थी। ट्यूब लाइट की रोशनी मे तनु के गाल पर जगह-जगह बने मैल के चकत्ते बता रहे थे कि सोने से पहले तनु खूब रोई है या रोते-रोते थककर सो गई है।

रसोई से अपेक्षाकृत जोर से बर्तन उठाने-रखने की आवाजे उसके आहत मन में टीस पैदा कर रही थी। रश्मि सभवतया इस समय फिर से सेल्स टैक्स विभाग के इंस्पेक्टर के घर से आये रिश्ते को ठुकराने के अपने निर्णय पर पछतावा कर रही थी। उस वक्त, रश्मि का कहना है कि वह उसकी मुहब्बत मे अंधी हो गयी थी और अपने भले-बुरे को जानने की अपनी अक्ल खो चुक थी। आपसी झगड़े के दौरान रश्मि उसके मुंह पर ऐसा कहकर उसे कई बार जलील कर चुकी है।

तभी रश्मि मुंह फुलाये अंदर आयी और हाथ मे पकड़ा पान का गिलास पटकने की मुद्रा में सेटर टेबल पर रखकर बिना रुके उन्ही कदमों से वापस लौटी और बेड-रूम में घुस गयी। लोहे की चारपाई की चरमराहट से मालूम हो गया कि वह भीतर जाकर चारपाई पर लेट गयी है। उसने गिलास उठाया और ठंडे मौसम के बावजूद सारा पानी पीकर खाली गिलास वापस सेंटर टेबल पर रख दिया।

वह असहाय हो अपने आपको कोसने लगा... क्या जरूरत थी नासमझ बच्ची के मन मे चलने वाली जापानी गुड़िया प्राप्त करन की, इतनी तीव्र इच्छा जागृत करने की ...। जब भी जन्मदिन की बात उठती, वह जापानी गुड़िया की मनगढ़ंत विशेषताओ का बखान करने लगता... "वो जापानी डौल तो चलती भी है। पीछे बैटरी के दो छोटे वाले सेल लगते हैं... बटन दबाओ... चल पड़ेगी... बटन दबाओ...रुक जायेगी...। पता है तनिया ... वो डौल बोलती भी है... पर ज्यादा नहीं बोलती ... सुबह उठकर सिर्फ 'गुड मार्निंग' कहती है...।"

तनु का मुंह आश्चर्य से खुला का खुला रह जाता—"हाय! गुड मार्निग भी करती है... पापा-पापा ... वो डौल मुझे गुड मार्निंग करेगी ना... बहुत सुन्दर होती है जापानी डौल। मैंने टीना के पास देखी है। पर वो तो बोलती भी नही ... उसके पापा जापान... पता नही इंग्लैंड से लेकर आये हैं। वो बोलती नही... पर है बड़ी सुन्दर...। मुझे टीना अपनी डौल को हाथ नही लगाने देती... कहती है खराब हो जाती है... मैं जैसे उसकी डौल खराब कर दूंगी... बड़ी गंदी है टीना... मैं भी अपनी डौल उसे नहीं दिखाऊंगी। बड़ी बनती है...।"

"हम भी अपनी तनिया बिटिया को इस बार बर्थ-डे पर वैसी ही सुन्दर डौल लाके

देंगे... ।" वह हर बार ऐसा ही कुछ कहकर तनु की नासमझ आंखो के सामने एक सुन्दर सा सपना बुन देता । लेकिन देखते-देखते आठवां, और फिर नवां जन्मदिन गुजर गया । तनु दोनो बार नन्ही-नन्ही आंखो से मोटे-मोटे आंसू गिराकर शांत हो गयी । लेकिन इस बार तनु ने अपने सहित पता नही किन देवी-देवताओ की कसमें दिलाई थी । और उसने भी पिछले दोनों बार के लिए अफसोस जाहिर करने के साथ इस बार जापानी वाकिंग डौल लाने के बारे में तनु को पूरा-पूरा विश्वास दिला दिया था । खुद भी पूरी ईमानदारी के साथ यह तय कर लिया था कि इस बार कुछ भी हो जाये, दसवे जन्मदिन की शाम को वह तनु को चलने वाली गुडिया जरूर लाकर देगा ।

आज तनु को दसवा जन्मदिन है, और इस बार वह पता नही कितना रोई होगी सोने से पहले । इतनी ... इतनी छोटी सी बच्ची की एक ख्वाहिश तक वह पिछले तीन साल से पूरी नही कर पाया है... । कहने को सरकारी आफिस मे तकनीकी सहायक अधिकारी... । उसके साथ के सहायक अधिकारियो की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है । उसके संस्कार ऊपर की कमाई करने के आड़े आते है, इसलिए उसकी हालत हमेशा पतली रहती है । इन्कम टैक्स की समस्या भी उस जैसे ही लोगो के लिए है, बाकी के तो हर साल किसी न किसी योजना में पंद्रह-बीस हजार ठोंक देते है... । इस महीने भी चार सौ सत्तर रुपये इन्कम टैक्स की भेंट चढ गये । कुल मिलाकर उसके पास दो पैंटे हैं और तीन कमीजे । रश्मि के लिए भी वह पता नही कब से कोई भी कपडा नहीं ला पाया । अलबत्ता तनु के लिए जरूर बीच-बीच मे फ्राक्स खरीदे है । दफ्तर से मकान भी इतनी दूर इसी परेशानी को ध्यान मे रखकर लेना पडा । दफ्तर दक्षिणी दिल्ली मे और मकान पूर्वी दिल्ली में, यू.पी. बार्डर के पास । उधर, ऐसे ही दो कमरो का किराया सोलह सौ से दो हजार के बीच है और यहा सिर्फ नौ सौ । हर रोज डेढ-दो घंटे सुबह और डेढ-दो घंटे शाम को ठुंसी हुई बसों में गुजरते हैं । इतना थक जाता है कि ... । और कोई चारा भी तो नही है । ऐसे में तनु की इच्छा और उसका वादा... । यों वाकिंग-डौल की कीमत उसने पिछले साल की तरह इस बार भी पूछा है—पिछले साल जिस गुडिया की कीमत पौने दो सौ थी, इसबार पौने तीन सौ हो गय । जी.पी. फंट से एडवांस, नियमो के कारण नही मिल पाया । और उधारी... अब पिछले महीने के ही तीन सौ रुपये सिर पर खड़े है... और कैसे मांगे... । 17 तारीख को जेब में मात्र अस्सी रुपये ही शेष थे, जो लाल किला के सामने से दो साल पहले सत्तर रुपये में खरीदे विदेशी कोट की अंदर वाली जेब मे पड़े थे । आफिस से निकलने से घर में घुसने तक इन साढ़े पांच घंटों में जाने कितनी ही बार कोट की जेब को ऊपर से ही टटोलकर वह रुपयों की उपस्थिति के बारे में आश्वस्त होता आया है ।

आफिस से वह हर रोज की तरह आज भी ठीक साढ़े पांच बजे निकला था । उसके बाद सफदरजंग हवाई अड्डे के बस स्टाप पर काफी देर तक अनिश्चय की स्थिति में खड़ा

रहा। उसी जगह खडे-खड़े दो रुपये की मूगफली खा डाली, दो सिगरेटे फूंक दी। इसी बीच घर की तरफ जानेवाली तीनों सीमित सेवा वाली बसें चली गयी। शाम के गहराते ही हवा पहले से ज्यादा तेज और ठडी हो गयी तो बस पकडकर चांदनी चौक आ गया। चांदनी चौक की लबी सडक के तीन चक्कर लगा चुका तो टांगो मे बला की थकान समा गयी। इसी बीच उसने बंद हो चुकी दुकानों के सामने असली-नकली विदेशी सामान बेचने वाली अस्थायी दुकानो में से एक पर वाकिग डौल देखकर उसकी कीमत के बारे में पूछताछ की। दुकानदार ने साढे तीन सौ कहा। टूटते-टूटते वह पौने तीन सौ पर आ गया और जब उसने फिर भी "नही" कहकर आगे बढ़ना चाहा तो दुकान वाले लडके ने जैसे भरे बाजार मे उसके कपडे खीच डाले—"आपके बस की बात नही है ये डौल लेना। सामने पटडी से तीन-चार रुपयो वाली पिलास्टिक की गुड़िया खरीद लो जाके।"

हालाकि वह तनु के सो जाने के पहले घर लौटना नही चाहता था, फिर भी जब थकान से तन-मन टूटने लगा तो फौव्वारे से कोडिया पुल की तरफ जाने वाली सडक पर हो लिया। कोडिया पुल से भीड़ भरी नयी सीमापुरी की बस पकड़ी और पचास मिनट बाद...। जानता था, अगर आज भी वह बिना वाकिड डौल लिये घर गया तो तनु बहुत रोयेगी। तनु की आंखो से टपकने वाले आंसुओ का आकार अपेक्षाकृत बड़ा है और जब कभी उसकी आंखो से मोटे-मोटे आसू गिरते है तो वह तड़प उठता है, और जैसे-तैसे उसे जल्दी से चुप करा लेता है—चाहे तनु के पांव ही क्यो न छूने पडे। और आज... ? महसूस हुआ, उसने तनु के मन मे वाकिग डौल प्राप्त करने की इच्छा जागृत करके बहुत बड़ी भूल की है। एक तरह से सारा कसूर उसीका है... न तनु को ऊल-जलूल सपने दिखाता और न आज यह विकट स्थिति पैदा होती।...

"लेकिन...," वह इतना बडबड़ाकर जैसे खुद को सफाई देने लगा... यह सब उसने जान-बूझकर कहां किया... वह तो हर बार बस उस क्षण को आगे सरकाना भर चाहता रहा है...। आज न सही, कल ऐसा होना निश्चित था। गुड़िया लेने के सपने को इतना मजबूत भवन तैयार होना निश्चित था। गुड़िया लेने के सपने का इतना मजबूत भवन तैयार किया था तनु ने इस बार कि...। मध्यवर्गीय लोगों के सपने शायद देखने और टूट जाने के लिए ही होते हैं...। पता नही कितने सपने जन्म लेते है, टूटते है और मरकर दफन हो जाते हैं। एक दिन आदमी का भीतर सपनो का एक भरा-पूरा कब्रिस्तान बन जाता है। जब कभी अकेले मे वह मुड़कर पीछे देखता है तो उसे जब-तब दफन हुए सपनो की बेतरतीब बिखरी पड़ी कब्रें दिखाई देती हैं...। यही नियति है आम आदमी की। यही होता आया है... यही हो रहा है... यही होता रहेगा। आज तनु का पहला सपना मरकर दफन हो रहा है... तकलीफ लाजिमी है। इसके बाद सपने टूटते रहेंगे, तकलीफ होती रहेगी... फिर एक सिलसिला चल निकलेगा सपनों के मरण और बेआवाज तकलीफ का...।

"रोटी ले आऊं ?"

वह अंदर तक दहल गया, जैसे निस्तब्ध अंधेरी रात में चुपचाप चले जा रहे आदमी के कान को छूता हुआ बड़ा-सा चमगादड निकल गया हो। सामने देघा। रश्मि की आंखों मे उभर आयी लाली और सूजन से उसने जान लिया कि वह अंदर चारपाई पर लेटी-लेटी रोती रही है। रश्मि ने उसके पास, दीवान पर सो रही तनु को देखते हुए कहा— "लोटी ले लीजिए तो सोने वाली बनूं। सुबह फिर आप जल्दी उठा देते हैं।"

रश्मि की आवाज में मौजूद खीझ की तरफ ध्यान न देते हुए उसने अपनी मजबूरी समझाने के लिए कहा—"देखो, तुम दोनो का गुस्सा अपनी जगह ठीक हो सकता है, लेकन कसूरवार मैं भी नही...।"

रश्मि ने जैसे उसका गिरेबान पकड़ लिया—"आहिस्ता बोलिए। तनु रो-रोके थोडी देर पहले ही सोई है...। रोटी बनाऊ। बारह बजने वाले हैं।"

वह सिर झुकाये बैठा रहा बायी हथेली के पीछे वाले हिस्से पर उभरी नसो की मोटाई और उनका नीला रंग देखता रहा। रश्मि रसोई मे चली गयी। वह उठकर खड़ा हो गया। उठकर खड़े होने के पीछे कोई औचित्य नजर नही आया तो फिर से बैठने को हुआ, लेकिन बैठा नहीं। अगले ही क्षण मन चाहा कि उठकर दरवाजा खोले और चुपचाप कही चला गया— हमेशा के लिए। यह नही तो अपने कपडे फाड़ ले और फूट-फूटकर रोने लगे। लेकिन इन दोनों से कुछ भी नही कर पाया। फिर बिना आवाज किये छोटे-छोटे तीन-साढे तीन कदम आगे बढ़कर तनु के पास खड़ा हो गया। पीछे देखा। रश्मि नही थी। कान लगाकर रसोई से आती आवाजों को सुना। तब नीचे झुककर चोरी से... चुपके से तनु के गाल को हल्के से चूमने लगा। जानता था, ऐसे मे अगर रश्मि ने उसे देख लिया तो बिना कुछ बोले ही, सिर्फ देखने भर से, उसे जलील कर डालेगी। वह आदतन चुप बना रहेगा या फिर, बर्दाश्त की हद पार करने के बाद, उस पर हाथ उठा बैठेगा। इसलिए जल्दी से तनु के गाल पर आंसुओं से बने मैले दाग को चूमा और अगले ही क्षण कदम वापस खीचकर फिर से वही, सोफे की कुर्सी पर बैठ गया। तन का पोर-पोर थकान और मन का जर्रा-जर्रा असहायता और जिल्लत में डूबा हुआ था।

रश्मि रोटी की दो थालियां लेकर अंदर आयी और उन्हें सेंटर टेबल पर रखते हुए "शुरू कीजिए, पानी लाती हूं" कहकर वापस रसोई में चली गयी। उसने सामने पड़ी थाली को देखा। दो रोटियां, आधी कटोरी साबुत मसूर की दाल, आधी कटोरी दही। एक तरफ थोड़ा सा आम का अचार।

रश्मि लौटी और पानी के दोनों गिलास टेबल पर रखते हुए सामने, सोफे पर बैठ गयी। थोड़ी देर तक पता नहीं माथे पर परिचित बल डाले क्या सोचती रही, फिर थाली को गोद में रखकर धीरे-धीरे रोटी खाने लगी। उसने भी रोटी का पहला टुकड़ा तोड़ा और

दाल में भिगोकर मुंह मे डाल लिया।

तभी तनु नीद मे आदतन कुछ-कुछ बड़बड़ाने लगी... । रश्मि ने तुरत उठकर तनु को धीरे से थपथपा दिया। तनु चुप हो गयी। पल-दो-पल वही रहने के बाद रश्मि वापस सोफे पर आकर बैठ गयी और आंखे नीची किये चुपचाप रोटी खाने लगी। तनु फिर से बड़बड़ाई... पहले कुछ अस्पष्ट सा, फिर थोड़ा स्पष्ट—"टीना, ना छेड़... टूट जायेगी..."

रश्मि ने झट उसकी तरफ देखा। उसने कसूरवार की तरह नजरे झुका ली, और काफी देर से मुह मे डाले रोटी के पहले ग्रास को निगलने की कोशिश करने लगा। कितना कठिन है, यह सब सहना। जो है, सामने है। कुछ भी छिपा नही रश्मि से। नही हो पाया जुगाड। उसे कम दुख है इसका?

ग्रास ही नही निगला गया तो दो बार पानी का एक-एक घूंट भी लिया, लेकिन सफल नही हो पाया। महसूस हुआ, अगर उसने अपने साथ और जबरदस्ती की तो ग्रास के साथ ही पेट की आंते भी उछलकर मुह के रास्ते बाहर आ जायेगी। अगले ही क्षण तेजी से उठा और ग्रास को बालकनी मे रखे कूडेदान मे उगल दिया।

उखड़ गये सांसों पर काबू पाते न पाते हथेली से मुंह पोछ लिया। फिर सीधा खडा हो सिगरेट सुलगाई और दूर तक फैले अधेरे मे देखने लगा। देखता रहा। तेज हवा के बावजूद पाला जमीन पर लगातार पसर रहा था। तभी एकाएक अंदर...... बहुत अंदर सामूहिक रुदन और सयापे के परिचित स्वर उठने लगे...... । □

वह लड़की और मैं

पूरबी पंवार

व्यक्ति की यह मूल कमजोरी है कि वह सदा युवा रहना चाहता है क्योंकि सबसे सुंदर वह इसी आयु मे लगता है। नारी की तो यह खास कमजोरी है। नारी जब पत्नी है तो उसके जीवन में एक खास परिवर्तन भी आता है। नारी जीवन की ऐसी ही मनोअवस्थाओं का चित्रण कर रही है अंग्रेजी कथा की लेखिका पूरबी पंवार।

उसके हाथ पर मेहंदी अच्छी लग रही है। हाथ भी सुन्दर हैं, छोटे और नाजुक। होगे ही, आजकल की लड़कियाँ घर का काम ही कहाँ करती हैं। बस, बन ठन कर रहना और लड़कों के साथ घूमना, कल की कोई चिन्ता ही नही। हम लोग ऐसे नही थे, अपने ऊपर कन्ट्रोल रखते थे, कभी इस तरह खुल्लमखुला लड़को से बात नही करते थे। मैंने तो अपने पति को शादी के दिन पहली बार देखा था। कितना बदसूरत था वह ! पता नही मुझे लोगो ने किसकी फोटो दिखाई.......

यह लड़की तो अपने होने वाले पति से मिल चुकी होगी। उससे बात की होगी। दोनों एक साथ डेट मारने गये होंगे। आजकल की लड़कियाँ इन मामलों में बड़ी बेशरम हैं। छीः ! छी ! माँ-बाप भी बुरा नहीं मानते, ऐसी बातों का। अगर मेरी अपनी बेटी होती तो मैं उसे ऐसे बेशरमी से पेश नही आने देती। पर मेरी तो कोई बेटी नही है, न बेटा। अगर होता तो हमारी जिन्दगी ही बदल जाती, जीने लायक। भगवान करे इस लड़की को बेटा हो, नही तो बेटी ही सही। मेरी तरह नही.........नहीं।

मुझे अपनी शादी का दिन अभी तक याद है। वह जनवरी का एक बर्फीला दिन था। 'सर्दियों में शादी होना अच्छा रहता है', उन्होंने कहा, उन रिश्तेदारों ने जो हफ्तों पहले आ धमके थे। 'क्यों', मैंने बड़ी नादानी से पूछा। 'क्योंकि रातें बड़ी लम्बी होती हैं,' किसी ने जवाब दिया और सब ठहाका मारकर हँसे, एक दूसरे की तरफ देखने लगे, कोहनी मारी। तब मुझे उनकी बात समझ में नहीं आई। अब मैं समझती हूँ, पर उससे कोई फर्क नही पड़ता।

कितने बजे होंगे? मेरी घड़ी बारह बताती है। अभी तो समय है, मैं पेडीक्टोर करा सकती हूँ। पैरों के तलवे फट रहे हैं। उसके पैर कितने सुन्दर लग रह हैं, नरम और गोल गोल। पर उसकी उमर भी कम है, बीस साल से ऊपर नही होगी। उसका मंगेतर सुन्दर होगा, मेरे पति जैसा नहीं। मुझे आज भी याद है कि किस तरह घबरा गई थी उसे पहली बार देखकर। उसका रंग गंदमी, उसका चेहरा मेंढक जैसा, उसकी आंखें गोल-गोल, लग रहा था अभी निकल आयेंगी। काफी समय लगा उसके बदसूरत चेहरे को देखकर न घबराने में। पता नही पापा ने उसमें क्या खूबी देखी।

उसके माँ-बाप ने तो मुझे बड़े ध्यान से देखा, मेरे लम्बे बाल खींचकर देखे कि नकली तो नही हैं (उस समय मेरे बाल वाकई सुन्दर थे), रुमाल में थूक लगाकर मेरी बांह मे मलकर देखा कि गोरापन असली है या नकली। मुझे कहा कि चलकर दिखाओ, यह परखने के लिये कि लंगड़ाती तो नही। इस तमाशे के बाद उन्होंने कहा कि वे सन्तुष्ट हैं और दहेज की बात चल पड़ी, काजू, नमकीन, मिठाई और चाय के साथ। वह तेज आंखों वाली औरत जो मेरी सास बनने वाली थी, सब पर हावी थी और अपनी बात सबसे ऊपर रखती थी। वह अक्सर अपने पति को यह कह देती थी, "तुम चुप रहो जी। तुम्हें दुनियादारी का क्या पता।" मैंने कभी उसकी तरह जबान नही चलाई। मुझे तो अपने पति से बेहद डर लगता था और मैं कभी उसके खिलाफ नही बोलती, न अकेले में, न सबके सामने।

वह तो हमेशा ही मुझे दर्द देता रहा, तन से और मन से। मेरे मम्मी-पापा पर ताने कसे जाते और मैं जख्मी होती। अन्दर से भी, बाहर से भी, क्योंकि तानों के साथ मुझ पर हाथ-पैर दोनों चलाये जाते। नतीजा यह हुआ कि दो बार मेरा मिसकैरेज (Miscarriage) हुआ और मैं माँ बनने से वंचित हुई। फिर वह सिलसिला ही खत्म हो गया, प्यार तो था ही नहीं उस रिश्ते में। और ताने, और थप्पड़ और लात। अब भी मैं उन दिनों के बारे में सोचती हूँ तो सुन्न महसूस करती हूँ। मैं तो हट्टी-कट्टी थी, इतना कुछ झेल गई। यह नाजुक-सी लड़की, जिसके हाथ पैर पर मेहंदी रची हुई है, शायद ही इतने दुख झेल पाये। भगवान करे इसे न झेलने पड़ें। मैं नहीं चाहती कि किसी की जिन्दगी मेरे जैसी हो।

देखती हूं सूजी मेरे बाल कैसे काट रही है। ठीक है, पर मुझे साइडबर्न (Sideburn)

पसन्द नहीं है। अभी मैं उसको कह देती हूँ। वह समझ गई है और साइडबर्न गायब। क्या अच्छा होता कि मेरे पति भी मेरी जिन्दगी से इतनी आसानी से गायब हो जाते। या मैं उसकी जिन्दगी से। पर ऐसी चीजें घट नही सकती, अपने आप घटाना पड़ता है। उसके लिये हिम्मत चाहिये, जिसकी मुझमें बेहद कमी है। इसीलिये मेरी जिन्दगी में वह अब भी मौजूद है, पूरी तरह से। पर उम्र के साथ-साथ वह थोडा नरम पड़ गया है और मुझे जवाब देना आ गया है।

क्या जिदगी ने मुझे कड़वा बना दिया है? समय से पहले बूढ़ी बना दिया है? शायद! किसकी परवाह है, सफेद बालों की, या झुर्रियों की? एक समय था जब मैं बड़े शौक से हर हफ्ते ब्यूटी पार्लर जाती। अब नही। अब तो जबर्दस्ती जाना पडता है, अपनी मर्जी के खिलाफ। बस एक बदलाव के लिए, रोज की बोरियत से। मेरा जी करता है कि इस लड़की से बात करूँ। पूछूं कि वह अपने बालो में रेगुलर हेना डालती है क्या। इतने घने और सुन्दर लगते है उसके बाल, शैम्पू के विज्ञापन जैसे। नहीं, मैं अपने आपको रोकती हूँ। हो सकता है वह व्यक्तिगत प्रश्न पसन्द न करे। रुखाई से पेश आये। मुझे रुखापन अच्छा नही लगता।

क्या मै शादी के मेकअप के लिये ब्यूटी पार्लर गई थी? नही, मेरा ख्याल है पार्लर वाली घर आ गई थी। जब उसने मेरा मेकअप खत्म किया मैंने शीशे में झांका, और अपनी परछांई को न पहचाना। "अरे वह तो मै नही कोई गुड़िया है।" मैंने उससे कहा। वह हॅसी और कहा कि वीडिओ फिल्म पर ऐसा मेकअप ही अच्छा लगता है। फिर मुझे अपनी नीली-हरी पलकें, लाल होंठ और बैककोम्ब किये बाल मान लेना पड़ा- वीडिओ फिल्म के लिये। मैं उस फिल्म को या शादी की फोटो को नही देखती, क्योकि उनमे अपने को पहचान नही पाती। इस लड़की को मुझसे ज्यादा अक्ल होगी, वह मेकअप का शिकार नहीं होगी।

मुझे घण्टों हो गये थे सिर पर रोलर लगाकर बैठे हुए, लगता था सदियॉ बीत गयी। फिर सूजी आई और रोलर निकाले। बाल कंघी की। घुंघराले ज्यादा हैं, पर सेट होने में समय लगेगा। रंग अच्छा आया है, सफेद बाल दिख नही रहे हैं। मैं काफी जवान लग रही हूँ, पर उस जैसी नही, जो अपने पैरों को वैक्सिग करा रही है। कितने अच्छे लग रहे हैं उसके पैर, मुलायम और नरम, मेरे जैसे बेढप, थलथले नही। मैं जल्दी से अपने पैरो को साड़ी के नीचे छुपा लेती हूँ, वे बदसूरत है, दिखाने लायक नही हैं।

वह मुझसे ऑख मिलाती है और मुस्कराती है। जवानी की अदा का क्या मुकाबला, खासकर अगर उसमें खुशी की झलक हो। भगवान करे वह झलक वैसी ही बनी रहे शादी के बाद भी। "आण्टी आपके बाल कितने सुन्दर लग रहे हैं, कितने स्मार्ट। मेरे बाल कितने बिखरे-बिखरे से हैं।" मुझे समझ नही आता क्या जवाब दूँ।

क्या वह मेरा मजाक उड़ा रही है ? मैं उसकी आंख में आंख डालकर देखती हूं, मुझे भोलापन नजर आता है । वह मेरी तारीफ कर रही है, एक बुढ़िया की, जो अपनी जाती हुई जवानी को रोकने की कोशिश कर रही है । उसकी कही गई बात मेरे दिल को छू गई । मैं समझ गई, उसके दिल में जो खुशी है, उसकी बातों में वही झलक रही है । मेरा पक्का ख्याल है, वह सुखी रहेगी । अपने पति को गुरु मानेगी, उसे बेटे देगी, अपने सास-ससुर की सेवा करेगी । मैं ऐसी नही बन सकती ।

'तुम्हारी शादी कब है, मैं उससे पूछती हूँ । आपको कैसे पता, उसका चेहरा सिन्दूरी लाल । 'लगता है कि तुम ब्यूटी पार्लर कम ही जाती हो", मै उसे कहती हूँ । आपने बिल्कुल ठीक कहा मै पहली बार आई हूँ और बोर हो रही हूँ । हॉ मै सोचती हूँ, जवानी में सुन्दर बनना आसान है, कुदरत मदद करती है । मैं उसे बताती हूँ कि उसका चेहरा, उसके बाल कितने सुन्दर हैं । वह फिर शर्माती है, आण्टी, अनीश भी यही कहता है । मैं यह जांचने की कोशिश करती हूँ कि वह रिश्ता उसके मॉ-बाप ने तय किया या लव मैरेज है । वह खुलासा करती है । हम दोनों एक साथ बड़े हुए, एक साथ स्कूल और कॉलिज गये, अब विरोधी कम्पनियों मे काम करते हैं । वह सुन्दर है ? आप अपने आप देखिये । वह पर्स में से एक फोटो निकालकर मुझे थमाती है । हंसमुख चेहरा, चमकती आंखे, ऊँचा माथा, कुल मिलाकर अच्छी पर्सनलिटी है ।

वह मेरी तरफ देख रही है, इन्तजार में है जैसे मेरे मतामत उसके लिए अहमियत रखते हों । मैं उसके अच्छे टेस्ट की सराहना करती हूँ, और वह अपने होने वाले पति के परिवार के बारे में सब कुछ बताती है । मैं हैरान हूँ, मेरे अन्दर से उस लड़की के प्रति प्यार उमड़ आता है । अब वह भी घर जाने के लिये तैयार हो रही है, कल का appointment बना रही है, मेकअप के लिये ।' भगवान तुम्हारी जोड़ी बनाये रखे', मैं उससे कहती हूँ । वह मुझे अपना शादी का कार्ड देती है, और कहती है जरूर आइये ।

मैं जाऊ या न जाऊँ ? □

सन सेट व्यू

निर्मला सिंह

जीवन का दिन बहुत लम्बा होता है, कई बार छोटा भी। अस्त होने से पहले व्यक्ति अनेक दृश्य देख जाता है। ऐसे ही कुछ दृश्य ज्योति ने प्रकाश को दिखाए। निर्मला सिह की कहानियॉ मानवीय संवेदना को आमंत्रित करने का सार्थक प्रयास करती है।

"यार, थक गये, बहुत ही लम्बा सफर है। मैं तो आराम कर रहा हूँ, आओ तुम भी लेट जाओ ज्योति।" प्रकाश ने जूते उतार कर पलंग पर लेटते हुये कहा, और ज्योति को अपनी ओर खींच लिया।

थकी-थकी तो ज्योति भी थी, लेकिन उसका चंचल चित्र कमरे में बैठने के लिये राजी नही था। शोख और मदमायी दृष्टि से प्रकाश की ओर देख रही थी और छेड़छाड़ भी कर रही थी। "क्यों, क्या अभी से कमरे में बैठना है" अरे, इतना सुन्दर दर्शनीय स्थल माउन्ट आबू है कि देखोगे तब मजा आ जायेगा।

"डार्लिंग, देखेंगे सब कुछ देखेंगे, थोड़ी देर आराम कर लें और अपनी मैडम को प्यार कर लें।"

"प्यार... उसके लिये रात काफी है।"

"क्यो क्या दिन मैं टैक्स लगेगा और रात भी अभी थोड़ी देर में होने वाली है।"

"हॉ... घूमने चलना है, पता है प्राचीन ऋषियों-मुनियों की तपोभूमि एवं प्राचीन संस्कृतियाँ तथा इतिहास के अनेक अध्यायों का संगम स्थल है यह। तुम्हें शायद पता नही यह लम्बे विशाल रेगिस्तानी क्षेत्र के दूसरी ओर दक्षिण-पश्चिम में स्थित अरावली पर्वत

माला पर बसा अपने अपरलोकीय सौंदर्य और प्राकृतिक मनोहारी छटा के कारण राजस्थान का अमरपुर कहलाता है। देखो न कितने सुन्दर सन से या प्रहरी से लग रहे यह ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं और सबसे खूबसूरत है निक्की झील तो दूसरी ओर विश्वविख्यात संगमरमर के पत्थर पर बना हुआ दिलवाड़ा जैन मंदिर ... सच प्रकाश स्वर्ग है माऊन्ट आबू..."

"बस करो... ज्योति... बस करो" क्या तुम गाईड हो, या भूगोल शास्त्री।

"नही मैं तो यू हीं बता रही थी।"

"बस, करो यार हर जगह भूगोल, इतिहास नही समझाया जाता है। यहॉ हम लोग हनीमून मनाने आये हैं..." ज्योति का कसाव प्रकाश ने और अधिक कर लिया।

हा... हा... हा एक निश्छल झरने की हंसी किसी कलाकार के बनाये नये लिनोकट सी असाधारण सुंदरी सी ज्योति की देह गंध प्रकाश की देहगंध में समायोजित हो गई।

बाहर लान मरकस आभा से प्रदीप्त हो रहा था। रंग-बिरंगे फूलों पर सुनहरी धूप लरज रही थी, रंग-बिरंग फूल उचक-उचक कर हवा के पालने मे झुल रहे थे। एक महकता सुन्दरता की मेला लान मे लगा था और सौंदर्य-शक्ति का अद्भुत मिलाप कमरे मे हो रहा था। प्रेम सुगंध-निकर्षण से कमरा महक उठा था। धीरे-धीरे सांध्य सुंदरी कमरे में निःसंकोच छम-छम करती उतर आई।

ज्योति के मन मस्तिष्क में लहरें सी उठ रही थी—इतनी सत्वरता से उसके सपने साकार हो जायेंगे। स्नेह ताप से पिघली, रोमांचित देह भाग्य के खेल से कंपकंपाने लगी, रति रमण से महका कमरा उसे लगा कह रहा है कि तुम इस सुन्दर धनाढ्य पुरुष को धोखा क्यों दे रही हो... बता दो सब कुछ अतीत... पता है सत्य सात तालों में भी बंद नही हो पाता है। वह कल्पना भी नही कर सकती थी कि उसे इतनी जल्दी स्वर्ग सा सुख प्राप्त हो जायेगा। कहॉ वह एक साधारण मध्यवर्ग परिवार की निर्भीक आम सारिका कहॉ वह उच्च धनाढ्य सुंदर-सुशिक्षित पुरुष?

और प्रेम की सरिता में बहती ज्योति के मुख से निकल ही पड़ा—"प्रकाश, मैं कल्पना भी नही कर सकती थी कि तुम मुझ जैसी साधारण एक क्लर्क को अपनी पत्नी का रूप दे दोगे?"

"चुप हो जाओ ज्योति! तुम एक साधारण युवती नही, एक क्लर्क नही अब मेरे दिल की धड़कन हो। सागर को क्या पता कि उसमें कितने मोती हैं, चांद को क्या पता की वह कितना सुंदर है? तुम कच्ची मिट्टी की सौंधी सुगंध हो, पके हुए मिट्टी के बर्तन की नहीं... तुम केवल मेरे लिये ही बनी हो..."

"बस करो, प्रकाश बस करो इतनी प्रशंसा... इतनी चाटुकारिता अलगाव का कारण बन

जाती है। अच्छा, खाना खाने बाहर चलोगे या कमरे में ही मंगा लोगे।"

"अरे, नहीं यार, अब बाहर कहीं नहीं जाना है, कल सुबह से घूमेंगे... खाना तो रात को कमरे में ही चाय की तरह घंटी बजाकर मंगा लेंगे।

ज्योति ने गुलाबी रंग की सिल्क की नाईटी, और प्रकाश ने आसमानी रंग का नाईट सूट पहिन लिया। घंटी के बजाते ही डिनर क़मरे में आ गया। खिड़की से शीतल, सुगंधित पवन के झौंके बार-बार आकर ज्योति के बालों से, उसके वस्त्रों से छेड़-छाड कर रहे थे, चारू चंचल, चांदनी दोनों की देहों पर थिरक रही थी। कमरे में ही रखी छोटी सी मेज पर थाली रख ली गयी और दोनो आमने-सामने बैठकर खाने में जुट गये। बचपन, जवानी की खट्टी-मीठी यादें बातों के रूप में दोनों के मुख से निकल रही थी। सराना... की स्याह चित्र ज्योति ने संवरण कर लिया, लेकिन बीच-बीच में वह विस्मृत सी हो जाती। ऐसे खो जाती, जैसे तैरता व्यक्ति कुछ पल के लिये जल में गोता लगा लेता है। पता ही नही चला बातें करते-करते दोनों एक-दूसरे से बेल-वृक्ष की भांति लिपटे-हुये ही नीद के आगोश में चले गये।

सुनहरी सुबह की सतरंगी किरणों के स्पर्श और पक्षियों की मृदुल चहचहाट ने दोनों की आँखें खोलीं। शाम को घूमने न जाकर आराम करने के कारण अब सुबह ज्योति और प्रकाश स्वयं को ताजा महसूस कर रहे थे। बैड टी पीकर दोनो जल्दी ही तैयार हो गये। नाश्ते में ब्रैड, आमलेठ, दूध लेकर, शीघ्र ही दोनो नक्की झील पर पहुँच गये।

प्रत्यूष की स्वर्णिम किरणों के स्पर्श से लहराता-मचलता झील का जल चारु चंचल यौवना सा लग रहा था। सुन्दर युगल कपोल से ज्योति और प्रकाश झील के किनारे बैठे उसकी सुन्दरता का सिहावलोकन कर रहे थे। ज्योति निर्वाक-निःशब्द बैठी-बैठी कभी झील, कभी इधर-उधर घूमते यात्री गण, कभी प्रकाश, तो कभी लहरों का आलिगन करते तस को निहार रही थी कि इस बीच प्रकाश ने उससे कई बार बोटिग के लिये पूछा, लेकिन वह स्वयं में मगन थी, तभी प्रकाश ने उसे झकझोरते हुये पूछा—"अरे, कहॉ खो गई मैडम? हम कब से पूछ रहे हैं बोटिंग करनी है या नही, लेकिन आप टस से मस नही हो रहीं।"

बार-बार ज्योति के मस्तिष्क में स्याह अतीत का चित्र घूमने सा लगता और वह विचलित सी हो जाती, जैसे चंचल हवा के झौंके जल तल को एक रूप रहने ही नही दे रहे हों, बार-बार उद्दाम तरंगें उत्पन्न हो रही हों, लेकिन फिर भी मन को वश में करके बोली—"जी, मुझे तो बोटिग से भय लगता है, लेकिन आपकी इच्छा है तब चले चलेंगे।"

उन्मुक्त हंसी प्रकाश के अधरों से फूट पड़ी—"ये जी जी क्या लगा रखी है? अरे सीधे-सीधे प्रकाश कहो। तुम्हें हो क्या गया है, बार-बार मुंह लटका लेती हो, कल से अब तक सौ बार तुम्हारे चेहरे के भाव बदलते मैने देखे हैं। हम दोनों पति-पत्नी हैं हनीमून पर

आये हैं, औपचारिकता की कोई ज़रूरत नही है।"

"हां ऽऽ ठीक कह रहे हो तुम। मुझे स्वयं ही नही पता कि ऐसा क्यों हो जाता है?"

कुछ ही पलों में बोटिग के टिकट, मूंगफली, पापकार्न के पैकेट गुनगुनाता हुआ प्रकाश ले आया। और चंचल-मदमाती लहरों का सीना-चीरती हुई उनकी बोट चलने लगी। प्रेम में दोनों दीवाने थे, विह्वल थे, ज्योति मोह के वशीभूत थी, प्रकाश के सौंदर्य और गुणोपर। यौवन में, हनीमून में प्रेम की फैली बांहों का आकर्षण किस पर न होगा? ऐसा हृदय कहाँ है जिसे रूप और प्रेम न जीत सके। ज्योति दुविधा मे पडी हुई थी, उसका हृदय कचोट रहा था—मेरी वास्तविकता से यह परिचित होगे तब मुंह फेर लेंगे, अमृत विष हो जायेगा, बसंत-पतझड़। यह कितने ही सचरित्र हो, उच्च विचारो के हो परन्तु मेरी असलियत घृणा उत्पन्न अवश्य करेगी, मगर वास्तविकता अभिव्यक्त करने का साहस वह बोटिग करते समय भी नही जुटा पा रही थी। पति के अज्ञात, अन्जान दशा मे प्रणय पाश में कसे रखना उसे नीच पाप कर्म लगता था। यह कपट है, छल है, धूर्तता है जो प्रेमा-चरण में सर्वथा निषिद्ध है। प्रेम विश्वास के धरातल पर टिकता है, धोखे और छल-प्रपंच पर नही। इस संकट में पड़ी हुई वह सत्य अभिव्यक्त करे या नही, यह निर्णय नही ले पा रही थी। उसकी मन की दशा चेहरे से बीच-बीच में झलक पड़ती थी। जब इन्हें मालूम होगा कि मैं उच्च कुलीन नही हूँ तब उन्हे कितनी आत्मवेदना, कितनी पीड़ा, कितनी लज्जा, कितनी दुराशा, कितनी ग्लानि होगी... यह सोच कर ज्योति कांपने लगी।

"यह... यह ... क्या हो गया तुम खाते-खाते फिर मौन हो गयी और कांप सी रही हो।"

"नही... कुछ भी तो नही। वैसे ही हवा के ठंडे झोंके तन को रोमांचित से कर गये। लो, शाल ओढ़ लेती हूँ।"

हंसी-ठिठोली, गप्पें, चुहुलबाजी, कसमें-वादे, मूंगफली, पापकार्न खाते-खाते दोनो झील के मध्य में स्थित जलपान गृह मे नाश्ता करने चले गये। प्रवेश करते ही ज्योति बोली, मानो जलते हुए दीपक की लौ तेज हो गयी हो—

"तुम्हें पता है डार्लिंग, इस नक्की झील के लिये किवदती है"

"नही मुझे नही पता। बताइये सरकार।"

प्रकाश ने ज्योति की झील सी आँखों को अपना दर्पण बना लिया।

"कहते हैं इस नक्की झील को रसिया नामक सिद्ध पुरुष ने नाखूनों से खोद कर बनाया था। कार्तिक पूर्णिमा के इसमें स्नान करने की विशेष महत्ता है।"

"तो फिर दुबारा कार्तिक पूर्णिमा को हम लोग स्नान करने आ जायेगे।" कह कर प्रकाश मुस्कुरा दिया।

"धत्त ऐसा तो नही कह रही। और हाथों में हाथ ले एक दृष्टि एक चाल में दोनों

जलपान गृह में बैठ गये। खाना-पीना, हंसना-मुस्कुराना, गप्पें मारना चलता रहा यहां तक कि नक्की झील के बाद गांधी वाटिका, रघुनाथ जी का मंदिर, राड राक, वन राक, वैलेज वाक, विवेकानन्द उद्यान, शंकरमठ, पालनपुर प्वाईट सभी कुछ घूम लिया। थकान और विश्राम करने की चाहत दोनों में जाग्रत सी हो गयी।

"सुनो जी।" पहाड़ी अलकनन्दा सी कल-कल करती ज्योति बोली—

"सुनाईये जी।" प्रकाश ने मुस्कुराते हुए कहा।

"अब बहुत थक गयी हूँ। कही खाना खाकर, होटल में चलकर आराम करेंगे, शाम को हनीमून प्वाईट और सूर्यास्त्र दर्शन स्थल देख लेंगे।"

"अच्छा, ओ.के. चलते हैं।"

चलते-चलते ज्योति को पता नही क्या सूझी कि प्रकाश के कपोलों पर मृदुल-चुम्बन अंकित कर दिया।

"अरे-अरे यह क्या कर रही हो? कोई देख लेगा तो क्या कहेगा?"

"कहेगा तो कहे, मैं अपने पति को प्यार कर रही हूँ, किसी गैर को नही।"

और अनगिनत बेला के महकते फूल झरने से लगे उसकी हंसी में।

"अच्छा, तो यह बात है, होटल चलकर, कमरे में दिन को ही रात बना दूंगा।" प्रकाश ने ज्योति का हाथ दबाते हुए कहा।

कुछ ही पलों में वह लोग होटल पहुँच गये। दोपहर का खाना खाया। आराम करने के लिये अपने कमरे में चले गये। प्रकाश ने नाईट सूट पहिन लिया, ज्योति ने नाईटी। ज्योति ने अपने अटैची केस में से नाईटी बाहर निकाली एक खूबसूरत महिला का चित्र नीचे गिर गया। प्रकाश ने चित्र देखा। उत्सुकता ने प्रश्न किया "यह किसका चित्र है? कौन हो सकती है यह महिला? शादी के समय तो घर में नही थी। प्रकाश ने फोटो छिपा लिया। उसका उद्वेलित, विह्वल मन सोचने लगा—

"यह कौन है, जिसका चित्र ज्योति ने मुझसे छिपाया है जबकि सारे चित्र दिखा चुकी है, ऐलबम में क्यों नहीं लगाया? अपने मस्तिष्क में विचारों के दौड़ते घोड़े प्रकाश ने रोक लिये, और गुनगुनाती हुई, वस्त्र परिवर्तन करके शयनागार से बाहर निकली ज्योति को अपने सन्निकट घसीट लिया। इसके पूर्व कि प्रकाश ज्योति को अपने बाहुपाश में इतना कसे कि दूरियां समाप्त हो जायें और शून्य तक का मध्य में अस्तित्व न रहे, ज्योति थोड़ी दूर हट गयी।

इधर ज्योति के अन्तर्मन में बद्सूरत, निन्दनीय, अतीत बाहर आने को बेचैन था, उधर आकाश के काले-काले बादल वर्षा के रूप में धरती से जुड़ने लगे। अचानक बिजली कौंधी, ज्योति कांप गयी आकाश से लिपट कर फूट-फूट कर रोने लगी जैसे आर्टीजन वैल

मे से पानी का फव्वारा बाहर को फूटता है ।

"प्रकाश मुझे बहुत डर लगता है ऐसे मौसम मे ।

"अरे, यार इतना बढ़िया, रंगीला, रोमांटिक मौसम है और तुम्हें डर लग रहा है, बोलो क्या बात है ? आओ सो जाओ ।" प्रकाश की अंगुलियां ज्योति की देह से फिसलती हुई बालों में फिरने लगीं, कोमल, रासरंग मय स्पर्श ने ज्योति को बाहर से अंदर तक रोमांचित कर दिया, स्नेह ताप में पिघलने लगी, और वह भी वृक्ष से लिपटी हरी बेल की तरह प्रकाश के साथ ही निन्द्रालीन हो गयी ।

सांझ ढले जब ऑख खुली तब नीला आकाश बिल्कुल साफ सुथरा, धुला पुछा हो गया था, टिमटिम तारे ऑखमिचौली सी खेल रहे थे । प्रकाश हाथ मे बंधी घडी देखकर चौक गया— "ओह ! माई गाड, मै तो मुर्दों से शर्त लगाकर सो गया । हनीमून प्वाईट और सन-सैट व्यू देखने जाना था ।"

मुस्कुराती हुई ज्योति बोली—"हॉ... हॉ मुझे पता है जाना था । एक बात तुम्हें बताऊँ यह स्थान अपने आप मे अद्वितीय है, जहा से अस्त्र होते हुये सूर्य के चिर-स्मरणीय दर्शन संभव हैं ।"

"गाईड साहब, यह मुझे भी पता है । मैडम, लगता है आप भी सो ही गई, वह तो थककर सोना ही था... खैर ! चलो अब फ्रैश होकर घूमने चलेगे" ज्योति को बंधन मुक्त करते हुए प्रकाश बोला ।

"हॉ... हॉ... चाय मंगाते हैं फिर चाय पीकर घूमने चलेंगे ।" चाय आ गई । प्रकाश ने पहिले चाय ज्योति को पिलाई एक घूंट फिर वही स्वयं पी ।"

"यह क्या..."

"अरे डार्लिग तुम्हारी झूंठी चाय ज्यादा मीठी हो गयी, क्योंकि तुम बहुत मीठी हो ।"

"बस, बस करो न रात में चैन... न दिन में..."

"हम तो हनीमून पर आये हैं, मौजमस्ती करने, रासरंग करने, खाने पीने, घूमने फिरने... ।"

"वह तो सब ठीक है प्रकाश लेकिन... ।"

"यह लेकिन कहॉ से आ गया बीच मे ?"

ज्योति की रंगीली ऑखें राख सी हो गयी । चेहरे पर एकाएक खिले फूल मुर्झाने से लगे । अवरुद्ध कंठ से बोली—

"प्रकाश, जो तुम देख रहे हो मैं वह नही हूँ । दरअसल मैं शर्मा जी की बेटी नही हूँ ।"

"तो फिर किसकी बेटी हो ?"

"मैं... मैं..." कंपकंपाती आवाज ज्योति के मुख से निकल रही थी । प्रकाश ज्योति के

सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए बोला—"हॉ... हॉ... सच बताओ क्या बात है ? शर्मा जी की बेटी नही हो तब फिर किसकी बेटी हो ?"

प्रकाश को लगा कि वह ऐसी चट्टान पर खड़ा है जो धड़धड़ाकर कुछ ही पलों मे हजारों फीट गहरी खाई में गिर जायेगी, लेकिन बुद्धि, संयम ने प्रकाश को संतुलित कर दिया। "हॉ... हॉ... तुम सब कुछ साफ-साफ बताओ।"

"प्रकाश, पाप सदैव पाप है, चाहे वह किसी भी आवरण में मंडित हो। मेरे सत्य के संवरण का बड़ा घातक परिणाम हो सकता है, इसीलिये मे सबकुछ बता देना चाहती हूँ।"

गीले नयन, वाणी में थरथराहट, चेहरे पर अशान्ति, अस्थिरता के चिन्ह लिये अविचलित सी ज्योति बोली—"शर्मा जी, मुझे बहुत प्यार करते है, उन्होंने मुझे पाला-पोसा है, गीता मॉ ने धूप सहकर छांव दी है, भूखा रहकर मेरी उदर-क्षुधा-पूर्ति की है। मुझे अंकुर से उन दोनों ने एक पौधा बनाया है, लेकिन जन्म देने वाले नही हैं।" धीरे-धीरे करके नयनों के मेघ वर्षा की बूंदों से टपकने लगे।

"प्रकाश, जैसी मैं बाहर हूँ वैसी अंदर नही हूँ, लेकिन मैं एकरूपता चाहती हूँ, अपनी वाणी को आन्तरिक भावों की दर्पण बनाना चाहती हूँ, लेकिन सत्यता जानकर मुझे त्याग तो नही दोगे,"

"नही... नही... तुम्हें आज की तरह भविष्य में भी प्यार करूंगा। यह कसम खाता हूँ। हमारे प्यार में अतीत काला हो या सफेद दीवार नही बनेगा, यह मै तुमसे वायदा करता हूँ।"

"प्रकाश, तुम सराना जाने को कहते थे और मै बचती थी, क्योंकि सराना से ही मेरी जिन्दगी की काली तस्वीर जुड़ी है। यह उस समय की बात है जब सराना ही नही सारा देश साम्प्रदायिकता की आग में धूं-धूं करके जल रहा था। दोनों एक-दूसरे के जान के दुश्मन थे। भारत में मुसलमान तो पाकिस्तान मे हिन्दू गाजर-मूली की तरह काटे जा रहे थे। हथियारों की, नृशंस हत्याओं की होड़ लगी थी, स्त्रियों-बालिकाओं की इज्जत-आबरू सरे बाजार लूटी जा रही थी। सुनते है धरती आग बरसा रही थी और आसमान धुंआ उगल रहा था। जगह-जगह इन्सानियत की लाशें बिछी पडी थी और प्रेम, भाईचारा, विश्वास आखिरी सांसें ले रहे थे।

प्रकाश, वैसे तो वह शरद पूर्णिमा की रात थी, लेकिन कर्मों से अमावस से भी अधिक काली। एक-एक करके मानों हजारो तारे विलुप्त से हो गये, धरती कदम के गहरे अंधेरे से और आकाश चिताओं के धुंए से ढंक गया था। कुछ लड़कियों के साथ मेरी मां गांव से निकलने वाले कारवां में शामिल होने जा रही थी, क्योंकि वह सभी लड़कियां अनाथ हो गयी थी। उन लड़कियों के पास कारवां मे शामिल होने के बजाय और कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था। अचानक मेरी सगी मॉ की सहेली का भाई दिलीप सिह दौड़ा-दौड़ा

आया। वह बुरी तरह हांफ रहा था। धीरे-धीरे कानों में कुछ कहकर उन सभी लड़कियों को छिपाने अपने घर ले गया। उसने यह बताया कि किसी न किसी तरह से रात ही रात में लुधियाना से पाकिस्तान जाने वाली गाड़ी में चढ़ा देगा, इसके लिये उसने गाड़ी का प्रबंध भी कर लिया। कुछ ही पलों में सब लड़कियां उसके घर पहुंच गयी।

वह वक्त ही पापी था। विश्वास तिनको सा जल रहा था। हर घर मे से चुन-चुनकर भारत में मुसलमान लड़कियो को बेआबरू करके मार रहे थे।" कहते-कहते ज्योति अनित की ओर देखने लगी। ललाट की सिलवटें और गहरी हो गयी, चेहरे पर विषाद, पीड़ा के भाव तैरते हुए रुक से गये, अब उसमें इतना मनोबल न था कि वह आगे बोल पाती, वाणी थम सी गई, लेकिन प्रकाश ने पानी मंगवाकर पिलाया, प्यार से सहलाया तब वह और आगे कुछ रुआंसी सी बोली—

उस रात जब लड़कियां सोने के लिये कमरे में गई, कुछ नौजवान छिपे हुये थे एकाएक लड़कियों पर टूट पडे, दिलीप सिह को कुछ ने बाहर ही कमरे मे कैद कर दिया और उसकी मां, बहिन के तो हाथ-पांव बांधकर ऊपर छत वाले कमरे में बंद कर दिया। कुछ लड़कियां मार दी गई, कुछ भागकर सराना के बडे कुंए मे कूद गई। कहते है हजारों की संख्या में औरतें और लड़कियां कूदी थी। अपनी अस्मत लुटाने से तो उन्होंने जान देना बेहतर समझा था। आधी रात तक वहशीयाना तांडव नृत्य होता रहा, बिचारी मेरी मां सलमा जो चारपाई के नीचे छिपी थी एक गुंडे ने खीचकर बेईज्जत किया ही था कि उसने रसोई वाले चाकू से उसकी जान ले ली, फिर भगदड़ मच गयी। पेड़ से बंधा दिलीप सिह चिल्लाता रहा, चीखता रहा, गूंगी दीवारे, अपाहिज आसमान कुछ न कर सका। उस गुंडे का खून करके मेरी मां में साहस, शक्ति और बुद्धिमत्ता जाग्रत हो गयी। कुछ ही समय में गुंडे भाग गये। खून से लथपथ मेरी मां ने किसी तरह दिलीप सिह को पेड़ से खोला और वह बेहोश सी हो गयी।

सुबह होते ही दिलीप सिह ने खिड़की से नीचे झांककर देखा लड़कियों की लाशें बिछी पड़ी थी। वह कांप गये, घबड़ा गये। समझ में ही नही आया कि क्या करें। खैर, किसी न किसी तरह उन्होंने मेरी माॅ को उठाया, प्यार किया, हिम्मत बंधाई वैसे कहते है मेरी मां बहुत सुन्दर, तेजस्वनी, और कुशाग्र बुद्धि महिला थी। वह कई महीने दिलीप सिह के साथ रही, उसे छिपाकर घर में रखा गया, कभी रजाई गद्दों के नीचे कभी स्टोर में, तो कभी अलमारी के पीछे, तो कभी ड्रम मे। कई बार धर्म के ठेकेदारो ने दिलीप सिह के घर छापा मारा, लेकिन मेरी मां बच गई।

दिलीप सिंह मेरी माॅ के पति बन गये क्योंकि वह मेरी माँ की औलाद को नाज़ायज नहीं कहलवाना चाहते थे, अतः उन्होंने चुपचाप गुरु ग्रन्थ साहब के फेरे पढ़वा कर मेरी माँ को सुहागिन का रूप दे दिया।

उस समय अस्पताल जाना भी खतरों से खेलना था, क्योंकि जगह-जगह धर्मों की सभायें होती, भाषण होते, जुलूस निकलते, तकरीरें होतीं और बेवजह, बेकसूर दूसरे धर्म के लोगों को मौत की नींद सुलाने की योजनायें बनाई जातीं। नेक और शरीफ बंदे तो घरों में छिपे, रजाइयों और चादरों से मुंह ढंके, सांस रोके चुपचाप पड़े रहते—ऐसे देवता इन्सानों को अधर्मी और गद्दारों के नाम से अलंकृत किया जाता। अफवाहो के पंख लगे थे। वह रुई के फोहों की तरह उड़ रही थी।

पूरे सराना में अफवाह फैल गई कि दिलीप सिह से एक मुसलमानी को बच्चा हुआ है और उसने शादी करके उसे छिपा रखा है। ऐसे ही एक भयानक रात कुछ हैवान दिलीप सिह के दरवाजे पर शोर मचा रहे थे, उसे पीट रहे थे—"दिलीप सिह मुसलमानी को बाहर निकालो नही तो तुम्हारी मॉ-बहिन को भी नही छोड़ेंगे—"

इससे पहिले कि वह आगे बढते मेरी मॉ पीछे के दरवाजे से भागकर सराना के उसी बड़े कुएं में कूद गयी, "या अल्लाह' कह कर मौत के गले लग गयी"।

तो फिर दिलीप सिंह का क्या हुआ ? आश्चर्य में डूबा हुआ सहमा प्रकाश बोला।

"होना क्या था उन गुंडों के हाथो दिलीप सिह भी मारा गया हॉ, उन्होने मुझे अपने मित्र शर्मा को पहिले ही गोद दे रखा था।"

"उन्होंने दिलीप सिह को क्यों मारा ?"

"क्योंकि उनके मतानुसार वह पापी थे, जुर्मी थे, मुसलमानी से शादी करके।"

"हाय... हाय... यह तो बहुत बुरा हुआ ज्योति... तुम्हारे दिल में इतने गहरे जख्म है... तुम इतनी पीड़ा... इतनी काढ़ा पी रही हो... वाकई में तुम एक देवी हो जो तुमने सब कुछ सच बता दिया... कुछ भी नही छिपाया ... चाहे मैं कैसा बर्त्ताव करूॅ... यह भी नही सोचा तुमने ज्योति..." प्रकाश की गहरी गीली आंखों से भी वेदना पिघल कर बहने लगी...

ज्योति गिरा हुआ चित्र खोज रही थी। प्रकाश ने उसे चित्र दे दिया। ज्योति ने उसे झपट लिया, कभी माथे, से कभी सीने से लगाया... अस्फुट स्वरों में बोली—"सच, प्रकाश यही है मेरी असली मॉ, जिसने जन्म दिया था और जो सराना के कुएॅ मे कूद पड़ी थी।"

"अच्छा, तभी तुम सराना जाना नही चाहती थीं," लेकिन तुम अतीत भूल जाओ और ज्योति को आलिगन मे कसते हुये, उसके अश्रु पोंछकर प्रकाश बोला, 'सराना नही तो फिर सन सेट व्यू देखने तो चलोगी।"

अपनी पीड़ा को विस्मृत करके, कुछ पलो के बाद निःशब्दता को भंग करती हुई ज्योति बोली—"हाँ, जी आप ले चलेंगे तब जरूर चलूंगी सन सेट व्यू।"

"क्यों नही ले चलूंगा डार्लिंग" मैं तुम्हें प्यार करता था, करता हूँ और करता रहूँगा। तुम्हारे अतीत के चित्र मेरे जीवन को धूमिल नहीं करेंगे। ज्योति मेरा प्यार विश्वास और सच्चाई पर टिका है, यह बिकाऊ नहीं है, इसका क्रय-विक्रय नहीं हो सकता... यह...।"

... प्रकाश आगे कुछ और कहता इससे पूर्व ही ज्योति कहने लगी।

मुझे पूर्ण विश्वास था तुम्हारे ऊपर प्रकाश इसीलिये मैंने इमारत की नीव तक आपको दिखा दी, मैं नही चाहती थी कि तुम केवल कगूरे ही देखो।"

और आकाश में तैरते हुये दो पृथक-पृथक बादल के टुकड़े एक होकर प्रेम की बौछार जीवन भर करने को तत्पर हो गये। दो हंसते, मुस्कुराते चेहरे, उमंग, चाहत से पूर्ण उनके कदम 'सन सेट व्यू' की ओर बढ़ गये। □

तलाश जारी है

सिद्धनाथ सागर

जीवन अनंत है और इस अनंत यात्रा के बिदुओं को पकडकर एक वृहत आकार देना रचनाकार का लक्ष्य होता है। अपने आस-पास के चरित्रो के माध्यम से वह हमारी पकड़ से दूर संवेदनों से हमारा परिचय कराता है। जीवन की भागदौड़ में जिसे हम अनदेखा कर जाते हैं, उसे हमारे सामने कथाकार साक्षात् कर देता है। तलाश जारी है के चरित्र ऐसे ही अनपहचाने पलों को आपके समक्ष साक्षात कर देगे।

'प्रकाश के पापा पगला गये है। खोने का गम सह नही पाये। बेटे के भ्रम में किसी और को उठा लाये।' वर्मा की मोटी बीवी ने कहा।

'ठीक कह रही हो बहन। प्रकाश तो एकदम गोरा-चिट्टा था। हंसता चेहरा। फूले-फूले से गाल। बड़ी-बड़ी आंखें। एक अलग संस्कार था... यह तो आदिवासी से भी काला है। यह प्रकाश कैसे हो सकता है?' श्रीमती राय उसका समर्थन करते हुए अपनी कुरसी पर जमी रही।

'साल भर बाद मिला है तो क्या वैसा ही रहेगा?' एक मरियल-सी आवाज जिस पर वर्मा की मोटी बीवी ने फब्ती कसा, 'जी नही, साल भर में गोरा आदमी काला हो जाता है और काला आदमी गोरा।'

हंसी का फब्बारा छूट पड़ा था जो थोड़ी देर बाद शांत हो गया।

'यह तो गूंगा है। प्रकाश तो बोलता था।' पता नही चल पाया यह महीन आवाज किसकी थी।

बगल की मुंहफट पड़ोसिन से नही रहा गया। व्यस्त प्रकाश की मम्मी को खीचकर एक तरफ ले गयी और साफ-साफ कह दिया, 'मर्द पगला गया है तो क्या तुम भी अपनी मगज खो बैठी हो? अपना बेटा भी नही पहचाना जाता?'

प्रकाश की मम्मी क्या बोलती? उससे कुछ कहते नही बना। वह चुपचाप सुनती रही। प्रकाश के मिलने की खुशी मे शीघ्र पूजा-पाठ की व्यवस्था नही हो पायी थी। लोगों को नमकीन-चाय देना भी संभव नही हो पाया था।

'भई, हम ऐसे नही मानेंगे। साफ कहो प्रकाश की मम्मी, कब दे रही हो पार्टी?" जाते-जाते आखिर सुनील की मां ने टोक ही दिया था।

'बस, अगले हफ्ते।' वह मुस्करायी थी। जब तक लोग रहे, उसने भीतर के भावों को चेहरे पर नही आने दिया था।

उस दिन प्रकाश के पापा लौटे तो उनके साथ दुबला-पतला बदशक्ल-सा लड़का था। उन्ही के साथ बैठक में प्रवेश करते देख उसने पूछा, 'यह कौन है?'

'अरे, पहचाना नही? प्रकाश है...अपना प्रकाश!' आश्चर्य मिश्रित उत्साह के साथ उन्होंने पत्नी की तरफ देखा।

रात के बारह बजकर पांच मिनट हो रहे थे। सब चले गये थे। सामने के क्वार्टर में टी.वी. पर चल रही किसी फिल्म की आवाज बेडरूम के सन्नाटे को तोड रही थी। थकान काफी थी। नीद आ नही रही थी। रह-रहकर वही बातें चुभने लगती। कैसे मान लें कि यह प्रकाश है? कुछ भी तो नही है पहले जैसा... लेकिन प्रकाश के पापा को कौन समझाये? उससे लेटे रहना पार नहीं लगा। दबे पांव प्रकाश के कमरे के पास चली आयी। कुछ तो वह खोज पाये उसके भीतर।

परदा हटाकर देखा। वह ठगी-सी रह गयी। पलंग की बजाय प्रकाश फर्श पर था। साथ लाया पोटली जिसे वह किसी को छूने नही देता था, छिनने पर मारने दौड़ता, असफल होने पर रोने लगता, सिर के नीचे रखकर बायें करवट सोया था। मुंह के कोने से बहकर आती लार पोटली को गिला कर रही थी। ज्यों ही कमरे में कदम रखा, वह हठात् उठ बैठा...इतनी पतली नीद नही थी प्रकाश की।

उसने झट पोटली दोनों हाथों से पकड़ छाती से सटा लिया। जैसे कोई उसकी संपत्ति हड़पने आया हो। उठकर कोने में चला गया। उसके चेहरे पर फैली मुस्कान हंसी में बदलने लगी थी। वह एकटक अपनी मम्मी को देख हंसता रहा। सामने के सड़े दांत

उसके चेहरे को और बदसूरत बना रहे थे। वह अपने को रोक नही सकी। फफक-फफक कर रोने लगी...नही, यह उसका प्रकाश नही है।

प्रकाश दूसरा बेटा था। पहला प्रथम वर्ष इंजीनियरिग में थे। कितना कुछ नही सहा था इस प्रकाश के लिए। जब से जन्मा तब से तकलीफ ही तकलीफ। जब दोनो पति-पत्नी ने उम्मीद छोड़ दी थी। तब यह प्रकाश पेट में आया था। समय पूरा होने पर उसे प्रसूति गृह की बजाय ऑपरेशन थियेटर का मुंह देखना पड़ा, जहां छोटा ऑपरेशन हुआ था।

एक दिन प्रकाश को जोर से बुखार आया। सूई पर सूई। बर्फ से स्नान। शिरा से चढ़ता पानी। बुखार उतरने का नाम नही ले रहा था।

'वाइरल इंफेक्शन है। घबराने की कोई बात नही। धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा।' डाक्टर ने ढांढस बंधाया। लाल रंग का कागज सामने बढाया। उस पर दस्तखत का मतलब मरीज के बचने की कोई उम्मीद नही। उसकी मम्मी ने मुंह पर साड़ी का पल्ला रख लिया था। वह जानती थी। रोने की आवाज होती तो उसे वार्ड से बाहर कर दिया जाता। सघन नियंत्रण कक्ष का एक-एक दिन, एक-एक वर्ष लगता। जिसे देखो, उसका अपना दुःख। अपनी अलग-अलग मनहूस कहानियां। सीधी मुंह बाते न करने वाली छैल-छबीली नर्सें। बेफिक्र घूमते फैशनदार कपड़ों में स्वस्थ डाक्टर। दर्द से चीखते-चिल्लाते, भगवान भरोसे भर्ती मरीज। फेनाइल, डेटाल, ब्लिचिग पाउडर, स्पिरिट और दवाओं की नथूनों को फाड़ देने वाली असह्य गंध। बुखार उतर आया था। प्रकाश का दाहिना हाथ और पांव शिथिल हो गया था।

'सिरेब्रल फालिज था। कितना सुधरेगा, नही कहा जा सकता। अभी कुछ नही करना है। मालिस मत करना, एक महीने बाद फिजियोथिरेपी मे भेज देंगे।' डाक्टर ने कहा तो आधी बातें समझ आयी, आधी ऊपर ही ऊपर पार हो गयी।

रोज रिक्शे पर दो वर्षीय प्रकाश को अस्पताल ले जाती। कसरत-लाल रोशनी से सेंक, एक महीने तक यह क्रम चला। फिर घर पर करने की हिदायत मिली।

उस दिन प्रकाश बाहर खेल रहा था। वह भीतर सिलाई कर रही थी। पड़ोस का बबलू दौड़ता हुआ आया। 'आंटी...आंटी प्रकाश गिर गया है। उठ नही रहा...दांत बैठा लिया है।' सुनते ही बेतहाशा दौड़ी। झट उसे उठा कमरे मे ले आयी। मुंह से निकलता झाग पोंछा। पंखे के सामने रख चेहरे पर पानी का छिटा मारा। ललाट पर अमृतांजन। बबलू की मम्मी के जोर देने पर नाक दबाया। थोड़ी देर बाद उसे होश आया। अस्पताल जाना चाहा तो पड़ोसियों ने मना कर दिया, 'क्या जाओगी अस्पताल? गरमी के दिन हैं। देख रही हो धूप कितनी कड़ी होती है। घर से मत निकलने दो। तुम भी प्रकाश की मम्मी...'

प्रकाश छः साल का था जब पहली कक्षा में नामांकन हुआ। पहले दिन खुद ले गयी थी स्कूल। कितने सारे अरमान खिल उठे थे भीतर ही भीतर। उसके लिए मीठा दही

जमाया था। स्कूल जाने के पहले माथे पर दही का टीका लगाया। सरस्वती की तस्वीर के सामने माथा टेकवाया। नन्हा-सा बच्चा, पता नही क्या मांगा था। लेकिन प्रकाश की मम्मी ने मांगा था। ढेर सारा ज्ञान। ढेर सारा सुख। बेटे के डाक्टर होने का सुख, जो उसकी तकलीफों को दूर करेगा। बड़ा बेटा इंजीनियर। छोटा डाक्टर। खुद उस पर मेहनत करती। प्रतिदिन चार घंटे उसे पढाती। पाठ याद कराती। दूसरे दिन वह सब भूल जाता। उसके पापा ड्यूटी से आने के बाद इतने थके होते कि उनसे कुछ कहते नहीं बनता। बड़े को कॉलेज से फुर्सत नही थी। जहां तक बन पड़ता, पूरा समय देती। लेकिन पता नही क्यों, रह-रहकर एक संदेह उसके भीतर चुभ जाता। छमाही परीक्षा का परिणाम आया तो वह हताश हो गयी। अलग से परिचित प्रधानाध्यापक का सुझाव था—सुस्त है। किसी चीज में दिलचस्पी नही लेता। घर पर ठीक से गाइड करे। सभी विषयों में बहुत कमजोर है।

प्रकाश की हरकतों से वह तंग आ चुकी थी। स्कूल से आता तो कभी कॉपी फड़वा लाता, कभी किताब। कभी कलम गायब, कभी पैंसिल। किसी ने शर्ट पर स्याही छिड़क दी, तो किसी ने बक्सा टेढ़ा-मेढ़ा कर दिया। कोई नाश्ता गोल कर जाता, तो कभी टिफिन-बाक्स की चोरी हो जाती। वह खीझ उठती। उस दिन गुस्से में खूब पीटा। उसके मासूम गालो पर उंगलियो के नीले दाग उभर आये। उस रात प्रकाश रह-रहकर चिहुंक उठता। पलंग पर उठकर बैठ जाता। रोने लगता, 'मम्मी...मम्मी... मैं पढूंगा। मुझे पढ़ाओ। मुझे...।'

'अभी नही बेटे। कल सुबह हम पढ़ेंगे...हां।' उसके हाथों से किताब लेकर बालों मे उंगलियां फेरते हुए वह दुलारती।

जब-जब चिहुंकता, उसका बदन थरथराने लगता। शायद डरावने सपने आ रहे हो। पीटा भी कम नही... प्रकाश की मम्मी ने सोचा।

वह गर्मियो की तीखी दोपहर थी। स्कूल बद था। खाकर चुपके से वह पड़ोस में निकल गया था। दो बजे आया। लू के थपेड़ों से उसका चेहरा लाल हो आया था। जाने क्या बुदबुदा रहा था। उसकी मम्मी को बेहद गुस्सा आया। मन हुआ जड़ दे एक चांटा। कुछ सोच, रुक गयी।

'क्या बात है बेटा ?' उसने संयत स्वर में पूछा।

प्रकाश ने कोई जवाब नही दिया। दीवार की तरफ देखते हुए बुदबुदाता रहा। उसने चप्पल भी नही खोला था। बायां हाथ घुमाते हुए थोड़े-थोड़े अंतराल पर वह चिल्लाने लगता, "पकड़ो...पकड़ो... गोली चल गया ... गोली चल गया। मारने आ रहा, मारने...।'

बोकारो इस्पात संयंत्र के मुख्य अस्पताल में वह एक महीना भरती रहा कोई फायदा नहीं हुआ। हमदर्द उसके पापा को सुझाव देते कि वे बंगलौर चले जायें।

'ये अस्पताल नहीं बूचड़खाना है—बूचड़खाना। कोई फिक्र नही रहती डाक्टरों को, मरीज मरे या जिदा रहे। वे आते, हाजिरी बजाते, समय हुआ, चलते बने। यह भी नही कि नही समझ आया तो रिफर कर दें। सो नहीं, मरीज मर जाये, लेकिन भेजेंगे नही। पता नही खर्च इनकी जेब से होती है या इनके बाप देते हैं।' भद्दी गालियों के साथ खत्म होती बातें।

कोई सुधार नहीं था। वह पहले की तरह बकता। कपड़े फाड़ लेता। चिल्लाने लगता, कभी रोता, कभी हंसता, हालत यह थी कि उसे अपना ख्याल नही रहता।

बंगलौर। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेटल हेल्थ एण्ड न्यूरो साइंसेज। शिशु मनोचिकित्सा का बाह्य रोगी विभाग। एक से एक बच्चे। एक से एक मरीज। बच्चों की उस चीख-चिल्लाहट के बीच अपनी मम्मी के साथ प्रकाश बरामदे मे बैठा था। वही लगी टी.वी. पर क्षेत्रीय भाषा का एक कैसेट चल रहा था। भाषा नही समझ पायी थी प्रकाश की मम्मी। जो दिखाया जा रहा था उसका तुक यही समझ आया कि मानसिक बीमारियां ईश्वरीय नहीं है। इस अस्पताल में इनका इलाज संभव है। बगल मे एक बड़ी प्यारी-सी बच्ची थी। जब उसे छोड़ दिया जाता, बैले नृत्य की मुद्रा मे अपनी भुजाएं फैलाकर वह नाचने लगती, यही उसकी तकलीफ थी। इसी से परेशान थे उसके मां-बाप। कोई चल रहा है तो चलता ही जा रहा है, जब तक कि सामने दीवार नही आ जाती। प्रकाश पाल्थी मारकर टी.वी. पर नजर गड़ाये प्लास्टिक की कुरसी पर बैठा था। बकना जारी था। भागने की कोशिश नही कर रहा था। उसी के चलते घर में टी.वी. आया था। नही था तो दूसरो के घर चला जाता। कुछ लोग ऊब कर भगा देते। कुछ गेट पर से ही दुत्कार देते। जब तक टी.वी. चलता, बैठा रहता। इस हालत मे भी टी.वी. पर नजर गड़ाये देखकर जाने क्या-क्या सोचती रही उसकी मम्मी।

छिटपुट औपचारिकताओं के बाद पहले प्रकाश को बुलाया गया। अकेले। पता नही क्या-क्या पूछा गया और उसने क्या जवाब दिया। फिर उसके मम्मी-पापा को। डाक्टर ने दोनो की तरफ मुखातिब होते हुए सवाल दागा, 'क्या तकलीफ है बच्चे को?'

'हमेशा बुदबुदाता है। जैसे किस से बतिया रहा हो। बेचैन रहता है। सोता नही... भागने की कोशिश करता है...।' वही पुराना जवाब प्रकाश के पापा ने दुहराया।

'जन्म के समय कोई तकलीफ हुई थी? कहॉ पैदा हुआ था? घर मे या अस्पताल में? सामान्य ढंग से या ऑपरेशन से, बड़े बेटे में और इसमें कितने का अंतर है? जब वह पैदा हुआ, आपकी पत्नी कितने साल की थी? सिर में कभी चोट लगी थी? कितने महीने पर चलना शुरू किया? कब बैठा? बोलना कब शुरू किया? कभी बेहोश हुआ था?... कितने घंटे सोता है?' डाक्टर ने पूछना शुरू किया तो सवालों की झड़ी लग गयी। जन्म से लेकर अब तक का इतिहास ही पूछ डाला था उसने। इतनी स्थिरता से क्यो नही देखा जाता बोकारो अस्पताल में?

वह मनहूस दिन उसे आज भी हू-ब-हू याद है। प्रकाश अपने बड़े भाई के साथ बंगलौर से लौटने वाला था। वह दोनों का बेचैनी से इंतजार कर रही थी। मन में आया। कुछ पकवान बना ले। कितु रुक गयी। गाड़ी का क्या भरोसा? कभी-कभी तो दस-बारह घंटे लेट रहती है। बाजार से आम लाकर फ्रीज में रख दिया था। आम देखते ही प्रकाश खिलखिला उठेगा। दस दिन पहले बगलोर से चिट्ठी आयी थी। प्रकाश का बड़ा भाई पवन ने लिखा था—स्थिति में सुधार है। दवा चलती रहेगी। अब अस्पताल में रहने की जरूरत नही है। तीन माह पर जांच के लिए आना होगा।

प्रकाश की मम्मी के भीतर बहुत हलचल थी। बेटे को देखने की तीव्र ललक। ठीक होने पर कैसा लगता है प्रकाश? उसे सारा कुछ याद होगा, जो उसने दिमाग खराब होने पर किया? पूछेगी... जरूर पूछेगी। पता नही ठीक से खाते भी होंगे या नही? यहां तो दोनों के नखड़े कम नही थे? कमजोर जरूर हो गया होगा। कड़ी दवा चले और ठीक खाना न मिले तो क्या होगा? डाक्टर ने परहेज तो नही बताया होगा... आज प्रकाश के पापा को ड्यूटी नही जाना चाहिए था। साथ मिलकर इंतजार करते। दो खूबसूरत बेटे जैसे जो चमकती आंखें।

तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। खोला तो सामने डाकिया था। हस्ताक्षर कर तार ले लिया। मद्रास सेंट्रल मे प्रकाश के खोने की खबर थी। शीघ्र आने के लिए लिखा था। पढते ही वह हतप्रभ रह गयी। समझ नही आया—क्या करे क्या नही। जाने कब तक खडी रही। बगलवाली आयी, तब ध्यान भंग हुआ। फोन से उसके पापा को खबर दी गयी।

लगातार खोजबीन के बावजूद प्रकाश का कुछ पता नही चला। थाना में रपट। अखबार-दूरदर्शन में विज्ञापन। लाउडस्पीकर से जीप पर प्रचार। पर्चा वितरण। रिक्शा पड़ाव, बस पड़ाव, टेम्पू पड़ाव, सब्जी मार्केट, फूल बाजार, सभी प्लेटफार्मो के दिन में कई-कई बार चक्कर। आती-जाती ठहरती ट्रेनो में दौड़ती-खोजती नजरें। धमनियों की तरह दूर-दूर तक फैली मद्रास की हलचल भरी सड़कों पर- गली-कूचों में। कहां-कहां नही खोजा गया प्रकाश को। उससे भी संतोष नही हुआ तो पता नहीं एक दिन प्रकाश के पापा को क्या सूझा, चले गये मद्रास मेडिकल कॉलेज के शवगृह में। शायद दुर्घटना ग्रस्त हो यही कही मासूम प्रकाश बेदिल दुनिया से बेखबर हमेशा के लिए सो गया हो। ताकि उसे कोई तंग-तबाह नहीं कर सके।

दिन-रात खोजने में व्यस्त उसके पापा को तकलीफ तब महसूस होती, जब शहर से बाहर निकलते। भाषा कश्मीर समस्या की तरह मुंह बाये बेशर्म-सी खड़ी हो जाती। अजीब लगता, जब सामने वाला हिन्दी अंग्रेजी समझने में असमर्थ हो और वे तमिल। जलते पेट्रोल की गंध भरी सडकों पर चलते हुए सामने नौ-दस बरस का लड़का दिखता

तो उसे वे प्रकाश समझ लेते। तब तक पीछा करते, जब तक चेहरा देख नही लेते।

"...बंगलोर से रात में चले। सुबह चार बजे मद्रास सेंट्रल उतरे। वहां से मद्रास-बोकारो पकड़नी थी। पवन दाहिने हाथ में अटैची लिए बायें से प्रकाश को पकड़े गेट की तरफ बढ़ रहा था। भीड़ ने पीछे से धक्का दिया। हाथ छूट गया। पवन आगे निकल गया। मुड़कर देखा तो प्रकाश नही था। कुछ देर इंतजार किया। टोह नही लगी तो लगेज काउन्टर पर जमा कराकर एनाउन्समेंट कराया। सब पांच-दस मिनट के अंदर घट गया। कही बच्चा चुराने वाले गिरोह ने तो ऐसा नही किया... प्रकाश दवा खाये था। अधिक चलना-फिरना पार नही लगता था।' दूर के रिश्ते मे लगती बुआ को प्रकाश की मम्मी सारा किस्सा सुना रही थी।

'खो कैसे जायेगा? पवन जान-बूझकर ऐसा किया होगा। सब संपत्ति हड़पने की चाल है। तुम ठहरी सीधी-सादी, आजकल के लड़के बहुत चालू...।' बुआ ने कहा।

'तुम जो कहो बुआ। पवन वैसा नही है। वह तो खुद कितने दिनो तक खा नही पाया था। अपने पापा की तरह सूख कर कांटा हो गया था। कैसे मान लूं?'

'भले न मानो। लेकिन एक बात कहूंगी, अगर बुरा न मानो।' बुआ थोड़ी देर चुप रही। फिर आहिस्ता कहा, 'उस पागल के पीछे बहुत ज्यादा पैसा और वक्त बर्बाद करने से क्या फायदा?'

'तुम्हारा बेटा खोता, तब मरम बुझाता।' मन में आया कह दे। जाने क्या सोच खून का घूंट पीकर रह गयी।

दो महीने अथक प्रयास के बावजूद कोई नतीजा सामने नही आया। छुट्टी खत्म हो गयी थी। जल्दी आने के लिए कारखाने से दो-दो पत्र आ चुके थे। उन दिनो कितने थके-थके लगते थे प्रकाश के पापा। टूटे-टूटे से। जीने का अर्थ जैसे चूक गया हो। चिता से संवलाया चेहरा। आदमियों के उस अनन्त महासागर में प्रकाश का कहीं पता नही चला। लौट आये थे वे। मात खाये योद्धा की तरह थके-हाल चूर-चूर अपने घर।

नहीं, पूरी तरह नही टूटे थे वे। तीन महीने बाद जनवरी का महीना आया। नया साल। नयी छुट्टियां। फिर वही सिलसिला। बोकारो से मद्रास। मद्रास से बोकारो। वही चिरपरिचित मकान। जहां पहले ठहरते थे, फिर ठहरते। वही साफ-सुथरी दुर्गंध भरी सड़कें। ऊंची-ऊंची इमारतें। वेश्या-सी सजी-धजी लुभाती दुकानें। भरा बाजार। बाल सुधार गृह। सागर का किनारा मछुआरों की बस्तियां। यात्रियों से खचाखच भरा वही स्टेशन। वही प्लेटफार्म। उससे भी जी नही भरता तो कभी तिरुवनन्तपुरम्, कभी रामेश्वरम्, कभी कन्याकुमारी निकल जाते। मद्रास सेंट्रल मे ठहरने की सही व्यवस्था के बावजूद अक्सर रात प्लेटफार्म पर बीताते। सोने से पहले प्लेटफार्म पर, जहां-जहां टी.वी. लगा था, लगभग सभी जगह की परिक्रमा करते...शायद गुमसुम, उदास प्रकाश कही टी.वी. देख रहा हो।

घने पेड़ की छांव में खड़े प्रकाश के पापा तय नही कर पा रहे थे। कहां जाएं कहां नही। दस बजे थे। कड़ी धूप। स्टेशन के पास लड़कों का एक झुण्ड कोलाहल मचाये था। कुछ लड़के मिलकर एक पागल लड़के को तंग कर रहे थे। उसे चिढ़ा रहे थे। पत्थर मार रहे थे। एक कमर के नीचे खिसक आयी, उसका पैट खीच रहा था। कोई उसकी पोटली खीचता, तो कोई कुछ। वह रोता-चिल्लाता। कभी उन सब पर थूकता। कभी भद्दी हरकतें करता। कभी पत्थर उठाता... अपना बचाव करता, दौड़ता-हांफता उनके पास आया। इशारे से बताया कि लड़के उसे तंग कर रहे है। उनकी आंखे नम हो आयी। प्रकाश को भी इसी तरह तंग करते होंगे लड़के।... जाने कहां होगा? उन्होने लड़को को डपट दिया और आगे बढ गये।

वह पैदल ही निकले थे। तभी उनकी नजर उसी पागल लड़के पर पड़ी जो उस दिन स्टेशन के पास मिला था। कूड़े के ढेर पर बैठा केले-पत्ते मे लगा दही-भात तेजी से चाट रहा था। इधर-उधर देखती गड्ढे मे धंसी उसकी दहशत भरी आंखें। कोई आकर डपट न दे। तभी कुत्तों का एक झुण्ड टूट पड़ा उस ढेर पर। डर से वह भाग खडा हुआ। उन्होने आवाज दी। हाथ के इशारे से बुलाया। उसने उनकी तरफ ध्यान से देखा। पहले मुस्कराया। फिर हंसा और ठेंगा दिखा कर जोर से भागा। उन्हे गुस्सा नही आया। एक अजीब-सा स्नेह उमड़ आया। पागलपन का दौरा आने पर प्रकाश भी ठेगा दिखाता था। उनकी इच्छा थी। उसे फूटपाथ पर भरपेट खिला देते।

'ममा' एक बार उन्होने नाम पूछा तो उसने जवाब दिया था।

'तुम्हारा घर कहां है?' उन्होने दूसरा सवाल किया।

'ममा!'

उन्होने डपटा और सवाल दुहराया। उनकी दोनो बांहें पकड़कर उसने अपनी तरफ खीचा। वे घबरा गये। कही ऊल-जलूल हरकत न कर बैठे। वह अपना मुह उनके कान के पास ले आया। वे कुछ स्थिर हुए। शायद कोई गोपनीय बात कहना चाहता है। उसके मुंह से आती दुर्गध से उन्हें मितली-सी आने लगी। तभी उसने जोर से कहा और कुछ क्षण उसी लय में कहता रहा, 'ममा...ममा...ममा।'

उसकी इस हरकत पर गुस्सा भी आया और स्नेह भी। हर सवालों का उसके पास एक ही जवाब था, 'ममा!'

प्रकाश के पापा बस में चढ़ रहे थे। तभी किसी ने हाथ पकड़कर खीचा। गिरते-गिरते बचे। बड़ा गुस्सा आया। मुड़कर देखा तो वही पागल लड़का। गुस्सा हवा हो गयी। आज वह बहुत खुश लग रहा था। उनका हाथ पकड़कर फलो की दुकान पर ले गया। आम की तरफ उंगली बढ़ा दी। सिहर उठे थे वे उस दिन, गौर से देखते रह गये थे उसे।... *क्यो यह लड़का बार-बार मेरे पास आता है। बेधड़क हाथ पकड़ लेता है। अपनी इच्छा व्यक्त करता है। फरियाद करता है। और भी तो लड़के हैं क्यो नही आता कोई पास?*

जब वह पास होता है, अपनापन का एहसास क्यों गहराने लगता ? इसे लेकर इतनी बेचैनी क्यों हो जाती है ?... कहीं यह प्रकाश तो नही ?

सुबह रिक्शा पड़ाव के पास, मैली-कुचली पोटली सिर के नीचे रख, वह बेखबर जमीन पर सोया था। उसकी बांहों को उन्होंने बारीकी से देखा। उस पर कोई निशान नही था। वे आश्वस्त हुए। प्रकाश की बांयी जांघ पर टीके का निशान था। तभी वह हड़बड़ा कर उठा। भागने को हुआ। उन्होंने कसकर उसे पकड़ लिया। छूटने की कोशिश करते हुए वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसका तेवर काफी आक्रामक हो चुका था। दुबला-पतला देखने में लगता था। भीतर से इतना कमजोर नही लगा। रिक्शेवाले, खोमचे वाले तथा अगल-बगल के अन्य लोग जमा हो गये।

'क्यों तंग कर रहे हो, इस पागल और लावारिश लडके को ?' पूछने वालों की आंखों से नाराजगी झांक रही थी। प्रकाश के पापा तमिल नही समझ पाये थे। चेहरा पढ लिया था। उन्होंने समझाना चाहा, 'यह मेरे खोये लड़के से मिलता-जुलता है। शक है, कही वही न हो। निशान मिलाना चाहता हूं।'

किसी के पल्ले नही पड़ी उनकी बात। उन्होंने पॉलिथिन में रखा स्थानीय तमिल अखबार में तस्वीर सहित प्रकाशित विज्ञापन दिखाया। लोगो को तसल्ली हुई। कुछ खिसक गये। कुछ का रुख सहयोगात्मक हो आया था। जितने चिन्ह याद थे, सब मिलाया। उन्हें हैरत हुई। शायद ही कोई न मिला हो। दीवार पर टंगी प्रकाश की दो साल पहले की रंगीन तस्वीर वह अपलक देख रही थी। गाल पर बह आये आंसू पूरी तरह सूख नही पाये थे। तभी प्रकाश के पापा ने टोका। वह जैसे इसी इंतजार में थी। बरस पड़ी, 'कालोनी के लोग झूठे हो जायेगे ? रिश्तेदारों की आंखें धोखा खा जायेंगी। यह गूंगा मेरा प्रकाश नही है। ऐसा नही था मेरा प्रकाश...बेटे को पहचानने मे मां धोखा नही खा सकती !'

'दिव्य दृष्टि मिली है क्या जो धोखा नही खा सकती ?' व्यंग्य करते हुए प्रकाश के पापा ने कहना जारी रखा, 'लोगों की आंखो में अभी भी वही प्रकाश बसा है जो साल भर पहले था। साफ, स्वस्थ, सुंदर प्रकाश। तुमने कभी सोचा है जिसे दाना नही मिले, ठीक से सोना नसीब नहीं हो, जिसकी दवा छूट गयी हो, सड़को पर गलियो मे मारा-मारा फिरे... कितने सारे तंतु नष्ट हो गये होंगे इसके दिमाग के... वह जिदा है, यही क्या कम है... धीरे-धीरे इसके कंठ खुलेंगे। रंग बदलेगा... ।'

प्रकाश की मम्मी फिर कुछ कह नही पायी। और कोई दिन होता तो शायद जवाब देने से नही चूकती। पर आज वह मुखर नही हो सकी। उसने सोचा। अभी इसे आए पांच दिन भी तो नहीं हुए। इतनी जल्दी में कुछ तय कर लेना क्या ठीक होगा। क्यों न वह नये सिरे से उन निशानों की तलाश शुरू करे जो प्रकाश में मौजूद थे। □

नरेंद्र मोहन

हिंदी कविता के चर्चित कवि। लम्बी कविताओ के शोधपूर्ण तथा विश्लेषणात्मक चिंतन। पंचाब सरकार तथा हिंदी अकादमी से सम्मानित।

लड़की एक

एक नदी है लड़की
बहती अबाध
इतराती इठलाती हिलोरें लेती
रफ्तार में एक खुशबू
खुशबू में थिरकती एक रफ्तार
लड़की एक नदी है खुशबू की

किनारों में बन्द
किनारों को तोड़ने का सपना लेती
बदहवास गिरती कभी
चौड़ा करती जिन्दगी के पाट
प्रेम के चक्रवर्ती घोड़े पर सवार
नापती पूरा आकाश

सर पटकती कभी
जिन्दगी के स्याह हाशियों पर।

लड़की दो

उमड़ती हुई नदी
और झूमती हुई स्वर-लहरी के बीच
अपनी लय पाना चाहती है
लड़की
उस का मन बुझा है
और तन लहरा रहा है
एक लपट सी उठती है उस के भीतर
और कांपने लगता है उस का अंग-अंग

वह जानती है
कल उससे विदा हो जाना है
कभी तन्मय क्षणों के सिलसिले में खो जाती है
कभी काले बिन्दुओं के कोलाज में खो जाती है

वह देखती है
एक खुला दरवाजा बन्द होता पीठ पीछे
एक दरवाजा सामने खुलता न खुलता

चौमुखे दिये के करीब बैठी
गुड़ी-मुड़ी लड़की के पैरों में
गति आ गयी है
वह थिरकने लगती है
नाचने लगी है नाच
जो नाच है भी और नही भी।

लड़की तीन

लड़की डरी हुई है
लड़की सहमी हुई है
एक तेंदुआ उस के पीछे पड़ा है

उगलता अंधी सुहसार हँसी

बदहवास है लड़क़ी
बदसूरत हॅसी के व्यूह में फंसी
बेहाल है लड़की
भागती हुई मरुस्थल में
प्यासी

देखती है फटी ऑखों चारों तरफ
उसे कुछ नही दीखता, कुछ नही सूझता
सूखे होठों से फुसफुसा रही है 'पानी-पानी'।
मैं क्या करूॅ
कुएॅ में झांक कर देखता हूॅ
एक गोलाकार खालीपन
एक चक्राकार सूनापन
दीवारें काली है
पानी काला है
काली हैं दिशाएॅ
तेंदुआ चबा रहा है अपने जबड़ो मे
देश और काल

मेरी ऑखों में पत्थर है या दहशत
मुझे नही मालूम
कोई छील रहा है मेरे तलवे
और मै कांप रहा हूॅ
लड़की कांप रही है
तेंदुआ उस के पीछे पड़ा है
और उगल रहा है
अंधी खूंखार हॅसी। □

विष्णु सक्सेना

दस से अधिक कविता संकलन तथा विभिन्न पत्रिकाओ में लेख कहानियां आदि प्रकाशित। 'कलादीप' तथा 'स्वैसो कम्यूनिक' का संपादन। अनेक सम्मानों से सम्मनित।

समझौता

चलो हम
इस 'गई' उम्र मे
एक समझौता करें,
तुम-मेरा प्रश्न-पत्र
हल कर दो
मै-तुम्हारा।

तारों जितनी सांसें
सांझी होने के बाद भी
कई प्रश्नों के उत्तर
मैं-आज तक नही खोज पाया,
शायद तुम भी
यही सोचती होगी।

चलो हम
इस भूल-भुलैया से बाहर निकल

वही करें,
जैसा अमृत मंथन के बाद
देवताओं ने किया था।

चलो हम
आदमी बने रहने के लिए
क्षण दो क्षण ही सही
देवता बन जाए।
इस 'बहती' उम्र में
एक समझौता करे,
तुम-मेरा प्रश्न-पत्र
हल कर दो
मै-तुम्हारा।
पर शायद
हम ऐसा नहीं कर पाएंगे,
अपने अपने 'अहम्' से बंधे
अपने अपने 'अहम्' में
घुट कर मर जाएंगे।

चलो हम
इस 'टूटती' उम्र मे
एक प्रयास और करें,
एक समझौता करें
तुम-मेरा प्रश्न-पत्र
हल कर दो
मैं-तुम्हारा। □

राजेन्द्र उपाध्याय

कविता हो या व्यंग्य, राजेन्द्र उपाध्याय का स्वर प्रखरता से अपनी बात कहता है। शीघ्र ही एक व्यंग्य प्रकाश्य।

गंगा केवल एक नदी का नाम नहीं

मैं जब-जब इसके घाटो पर खड़ा होता हूँ
मुझे मां की आंखों की याद आती है

मेरे लिए यह सिर्फ एक नदी नही
मां है
मेरे थके तलुए सहलाती हुई
और मेरी फटी बिवाई मे मोम भरती हुई

मां इसका पानी
अपने घर में अमृत की तरह संजोकर रखती है
और पीढ़ियों तक सीचती है इससे
अपने घर की जड़ो को

मां को इस नदी के घाटों पर स्वर्ग दिखता है
उसकी अंतिम ख्वाहिश
इसके घाटों पर मरना है
मगर मैं उसे कैसे बताऊँ कि

यह उसके स्वप्नों की गंगा नहीं,
कि अब इसके घाटों पर कोई चिड़िया भी पर नहीं मारती
कि अब इसका पानी जहर होता जा रहा है ......

हम अपने अमृत को ज़हर मे बदल रहे है
अब हमारे लिए यह जीवनदायिनी,
काल प्रवाहिनी, कर्मनाशा नही
मां नही
सिर्फ कूड़ा बहाने वाली गंदी नदी है

यह कौन मेरी गंगा में ज़हर घोल रहा है
यहं कौन मेरे ताजमहल को धुएँ मे बदल रहा है
और मेरे पेड़ को उसकी जड़ो से उखाड़ रहा है ?

मैं अपनी गंगा की गंदगी से
और अपने ताजमहल को
जानलेवा धुंए से बचाना चाहता हूँ
मै
अपने पेड़ को
लम्बी उम्र देना चाहता हूँ .... ।

□

उपेन्द्र कुमार

कविता और संगीत मे समान गति । जीवन्त भावनाओ के कवि ।
कविता संग्रह 'चुप नही है समय' से विशेष चर्चित ।

वापसी का मार्ग

कितना भी चलें
क्या हम लौट पाते हैं
जहां से चले थे

कोई भी
परिक्रमा या परिभ्रमण
पहुंचाता नही वहां
है जहां एक नदी
और उसमें डूबते निकलते खेत
ऊंचे-ऊंचे कगार
ढहते हुए नदी में
कोस कोस तक फैली रेत ....
तपते हुए तलुवे
पहुंचा नही पाते
स्रोत तक

बार-बार
वापस लौट पाते हैं हम

केवल उन पड़ावों तक
जहॉ ठण्डी हो चुकी होती है
आग
उठ चुका होता हे डेरा

वापस के मार्ग
भटक जाते है जंगलो मे
डूब जाते है गुफा कन्दराओ मे

शायद
किसी भी तीर्थ तक
पहुंच सकते हैं केवल जन्मांध

□

संगीता गुप्ता

जितनी अच्छी कवयित्री उतनी ही बेहतर चित्रकार। कला और साहित्य में समान गति। अबतक तीन एकल प्रदर्शनियां आयोजित हो चुकी हैं। दूसरा काव्य संकलन 'इसपार उसपार' आलोचकों द्वारा प्रशंसित।

ओ गिद्ध

लम्बी बीमारी के बाद
दफ्तर आयी हूँ
आठवी मंजिल से
कलकत्ता
भव्य, भला दिखता है

फाइलो पर
देर तक झुकी
थकी दृष्टि उठाती हूँ
न जाने कहाँ से
कब से
एक गिद्ध
खिड़की पर बैठा है
मुझ से
आँखे चार होते ही
जोर से चीखता है

हतप्रभ, अवाक्
सोचती हूँ
अब और क्या होना
शेष रह गया है ?
मन भय से
सिहर उठता है
टेबल पर रखा
पानी का गिलास उठा
पी जाती हूँ
हाथ कांप रहे हैं
कमज़ोरी से
या अनिष्ट की आशंका से
कौन जाने

श्मशान में भी
ठौर नही
यहाँ आ पहुँचा यहाँ

बेसहारा
पर औरों का
सम्बल हूँ
गिद्ध को भी
शायद
सहारे की तलाश है
अकेले हो
आओ
साथ हो लो
गिद्ध ।

□

सुरेश धींगड़ा

कविता के साथ-साथ कहानी और विदेशी रचनाओं के अनुवाद मे विशेष सक्रिय। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में अनेक अनुवाद प्रकाशित।

यात्राकालीन है समुद्र

समुद्र अशान्त है
यात्राकालीन
कही नही जाता समुद्र
गन्तव्य है समुद्र
अपना आप

समुद्र गतिमान है
शताब्दियों से
अनादि अनन्त है समुद्र
केन्द्र है समुद्र
अपना आप

सिर्फ हम चलते हैं
उसकी छाती चीर
एक भूमि से दूसरी तक
यात्राओं के भुलावे में
हम कही जाते है ?

□

सुरेश ऋतुपर्ण

कवि, चित्रकार तथा फोटोग्राफर। 'अकेली गौरैया देख' कविता संकलन से विशेष चर्चित। हिंदी के विकास के लिए देश-विदेश की यात्राएं।

बहुत दिनों बाद

बहुत दिनों बाद
भर आई ऑख
पंख फड़फड़ाए
उड़ा पाखी-मन
टहनी हवा में थरथराई।

बहुत दिनो बाद
आई याद पराई !

मन्दिर की देहरी पर
आज फिर ठिठके पॉव
आज फिर ठिठके पॉव
हवाओं में घुल गया
घंटियों का आर्त्तनाद
पूजा की थाली में
फिर बुझने को
दीपक की लौ कंपकपाई।

बहुत दिनों बाद
आई याद पराई ।

आई याद कदम्ब की छाँव
अनथक थिरकते वे पांव
कहीं दूर दिखा पीत-पट
करील की झाड़ों मे अटका मोर मुकुट
आई याद बॉसुरी की टेर
भीगी रेत पर बिछी
शाम की ललाई ।
बहुत दिनों बाद
आई याद पराई ।

याद आया कुंजवन
सहसा उभरा
पागल स्मृतियों का जल प्लावन
मथुरा की माया
लील गयी
मेरा मन वृन्दावन
भोलेपन की अक्षत-निधि
खा गयी
सत्ता की चतुराई ।

बहुत दिनों बाद
आई याद पराई । □

शशि सहगल

कविता, कहानी, आलोचना और संपादन के क्षेत्र में सुपरिचित नाम। कविताओं में घर और परिवार की गंध। सद्यः प्रकाशित काव्य संग्रह 'टुकडा-टुकड़ा वक्त' विशेष चर्चित।

मूल्यांकन

कक्षा में, विद्यार्थियों को
मेंढकों और चूहों का/डाइसेक्शन करते देखती हूं
पास पड़े कागज़ पर
शीघ्रता से लेते नोट्स
नियत खानों में भरते
उनके दिल की धड़कन की गति
हृदय का साईज़
और भी, बहुत सारे तथ्य

देखते देखते दृश्य बदलता है
और मैं
चूहे के स्थान पर ट्रे में
खुद को जकड़ा देखती हूँ
विचार मग्न विद्यार्थी
झुका है मेरे ऊपर
उसे डाइसेक्शन करना है

मेरे दिल और दिमाग का
चीर-फाड़ करती है मेरी सोच की
और बताना है
मैं कितने प्रतिशत सही औरत हूँ ?

ट्रे में चिपकी मैं
तृतीय पूरुष सी
कर रही हूँ प्रतीक्षा
अपने ही डाइसेक्शन के परिणाम की ।
जब से होश संभाला है
अपने पास की दुनिया को जाना है
खुद को उतना ही उलझा पाया है
कैसे करेगा यह विद्यार्थी
मेरे विचारो की परख ?

मन की परतों को
तह दर तह खोलना होगा इसे
तभी तो तल तक पहुँच पायेगा
चाहती हूँ
मुझे बताये वह
कि मैं कितने प्रतिशत
पत्नी, माँ और बेटी हूँ । □

कुमार रवींद्र

युवा पीढी के चर्चित कवि। जीवन की गहरी संवेदनाओं को कविता मे उतारते हैं।

टापू पर गुफा में

बाद-आधी रात
झील का तट
चांदनी लेटी हुई चुपचाप

किसी पंछी ने
तभी आवाज दी
अपने युगल को
और आदिम वासना
फिर छू गई
सुनसान जल को
झील इच्छा से रही है कांप

एक है सदियों-पुरानी शिला
सांस वह भी
ले रही है
कह रही है
पीढ़ियों की बात

याचना अब भी वही है
नई लहरें तट रही हैं नाप

दूर टापू पर गुफा में
चौंक कर फिर
हुई आहट एक
गूंज पिछले गीत की
जागी
हवाएं दे रही हैं टेक

याद भी तो भर रही आलाप

नदी को मत रोकिए

नदी को मत रोकिए
इसे बहने दीजिए खुल कर कगारों तक

यह नदी सदियों पुरानी
यह नदी है
संस्कारों की
इस नदी में डूब कर देखें
यही बस्ती
चांद-तारों की
आ रही है आहटें इसकी
दूर तक फैले कछारो तक

यह नही है सदानीरा
इस नदी का जल सलोना है
और बिछता रेत पर इसके
कभी माणिक
कभी सोना है

देखिए, इसने बिखेरी है
धूप फैली घर-दुआरों तक

यह नदी है भोर का सपना
यह नदी है
बांसुरी की धुन
पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों से यह
नेह की चादर
रही है बुन

और सुनिए, कह रही हैं क्या
आ रही लहरें किनारो तक

□

किशोर सिन्हा

कविता संग्रह, 'दलान में नीद' प्रकाशित, दूसरा कविता संग्रह शीघ्र प्रकाश्य। विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ में कविताएँ, कहानियॉ व अनुवाद प्रकाशित।

नानी

कितना होता दूध
और उष्णता कितनी
सूखी छातियों में भी
नानी की।

मालूम था तब
भरपूर
कि
सपनों में भी
नही आयेंगे
लकड़बघ्घे
पलंग पर नानी के।

कितना आश्वस्त होता तब
मन
सोते भी

थाम आंचल मुट्ठी भर
पल्लू से
नानी की।

बूढ़े

आश्चर्य है,
इतना मज़बूत यौवन
इतनी उन्मुक्त स्वतत्रता
बड़े चाव से जीने के बाद
कितना समयानुकूलन कर लेते
ये बूढे,
और एक कोने मे
पड़े-पड़े
काट देते
प्रतीक्षा मे
मात्र दो बूँद स्नेह की
बस शेष जीवन
चुपचाप।

मधु नौटियाल

इधर की कविता मे उभरता एक नया स्वर। कविता को जीवन का अनुवाद मानती है।

समय

मैं छोटी थी
जब कुछ भी सिखाते थे
कि बहुत अच्छा है
सीख ले

मोहरों की खूबसूरती होती
मेरी आतुरता
पिटने का खेल शुरू होता
इधर घोडा गया
तो उधर हाथी
प्यादों की औकात ही क्या
उन्हें कुछ बनने से
भरसक रोका जाता
मेरा दिल बुझता
और मैं भाग खड़ी होती

बरसो बीत गए
मैं खेल सीख ही नही पाई
खानो का गणित
कुछ-कुछ समझने लगी
कि कोई कुछ क्यों नही बनने देता प्यादो को
कि खेल खत्म नही होता
भाग जाने से।

□

इस देश की संस्कृति सदियों पुरानी है— कपिला वात्स्यायन

मुकेश पचौरी

भारतीय संस्कृति और कला पर स्पष्ट तथा सुलझे विचारको की चर्चा होती है तो कपिला वात्स्यायन का नाम नि:संकोच सामने आता है। भारतीय संस्कृति की शक्ति पर अटूट विश्वास रखने वाली कपिला जी से प्रखर पत्रकार मुकेश पचौरी की बातचीत इस विषय के अनेक पक्षो को उद्‌घाटित करती है।

मुकेश पचौरी : कपिला जी, हमारा देश आज़ादी की पचासवी सालगिरह मना रहा है, हमें बताए इस आधी सदी मे जो सफ़र संस्कृति ने तय किया वह कैसा रहा ?

कपिला वात्स्यायन : इसका उत्तर तो बहुत कठिन है, मैं भी नही दे सकूंगी लेकिन चेष्टा करती हूँ। इसमें हमे बात को दो स्तरों पर देखना होगा। एक तो भारतीयता के प्रति चेतना, और अपनी अस्मिता को जानने के प्रति एक जिज्ञासा। यह क्रम 1947 से पहले आरंभ हो चुका था। बंकिम की बात को छोड दीजिए लेकिन भारतीय साहित्य के लेखको में रवीन्द्रनाथ ठाकुर से लेकर शरत चन्द्र, प्रेमचंद आदि इन सबके पास जिज्ञासा, स्वतन्त्रता और संस्कृति की भावना थी। 1930 मे इसकी पराकाष्ठा थी। उसी समय मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' लिखी गई, दक्षिण मे वल्लथोल का जो हुआ, रुक्मिणी देवी का जो

हुआ और रवीन्द्र नाथ टैगौर, यह सब इसी दशक मे लिख रहे थे। इसलिए 1947 में राजनैतिक आज़ादी आई तो हमे यह नही कहना चाहिए कि उसके साथ एक सस्कृति की स्वतन्त्रता भी आई।

मुकेश : सांस्कृतिक आज़ादी नही मिली।

कपिला : अब अगर 1947 से देखें तो हमें 2-3 स्तरों को देखना होगा। एक तो जो भारतीय लेखक या भारतीय चित्रकार की उपलब्धियाँ क्या रही और हार कहाँ हुई ? दूसरी तरफ हमको यह देखना है कि संस्कृति सिर्फ कला नही है। तो स्वतन्त्रता में हमने जो सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक और प्रशासनिक गठन किया उसका संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा। मैं दूसरे स्तर को पहले लेती हूँ। हमने विकास को एक रेखा के रूप में प्रवृत्ति माना, इसलिए हमने ये सोचा कि जो हमारी ग्रामीण संस्कृति है उनका विकास हम तभी मानते है जबकि विकास की वो शहरी धारा मे हैं। हमने उसे ही मुख्यधारा माना।

मुकेश : यानी तरक्की का पैमाना शहर का हो जाना।

कपिला : हाँ तरक्की का पैमाना शहर और मै मानती हूँ यह बहुत बडी ग़लती हो गई।

मुकेश : हमारे यहाँ क्या सस्कृति और विकास के बीच कोई संतुलन बनाने की कोशिश की गई ?

कपिला : हमारे यहाँ तो सस्कृति को विकास मे बाधा माना गया है। मुझे बार-बार कहा गया कि आपके कल्चर के कारण ग्रामीणों का विकास नही हो पा रहा। इसलिए आप अलग हो जाइए। मै यह कहती हूँ कि वो तीज, त्यौहार अनुष्ठान को रखें, मै कहती हूँ वह जो समूह की चेतना है उसे रखे। मैं कहती हूँ कि उनके जो रंग है, उनका जो नृत्य है, गीत है, पहनावा है वो सब रहे। विकास की धारा ये कहती है कि उनको चौखटे मे बाँध दिया जाए।

मुकेश : मतलब उनको ज़मीन से उखाड़कर उन्हे गमले मे फिट कर दिया जाए।

कपिला : बिल्कुल सही। वो यह कहती है हर एक आदमी चपरासी बन जाए, क्लर्क बन जाए या फिर यूनिवर्सिटी में चला जाए। मै ये कहती हूँ जो फुलकारी करती है, रंगोली करती है, जो बॉदरी बनाती है वह उतनी ही शिक्षित है जितनी कि मैं चाहे मुझे पॉच डिग्रीज़ मिली हुई हों। मै ये मानती हूँ लिखित शब्द है, जो मौखिक शब्द है उसकी एक क्षमता होनी चाहिए। मै ये चाहती हूँ कि जो मुझे यूनिवर्सिटीज़ से मिला है और जो नृत्य के गुरूओ से मिला है, कलाकारो से, चित्रकारें से, मधुबनी से ये सब मेरे लिए धरोहर है और इन सबको स्टेटस देना चाहिए।

मुकेश : चीज़ो को अगर एक दूसरी निगाह से देखे तो इस लंबे सफ़र मे बदला क्या? अगर रंगों के मुहावरे मे बात करें तो तब्दीलियाँ क्या आई हैं? ज़िन्दगी के रग कैसे बदले? विचारो के रंग, पहनावे के रग, इन पचास वर्षो के कैनवास मे कौन से और कैसे-कैसे रंग आए-गए है? या यूँ कहे कि रंग चटख हुए हैं या हल्के और फीके पड़े हैं?

कपिला : रगो की बात की जाए तो दो बाते है। एक उसका दृष्टि का पक्ष होता है, जैसे इंद्रधनुष-अनेक रग होते है, लेकिन उसके पीछे और अततः एक रग होता है। यानी एक यूनीफ़ाइड विज़न होती है। मै समझती हूँ सबसे बडी चुनौती है उस एक रग की ग़ैर मौजूदगी है। कलाए बहुत है, बहुत परिवर्तन और विस्तार हुआ है। कहाँ वो ज़माना था कि हमे मालूम ही नही था कि इस तरह मीज़ोज है मेघालय वाले है, मड़िया मणिपुरी है, ये सब मेरी जानकारी में आया स्वतन्त्रता के बाद। मेरी चेतना बढ़ी, उनकी भी बढी। मधुबनी वाली चित्रकार महिलाए आई, वो तमाम लोग कलाकार जो दूर-दूर बिखरे थे आए। यह सब हुआ लेकिन भीतर के रंग बहुत ज्यादा बदले। क्योकि उन अंदर के रंगों मे भारी परिवर्तन आया जहाँ हमने कला को नित्य जीवन का एक कर्म नही माना, उसको अभिन्न हिस्सा नही माना। हमने उसे अलग से शिल्प के रूप मे (कुछ से खामोशी फिर और रजे के साथ) कला व्यापार हो गई है। हमारे लिए कला परमार्थ की भी बात थी, व्यवहार की भी बात थी। 'फंक्शन आफ सिग्नीफिकेस' की बात जो कुमार स्वामी ने की थी उसमे एक सयोग था, हमने उसमे वियोग लाया।

मुकेश : यह सब कैसे हुआ?

कपिला : जो चीज़ वार्षिक उत्सव की थी, जिसके लिए कोई लेन-देन नही होता था, वह बिरादरी की थी। जो त्यौहार था और जिसमे सब भाग लेते थे, उसे हमने एक प्रदर्शन बना दिया है। और मैने सुना कि कुछ उत्सवो मे जो लोग इस तरह के गए, तो एक संस्मरण याद आता है। जब ऐसे लोग मेरे पास आए तो बोले-दीदी बहुत अच्छा रहा, हमने तो कभी सोचा भी न था कि इससे पैसा भी बन सकता है। अब तो जब हम गाँव मे भी जाएंगे तो पैसा माँगेंगे। तो ये रंग में परिवर्तन आया न।

मुकेश : यह तो जो कला के प्रति रवैया है वह बात थी। विचार के रंग कैसे बदले?

कपिला : विचार के स्तर पर दो तरह की बातें हैं। एक तरफ जो भारतीय चेतना है, जो भारतीयता की एसर्शन करती है दूसरी तरफ - भारतवासी के आत्मविश्वास में कभी कमी नही आई थी, चाहे वह पराजित ही हो, लेकिन आज वह मन से

पराजित हो गया है। क्योंकि वह ये मानता है कि जो पश्चिम ने किया, जो उनके मूल्य हैं उन्ही से निर्वाण हो सकता है, उसी से संसार का मोक्ष हो सकता है। वही सत्य है। जो संस्कृति बहुसत्य देखा करती थी, जो यह मानती थि कि सत्य पाने के अनेक रास्ते हो सकते हैं, जब वह संस्कृति सोचने लगती है कि एक ही रास्ता है, वहॉ इंसान डॉवाडोल भी होता है और खंडित भी। मूल्य, चेतना और विचारों के स्तर पर जो बडा परिवर्तन आया है, इस देश की संस्कृति में कि जहॉ अनेक रंगों की कल्पना थी, और समय और काल का जो विचार था जिसमें 'साइमल्टेनिटी' की बात थी, बहुरंग की बात थी वहॉ हमने सकुचित होकर एक विकास के मॉडल को देखना शुरू किया, एक तरह की विधाओं को देखना शुरू किया और सोचा कि विचारों का एक ही रास्ता है।

मुकेश : *आखिर ऐसा क्या और क्यों हो गया कि जो मुल्क मानता था कि सत्य पाने के अनेक रास्ते हैं वह भेड़चाल से एक ही रास्ते पर बढ गया? उसकी जड़े कहॉ हैं?*

कपिला : सवाल बहुत जटिल है। अगर जड़ों की बात ले तो थोड़ा संकोच से कहूॅ तो शिक्षा बहुत अहम रही। जो हमने शिक्षा के मॉडल्स अपना वह पश्चिम से लिए गये। गॉधीजी की बुनायादी शिक्षा की जो कल्पना थी, जो उनके आर्थिक और सामाजिक नज़रिए था-हमने उस बुनियादी शिक्षा की नीति को निकाल दिया। इसीलिए जब आज कहतें है 'व्ही आर मैकालेज़ चिल्ड्रन' तो सही बात है। मैं तो कहूॅगी कि राजनैतिक स्वतन्त्रता तो पाई पर शिक्षा की प्रणाली वही पुरानी नीति चलती रही। उससे 'डिकल्चरलाइज़ेशन' हुआ। उधर 'ग्लोबलाइज़ेशन' हुआ तो 'यूनिफ़ौर्मिटी' हो गई। फिर जो एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम था वह हमने वैसा ही रहने दिया। जो सिस्टम एक पराजित देश को चलाने के लिए था, उसे बनाने वालों के मिनिट्स का जिक्र करूॅ तो 'वी हैव टू सैट अफ एन एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम बेस्ट ऑन द होली प्रिंसपल ऑफ मिसट्रस्ट, अदरवाइज़ वी शैल नॉट बी एबल टु गर्वन एन एलिएन पीपुल रिमोट कंट्रोल"।

मुकेश : *यानी एक ऐसी व्यवस्था, एक ऐसा ढॉचा जो पूरी तरह संदेह और अविश्वास पर टिका था।*

कपिला : तो आपने ध्येय तो दूसरा चुना लेकिन गाड़ी तो आपने पुरानी वाली चुनी तो वह तो आपको दूसरी जगह ही ले जाएगी। जो बाक़ी भी सिस्टम थे, कि जो आपने सिस्टम गवर्नन्स का भी चुना, चाहे वह लेजिस्लेशन था, चाहे

ज्यूडिशयरी थी, वह एक दूसरे काल मे दूसरी दृष्टि से स्थापित किया गया था। उस सबको तो हमने ले लिया, तो द चेन्ज ऑफ दे लेफ्ट बिहाइन्ड बैगेज, हेवन्ट चेंज्ड अस। हमने और उसको बिन्दे वगैरह लगाकर बडा कर दिया, तो चेतना मे परिवर्तन तो आना ही था।

मुकेश : आज जो हालात है, उन्हे देखकर आपको क्या लगता है कि हम वापस अपनी जडों की ओर लौटेगे ? ऐसे मे क्या उम्मीद बधती है, कौन चलेगा मशाल लेकर ? क्या हो सकता है ?

कपिला . मै निराशावादी नही हूँ। इस देश मे इतिहास 50 साल का समय बहुत छोटा समय है। इस देश की संस्कृति सदियो पुरानी है। अभी तो हम राजनीतिक स्तर पर बात कर रहे है कि स्वतन्त्रता के 50 साल। इसमे यह बात ठीक है कि बहुत परिवर्तन हुए, कुछ हमारी नीवे भी हिली, लेकिन अगर सभ्यता और संस्कृति ससार मे जीवित है तो इसी देश मे है। क्योकि बाकी की जो पुरानी सभ्यताए है वह तो जीवित नही है, न इजिप्शियन है, न अस्टिक है न मायन है एक चाइनीज़ की मिसाल दी जा सकती है।

मुकेश : कपिला जी यह आपका आशावाद है और अपनी जगह ठीक हो सकता है। पर आज जो हालात हैं उन्हे देखर क्या कही कोई संभावना बनती है ? मै आपसे आशावाद नही विश्लेषण चाहूँगा।

कपिला : हॉ उम्मीद तो बधती है। स्वर्ण समारोह को ही ले तो हॉलांकि उसका एक कुरूप पक्ष भी सामने आया है, उसकी चर्चा मै यहॉ नही करूगी, पर कला मे देखिए मैने जब 60 साल पहले नृत्य सीखना शुरू किया तब अच्छे घरो की लडकियॉ नाचती नही थी। आज आप कमानी, सिरीफोर्ट चले जाएं हज़ारों लोग कथक देख रहे है, शास्त्रीय सगीत सुन रहे है, चाहे सब यह फैशन के बतौर ही हो रहा हो, हो सकता है कि वह इसके बाद डिस्को में चले जाए मगर कुछ कर तो रहे हैं न। कही तो पकड़ रहे है। यह धरती बड़ी विशाल भी है और गहरी है। जब तक इस देश की सस्कृति के जो मौखिक तत्त्व है जो मौखिक परम्परा है, रामायण वगैरह के साथ चली आ रही वाचिक परंपरा जैसी चीजें जब तक हम लिखित रूप मे बॉध नही देते, तब तक यह भारतवर्ष ज़िन्दा रहेगा।

□

अनुवाद प्रेम का दर्शन होता है — डॉ. सुमतीन्द्र नाडिग

पंकज चतुर्वेदी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के अध्यक्ष डॉ. सुमतीन्द्र राघवेन्द्र नाडिग वैसे तो अंग्रेजी भाषा के प्राध्यापक हैं, लेकिन वे देश के उन गिने-चुने साहित्यकारो में से हैं, जो बांग्ला भाषा से सीधे कन्नड़ में अनुवाद करते हैं। डॉ. नाडिग मूलतः कवि है। अनुवाद को वे मूंल लेखन से अधिक जटिल विधा मानते हैं। अनुवाद के विभिन्न पहलुओं पर उनसे पंकज चतुर्वेदी द्वारा की गई बातचीत के प्रमुख अंश प्रस्तुत है

पंकज चतुर्वेदी : कहाँ पूर्व की बांग्ला और कहाँ दक्षिण की कन्नड़। आखिर ऐसे जटिल अनुवाद की ओर आप कैसे आकृष्ट हुए?

डॉ. सुमतीन्द्र नाडिग : बात 1991 की है मुझे साहित्य अकादमी ने रु० 4000/- की ट्रेवल ग्रांट दी थी। मैं बंगाल गया। मैं केवल इस पैसे से कलकत्ता घूम कर लौटना नही चाहता था। वहाँ मैं बांग्ला के मशहूर कवियो से मिला। उनकी कविताएं सुनी। बाद मे उनकी कविताओं के हरेक शब्द को अंग्रेजी में लिखा। फिर उसे कन्नड़ में करता था। इस प्रक्रिया में बहुत समय लगता था। समय कम था, पैसे भी नही थे। बैंक से छह हजार का कर्जा लिया। मेरी पत्नी ने घर पर साड़िया बेचना शुरू किया। उस पैसे से जैसे-तैसे होटलों में रहा।

फुटपाथी होटलों में टिक जाता था। लोगों से मिलने के लिए कई-कई किलोमीटर पैदल चलता था। इस दौरान में सुनील गांगुली, शक्ति चट्टोपाध्याय, नवीनत देव सेन, कविता सिन्हा, सुभाष मुखोपाध्याय, सुबोध सरकार, बलिकेशव गुप्त, भास्कर चक्रवर्ती, जयदेव बसु, जय गोस्वामी जैसे कवियो, साहित्यकारों से मिला। तब मैंने बांग्ला सीखी। मेरा काम सरल हो गया।

पंकज : ऐसे अनुवाद में दिक्कत नही आयी ?

डॉ. नाडिग : मैने पाया कि कन्नड़ और बाग्ला मे कोई खास अतर नही था। चूंकि मैं संस्कृत जानता हूँ, अतः कोई दिक्कत नही हुई। जैसे टैगोर की एक बांग्ला मूल कविता हो -
"प्रहर की शेष अलोय रंग
हो दिन चैत्र मास
तोमार चोखेर देखे छिला
अमार सर्वनाश"
इसका कन्नड़ अनुवद मैने किया -
"प्रहरद कोने केंपु बेठकु
अंटु चैत्र मास
निन्न कण्णिनल्लु कंडे
नन्न सर्वनाश
अब इसमें देखिये कुछ ही शब्दो में बदलाव है। सो दिक्कते आई तो लेकिन ऐसी नही कि वे असहनीय हों या जिनका हल ना हो।

पंकज : साहित्य की इतनी विद्याओं मे आपने अनुवाद को ही क्यो चुना ?

डॉ. नाडिग : अनुवाद वास्तव में मानवीय संबंध मजबूत करने का सशक्त तरीका है। मैं चाहता था कि लोंगो को जोडूं, सो मैंने अनुवाद को अपनाया।
यह कोई "आर्ट" नही है, यह तो "हार्ट" का मामला है। मैं चाहता था कि कन्नड़ लोगों में बाग्ला के प्रति स्नेह बढे, सो मैंने इस विद्या को अपनाया।

पंकज : अनुवाद की समतुल्यता पर सदा विवाद रहता है। इस पर आपका क्या नजरिया है ?

डॉ. नाडिग : जरूरी नही कि अनुवाद ठीक-ठीक मूल के समतुल्य हो। वह पठनीय हो, खूबसूरत हो। अरे भाई यह "हार्ट" का मामला होता है। दिल को भाना चाहिए। इसे "हार्ट" की पसंद का बनाने के लिए "आर्ट" का प्रयोग

हो । यही अनुवाद का मूल मंतव्य होता है ।

पंकज : अनुवाद मूल के कितना करीब होना चाहिए ?

डॉ. नाडिग : जितना अधिक करीब हो, अच्छा है । एक फूल तो दो लोग देखते है, दोनो ही उसे सुंदर मानते है, इस प्रकार वे अपने अनुभवों का साझा करते है । फिर उनमे प्यार बढता है । अनुवाद वास्तव मे अपने अनुभव, अपनी संवेदनाओ के आदान-प्रदान का तरीका है । तभी मैंने बांग्ला की तीन-चार कविताओं का ही अनुवाद कर नही छोड दिया । मैंने 100 से अधिक कविताओ का अनुवाद किया । जितनी बात मे हम दूसरे के दिल की बात टटोल सके, अपनी भाषा मे उसे समझा सके, बस अनुवाद करते समय इतनी नजदीकी का ध्यान रखना होता है ।

पकज : क्या अनुवाद को तकनीकी तरीके से सिखाया जा सकता है ?

डॉ. नाडिग : जैसे बाग्ला कविता की खूबसूरती मीटर, छद में है । इसे अनुवाद करने के लिए "छंद" पर नियत्रण होना जरूरी है । यह नियत्रण, अंतर्दृष्टि से आता है । पुराने कवियो को गभीरता से पढ़ने पर आता है । यह कोई "मैकेनिकल" काम नही है, अतरात्मा की बात है , जैसे कोई पेड धरती चीर कर ऊपर निकलता है, वैसे ही मन के भीतर से अनुवाद की क्षमता उपजती है । यह प्रसव वेदना सरीखा है ।

पकज : अभी बता रहे थे कि आपने कई अनुवाद किए है । इस बारे मे कुछ बताइए ?

डॉ. नाडिग : सुबोध सरकार के एक बडे कविता सकलन का अग्रेजी मे, नीरेन्द्र नाथ चक्रवर्ती की कविताओं का बाग्ला से सीधे कन्नड मे अनुवाद कर चुका हूं । तीन साल पहले मैंने रवीन्द्र नाथ टैगोर के 'तीन संगी" का कन्नड मे अनुवाद किया था जिसे ओरिएट लागमेन ने छापा है ।

पकज : अनुवाद करने के कार्य की आपकी यात्रा कैसे शुरू हुई ?

डॉ. नाडिग : बात उस दौर की है जब गोपाल कृष्ण अड़िग के नेतृत्व मे "आधुनिकतावाद" का आंदोलन चल रहा था । मैं अनतमूर्ति, लकेश और कई कवि कालेजों में कविता पढ़ा करते थे, आकाशवाणी से भी हमारी कविताओ का प्रसारण हुआ था । तब से मै अडिग से बेहद प्रभावित था । सन् 60 के आसपास मैं बंबई के एक कालेज में पढ़ाता था । तब मैंने चाहा कि शिव नारायण राय, वृंदा करदीकर सरीखे साहित्यकारों को अड़िग की कविता बताऊ । भाषा की समस्या आडे आ रही थी । पहले मैं इंग्लिश से कन्नड़ में अनुवाद तो करता रहता था, लेकिन बंबई मे अडिग का

परिचय कराने के लिए मैने उनकी कन्नड़ कविताओं का अग्रेजी मे अनुवाद किया। और इसी अनुवाद की बदौलत 1965 मे अखिल भारतीय लेखक सघ के केरल अधिवेशन मे अड़िग को सम्मानित किया गया।

तभी एके रामानुजम और उनके साले कृष्णमूर्ति ने उनकी कविताओ के अनुवाद किये थे। ये अनुवाद "पाएट्री इंडिया" मे छपे और पत्रिकाओ ने अड़िग को "भारत का महान कवि" बताया।

इस प्रकार एक लेखक की क्षेत्रीय छवि राष्ट्रीय ही नही अतर्राष्ट्रीय हो गई।

पंकज : अतर्राष्ट्रीय कैसे हुई ?

डॉ. नाडिग : 1971 मे मै अमेरिका गया। इस बीच मै अडिग के अनुवाद करता रहा। मैने उन्हे अमेरिका आमत्रित किया, उनके भाषण के लिए व्यवस्था की। अड़िग को जानने के लिए वहॉ मेरा अनुवाद दिया गया। एलेन गिन्सबर्ग को भी मैने अपना अनुवाद भेजा। उन्होने अडिग की रचनाधर्मिता पर एक लबा पत्र मुझे लिखा। यह एक उदाहरण है कि अनुवाद के जरिये किस तरह एक साहित्यकार की रचना अधिक से अधिक लोगो तक पहुच सकती है।

पंकज : अनुवाद करते समय आप किस लक्ष्य को लेकर काम करते है ?

डॉ. नाडिग : कुछ अनुवाद हम बेहद औपचारिक करते है। पर मेरा लक्ष्य रहता है कि अनुवादित पुस्तक को ना केवल अनुवाद की तरह पढा जाये, बल्कि पाठक को लगे कि वह कोई मूल पुस्तक पढ रहा है। जैसे साहित्य अकादमी के लिए मैने सिधी साहित्य की एक पुस्तक का अंग्रेजी से कन्नड मे अनुवाद किया। मेरा प्रयास रहा कि यह पुस्तक मूल कन्नड के रूप मे पढ़ी जाये।

पकज : विभिन्न क्षेत्रीय शब्दो, बोलियो के शब्दो के अनुवाद मे "क्षेत्रीयता का पुट" रखने के लिए आप क्या करते है ?

डॉ. नाडिग : गद्य के अनुवाद मे कुछ कठिनाई होती है। जैसे भुट्टा को कन्नड़ मे "मेक्के जोडा" कहते है। पर कविता मे हम इसे सीधे भुट्टा लिख सकते है। कमल पत्र की तरह एक पौधा होता है इसका तना कुछ मोटा होता है उसकी सब्जी बनती है। कन्नड़ मे उसे केसू कहते है, बाग्ला मे "केचू" और असमिया मे "कचू" कहते है। इस तरह की समानताए क्षेत्रीय भाषाओं में बरकरार है। अतः कुछ सज्ञाओ के क्षेत्रीय शब्द उपयोग करने

से कविता में खूबसूरती आ जाती है ।
भाषा सिखाती है कि हम एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसकी खोज का कार्य "अनुवाद" से किया जाता है । यदि हम भारतीय भाषाओं का आपस में सीधा अनुवाद करें तो यह मूल के बहुत करीब होगा, क्योंकि हमारी संस्कृति तो समान है ।

पंकज : अच्छे अनुवाद का मूल मंत्र क्या है ?

डॉ. नाडिग : यदि हम कोई अनुवाद अंग्रेजी के जरिये करेंगे तो वह बेहतर अनुवाद नही हो सकता । यह खतरनाक होता है । इससे स्थानीय रंग नष्ट हो जाते हैं । मैंने जान रस्किन की पुस्तक "अन टू दि लास्ट" का अनुवाद "मानस अर्थशास्त्र" किया, क्योंकि किताब का नाम ही उसका पूरा परिचय होता है । हां नीचे कोष्टक मे लिख दिया कि यह अमुक पुस्तक का अनुवाद है । अब स्किन चार से छह पेज तक के लंबे वाक्य लिखा करते थे । लेकिन भारतीय भाषाओ में ऐसा प्रचलन नही है । सो मेने इन वाक्यो को 30-40 शब्दों में तोड़ा । इससे पाठकों को पढ़ने में सहूलियत हुई ।

पंकज : आप अपने अनुवाद की जांच कैसे करते है ?

डॉ. नाडिग : मैं कन्नड़ से बांग्ला अनुवाद नही कर सकता हूँ । सो मैं अपने बांग्ला से कन्नड़ अनुवाद को फिर अंग्रेजी मे अनुवाद करता हूॅ । फिर इस अंग्रेजी को लेकर बांग्ला साहित्यकारों से विचार-विमर्श करता हूं । तब सही अनुवाद हो पाता है ।

पंकज : आपको ऐसे परीक्षण की जरूरत क्यों महसूस हुई ?

डॉ. नाडिग : जैसे चैत्र मास कन्नड में पहला महीना होता है, जबकि बांग्ला में यह आखिरी महीना होता है । टैगोर की कविता "प्रहरो की शेष ....." को ले इसका मूल मंतव्य है कि मैंने अपनी ऑखो में अपना अंत देखा है । जबकि कन्नड़ में यदि "चैत्र" लिख दें तो इसका अर्थ शुरुआत हो जायेगा । केवल शब्दकोष देख लेने से कोई भाषा का ज्ञाता नही बन जाता है ।

पंकज : आपका मूल लेखन पर अनुवाद कार्य का क्या कभी कोई असर होता है ?

डॉ. नाडिग : सदा नहीं । कभी-कभी 1926 में प्रो० वी. एम. नीलकंठेया ने कुछ रोमांटिक कविताओ का अंग्रेजी से कन्नड़ में अनुवाद किया था । वास्तव में अनुवाद नही रूपांतरण था । ये इतनी लोकप्रिय हुई कि कन्नड़ में ऐसे रूपांतरणों की बाढ़-सी आ गई । ये कन्नड़ कविताएं कीट्स या शैली की

तर्ज पर हुआ करती थी। इसके लगभग 30 साल बाद 1956 में अडिग ने इलियट की तकनीक को लेकर आलोचना सिद्धात को आधार बनाकर कविता लिखनी शुरू की। यह मूल कृति का रूपांतरण नही था। केवल तकनीक का "एडाप्टेशन" था। लेकिन सभी अनुवादों मे ऐसा नही होता। यह लेखक के साथ अनजाने मे होता है। जो लोग अन्य लेखको से सीखने को तैयार है उनके काम मे ऐसे प्रभाव दिख जाते हैं।

पंकज : आखिर ऐसा प्रभाव क्यो आ जाता है ?

डॉ. नाडिग : भई साफ बात है-यदि मै किसी को पसद करता हू तो उसका अनुसरण करने लगता हू। यह अनुसरण दर्शाता है कि मै उससे प्यार करने लगा हू। प्यार में आदमी अपने प्रेमी के चाल-ढाल, भाव-भंगिमा सभी का अनुसरण करता है। सो, उसका प्रभाव लेखन पर आना स्वाभाविक है। तभी तो मैं अक्सर कहता हूं कि अनुवाद, प्रेम का दर्शन होता है।

पंकज : आपने मूल कृतियो की रचना के साथ ही अनुवाद भी किये। इन दोनो मे अधिक कठिन क्या होता है ?

डॉ. नाडिग : मेरी दृष्टि मे अनुवाद करना कठिन होता है, क्योंकि इसमे अनुवादक को दूसरे यानी मूल लेखक की भावनाओ को समझना पड़ता है, जबकि मौलिक लेखन मे हमें स्वयं की ही भावनाओ को कागज पर उतारना होता है। निश्चित ही ऐसे किसी व्यक्ति की भावना को समझना, फिर उसे लिखना, जो हमारे सामने मौजूद नही, जिसका परिवेश, भाषा , व्याकरण भिन्न है, ना केवल कठिन बल्कि संवेदनशील कार्य भी है।

□

महान् कवि के साथ कुछ पल

गिरीश पंकज

कवि का नाम सुनते ही लगता है कि एक ऐसी मुसीबत आने वाली है जो आपका दिमाग घर दबोचेगी। अपनी एक ऐसी ही घबराहट का चित्रण कर रहे हैं गिरीश पंकज।

अपने देश में दो-तीन 'टाइप' के कवि पाये जाते हैं। एक वे होते हैं, जिन्होने बचपन में कभी सुन रखा था कि कविता नाम की कोई चीज होती है। जिसमें तुकबंदी-फुकबंदी हुआ करती है। इस टाइप के कवि बड़े होते है और तुकबंदी में भिड़ जाते हैं। दूसरे टाइप के कवि वे होते है, जो दो-चार दस कविताए पढ़कर कविता गढ़ने बैठ जाते हैं। ये अलग बात है कि वे कविता का जगह 'फविता' लिखकर मान लेते हैं कि कवि बन गए। तीसरे टाइप के कवि, सचमुच में कवि होते है। ये अच्छा साहित्य पढकर, समाज की संवेदनाओं से जुड़कर कविता रचते हैं, जिसमे तुकबंदी नही, छंद होता है। 'अकविता' होते हुए भी जो 'कविता' होती है। ऐसे कवि व्यंग्य के विषय मे नही होते। जाहिर है, मैं पहले तो 'टाइपों' की बात करूंगा।

कल ही की तो बात है। तुकबंदी-शिरोमणि मिल गए। पान ठेले पर। मुझे देखकर गद्‌गद्। प्रणाम करने की मुद्रा में आ गए। कहने लगे—"धन्यभाग हमारे, जो आप जैसे महान श्रोता से मुलाकात हो गयी। आप पान खाएंगे ?

"मतलब ये कि हम फॅस जाएंगे ?" मैंने कहा

"आप तो कविता प्रेमी हैं न ?" कवि ने पूछा

"जी हॉं, मगर अच्छी कविताओं का।"

कवि हॅसने लगा—"अजी हमारे पास ढेर सारी अच्छी कविताएं हैं। आइए, आपको सुनाता हूॅ।"

मैं घबराने लगा। उस मनहूस वक्त को भी याद करके दुखी हो रहा था, जब मन मे यह 'भ्रष्ट' ख्याल आया कि पान खा लूं। कहते हैं, किसी कवि का दिल तोडने से उसकी हाय लग जाती है, इसलिए मैने कहा, "आइए, किनारे बैठकर कविता सुन लेते हैं।" कवि तो बौरा गए। मुरगी तो फसली रे फसली। डायरी निकाली और पन्ने पलटाने लगे, फिर बोले—"सुनाऊॅं ?"

"सुना ही डालो अब।" मैने कहा

कवि ने शुरू किया—"देखिए, कल ही एक ताज़ा कविता लिखी है कि

'चलो, उठो वीर जवानो, दौडो-दौड़ो भागो रे
दफ्तर को देर हो रही, भागो-भागो दौड़ो रे।"

इतना बोलकर कवि चुप हो गया। मैंने पूछा—'कविता खत्म ?'

वह बोले, "और क्या, छोटा लिखो, मगर दमदार लिखो।'

उन्होंने दमदार कुछ इस तरीके से, कहा कि हंसी आ गयी। उन्होने मेरी हॅसी की तरफ ध्यान नही दिया बोले, "दूसरी सुनिए, 'मृदग भंग संग मे तरंग रंग जाइए, सुवास घास का प्रकाश, कुरंग-क्रंग पाइए।'

मैने पूछा—"कविता का अर्थ भी तो बताइए श्रीमान्।"

"मुझे भी नही मालूम," कवि महोदय हंस पडे, "शब्द कोश देखना पडेगा।"

"आप ऐसी कविताएं कैसे लिख लेते है महाराज, जिसका अर्थ आप खुद नही जानते ?" मेरे इस मूढ़ प्रश्न पर कवि मुसकाया "अरे भई, यही तो खासियत है मेरी। मन में जो भाव आया, लिख मारो। बाद में अर्थ को ढूंढते रहो। कुछ न कुछ तो निकलेगा ही।

मैंने पूछा—"क्या आपने वर्तमान माहौल पर भी कोई कविता लिखी है ?"

"हॉं-हॉं, क्यों नही," महाकवि बोले, 'सुरक्षा सप्ताह पर लिखी है—एक महान् कविता। सुनिए—

कितनी प्यारी पुलिस हमारी,
सबको राह बताती है,
बाएं-बाएं चलो वीरों, लोगो को समझाती है,
पुलिस बड़ी है अच्छी भैया,

कौन कहता है कि रिश्वत खाती है,
यातायात के नियम निभाओ,
वंदेमातरम् । मेरी चाय गरम ।"

"ये कविता थी ?" मैंने चौकते हुए पूछा ।

"हॉ ।" वह बोले ।

"सचमुच ये कविता थी ?" मैने फिर पूछा ।

"हाँ, बाबा, हॉ कविता थी ।" वह मुझे घूरने लगे ।

"ठीक है, आप कहते हैं तो होगी कविता" मुझे कहना पडा, "वाह, क्या बात है । क्या प्यारी कविता है ।" शिष्टाचार भी कोई चीज होती है भई ।

मेरी वाह-वाही पर महाकवि शरमाते हुए बोले—'शुक्रिया ।'

मैंने एक और प्रश्न उछाला—"देश जल रहा है । चारों तरफ तनाव ही तनाव है । आपस में भाईचारा बढ़ाने वाली कोई रचना है आपके पास ?"

वह सिर खुजाने लगे । नासिका मे उंगली घुसेड़ने लगे । डायरी के पन्ने पलटने लगे । फिर दबे स्वर में बोले—"ऐसी कोई रचना नही है मेरे पास ।"

मैंने कहा—"देश तनाव मे है—मरहम की जरूरत है, और आप यातायात पर लिख रहे हैं ।"

तुक्कड़ जी बोले—"यातायात भी तो देश की एक बडी समस्या है ।"

मैने कहा—"साम्प्रदायिकता से बड़ी समस्या नही है। यातायात व्यवस्था तो कल-परसो सुधर भी सकती है, लेकिन साम्प्रदायिकता की समस्या को तो अभी हल करने की कोशिश होनी चाहिए ।"

तुक्कड़ जी बोले—"वो क्या है जी, कविता का संबंध मेरे दिल से तो है नही । मस्ती के लिए कविताएं लिखता हूॅ । अफसर खुश रहे । लोग पहचानते रहे । मुझे शाबाशी दे । बस, यही चाहते हैं अपन । साम्प्रदायिकता पर लिखूंगा तो समाज के लोग ही गरियाएंगे । जान का भी खतरा रहता है । किसी सिरफिरे को कोई बात बुरी लगी और उसने चाकू मार दिया तो ? इसलिए भैया, मै तो 'मेरा प्यारा टॉमी देखो । कितना हुआ हरामी देखो ।' या फिर 'फूल खिले उद्यान में । भौंरे कहते कान में' टाइप की कविता ही करता हूॅ । इसी में मजा आता है ।"

"मतलब आपके लिए कविता-लेखन मजे का विषय है । सृजन का नही ?"

"और नही तो क्या ?' महाकवि बोले, 'जब एक तुकबंदी तैयार होती है तो लगता है, मैं तुलसीदास हो गया हूॅ । दूसरी तुकबंदी में खुद को सूरदास समझने लगता है । आप भी कविताएं लिखा कीजिए । मेरे जैसा महाकवि बन जाएंगे, हॉ ।"

"आप जैसा कवि बनने की बजाय साधारण आदमी बनकर जीना ही मेरे और समाज के स्वास्थ्य के लिए हितकर रहेगा।" मैंने कहा

तुक्कड़ जी भड़क गए—"क्या मतलब? मेरी कविताएं घटिया हैं क्या, जो आप ऐसी बातें कर रहे हैं?"

"अरे, नही भई' मैंने उनका गुस्सा शांत करते हुए कहा, "आप जैसी महान कविताएं हम जैसे लोगो के वश की बात ही नही है। अच्छा भई, मैं चलूं। साम्प्रदायिक सद्भावना समिति की बैठक मे जाना है। देर हो रही है। आप भी चलेगे?"

महाकवि बोले—"नही बधु, मुझे तो 'मचलती जवानी' देखने जाना है। मैटिनी शो। आप भी चलिए न! इन बैठको मे क्या रक्खा है। 'मचलती जवानी' देखने के बाद जोरदार कविता सूझेगी। पिछली बार 'एक अकेली, सौ दीवाने' देखकर आया था, तो मैंने लिखा—'तू अकेली मैं अकेला, छोडकर सारा झमेला। चलो, देखकर आते हैं। मेला-ठेला।"

मैंने हाथ जोड़ लिया। तुक्कड़ जी 'मचलती जवानी' देखने तेजी के साथ आगे बढ गए। □

हथकंडे

ईशान महेश

जिदगी में कंडों का चाहे महत्त्व हो या न हो, हथकंडो का बहुत है। अच्छे ज्ञानी जीव इनके सामने लाचार हो जाते हैं। जो जितना बडा हथकंडेबाज है उतना ही कामयाब है। युवा व्यंग्य लेखक ईशान महेश ऐसे हथकडो से वाकिफ है और उसकी पहचान अपनी चिर परिचित शैली मे करवा रहे हैं।

"ऐ .... ऽ ...." द्वार पर ऊंघते चपरासी ने बबइया शैली में मुझे टोका, "बिना ब्रेक की गाड़ी की तरह कहॉ घुसा जा रिया है ? पागल हो गया है क्या ? तुझे रेलवे फाटक की माफिक दरवाजे से अडा अपुन का यह टॉग दिखाई नही देता क्या ? तेरा ऑख है के बटन ! साला ऊॅट का माफिक सिर उठाए घुसा चला जा रिया है, घुसा चला जारिया है।"

"मुझे साहब से मिलना है।" मैने लगभग चीख कर कहा।

"देख..... देख .... ऊँचा नहीं बोलने का। हॉ ....." उसने मुझे ऊँगली और ऑखें दोनों दिखाई, "कोठे पर आदमी भगवान् से मिलने नही जाता। अपुन को मालूम है कि तू साब से मिलने आया है- अपुन से नही। पर अंदर नही जाने का ..... ।"

"हटो परे !" मै चपरासी को धक्का देते हुए साहब के कमरे मे घुस गया।

"क्या है ?" साहब घबराए स्वर मे चिल्लाया। उसकी स्टेनो उससे भी अधिक घबरा गई।

"आपके आबकारी-विभाग ने हमारे मुहल्ले की चारो दिशाओं में शराब की दुकानें

खोल दी हैं ।" मैं फट पड़ा, "यह अत्याचार है ।"

साहब ने मेज पर पड़ी एक पत्रिका उठाई और उसके पृष्ठों को पलटा । हल्की-सी मुस्कान बिखेरता हुआ, मेरी ओर देखकर बोला, "इस पत्रिका में लिखा है कि दिशाएँ दस होती हैं । शीघ्र ही और दुकाने भी खुलवा दी जाएँगी और घबराओ नही, शराबियो की सुविधा के लिए उन्हें देर रात खुला रखा जाएगा; यदि संभव हुआ तो चौबीस घंटे । हम इन दुकानो को खुली रखेगे ।...... एक नया प्रस्ताव रखा जा रहा है । यदि वह स्वीकृत हो गया तो घरो मे पानी के नल की तरह, शराब भी सप्लाई की जाएगी । टोटी खोलो और जमकर पीओ । ..... हॉं, बिल साप्ताहिक आएगा । ..... और हॉं....." वह अपनी ही धुन मे हॅसा और अपनी स्टेनो की अॅगुलियो का स्पर्श-सुख लेता हुआ बोला, "तुम्हे एक मजेदार सूचना भी दे दूं ।"

"वह क्या ?" न चाहते हुए भी मेरा मुॅह खुल गया ।

"यह कि सरकार झुग्गी-झोपड़ी वालो को नलो से देसी शराब फ्री सप्लाई करेगी ।" उसने मेरी ओर प्रसन्न होकर देखा ।

"मै और दुकानें खुलवाने के लिए नही आया हूॅ ।" मेरी ऑखों से अगारे बरसने लगे, "मैं तो उन दुकानो को बंद करने की मॉग लेकर आया हूँ ।"

"मॉगना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । हम किसी-न-किसी से, कुछ-न-कुछ मॉगते ही रहते है । क्यो ?" उसने मुझे सुनाते हुए अपनी स्टेनो को ऑख मारी ।

वह प्रसन्न हो उठी ।

"लेकिन ....." उसने मुझे ऑखे दिखाई और अपने स्वर को मदारी जैसा बनाता हुआ बोला, "तुम गलत जगह आया है । हमारा विभाग नया दुकान खोलता है । क्या समझे ? नही समझे ? अपना मॉग लेकर जाओ 'मद्य-निषेध-निदेशायलय' के फाटक पर । वहॉं जाकर अपने गले मे ढपली डालकर अपना राग अलापो, 'मैं तेरे दर पे आया हूॅ, कुछ करके जाऊॅगा । झोली भर के जाऊॅगा या मरके जाऊॅगा ।"

"हाऊ स्वीट !" स्टेनो ताली बजाकर, खिलखिला कर हॅसी । आगे बढकर उसने साहब को अपनी बॉंहो का हार पहनाया और उसका गाल चूम लिया ।

"काश ! आपके विभाग ने शराब की दुकानो के स्थान पर पुस्तकालय खोले होते ।" मैं निस्तेज हो उठा ।

मुझे उदास देखकर साहब बड़े जोर से हॅसा । मुझे लगा या तो इसे हॅसना ही नही आता या यह जीवन में पहली बार हॅसा है और हॅसते-हॅसते ही चल बसेगा; किंतु ऐसा कुछ भी नही हुआ । अपनी हँसी को बलात् रोकता हुआ, वह हॉफते हुए बोला, "वाह यार ! तुम चुटकुला बहुत अच्छा सुनाते हो ।..." सहसा वह गंभीर हो उठा । इतना गंभीर

किउसे देखकर कोई यह कह ही नही सकता कि वह अब से थोड़ी देर पहले हँसा था या जीवन में यह कभी हँस भी सकता है। बोला, "देखो! प्रत्येक विभाग का अपना-अपना काम है। हमारे विभाग का काम दारू बेचना है। पुस्तकालय खोलना किसी और विभाग का काम है। तुम गलत जगह आए हो।"

"रोंग नम्बर।" स्टेनों ने पैंसिल दातुन की तरह अपने जबड़ों में फँसा ली।

मद्य-निषेध-निदेशालय के जनसंपर्क अधिकारी ने मेरी बात बड़े ध्यान से, धैर्य से और शांत मन से सुनी। उसने मेज पर रखी घंटी पर अफसरी अंदाज़ में अपने हाथ को कई बार पटका।

"बोलो साब!" चपरासी ने अपनी लाल और नशीली आँखों को अफसर पर टिकाने का प्रयत्न किया। उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। उसने एक नजर मुझ पर भी डाली और कैस्टो मुखर्जी की तरह हिचकी लेता हुआ, गर्दन झटका कर मुस्करा दिया।

"दो पैग चाय।" अफसर उसके मुँह नही लगना चाहता था।

चपरासी चला गया।

"मुझे बहुत खुशी हुई कि आप यहाँ आए। वर्ना हम तो यहाँ सारे दिन बैठे-बैठे ऊब जाते हैं। कोई आता ही नही। मेरा छोटा भाई आबकारी विभाग में है, जिससे आप मिलकर आ रहे हैं।..." वह जैसे स्वप्न मे खो गया, "क्या लाइफ है साले की। भीड़ से घिरा रहता है। रात को नोट बोरों में भरकर ले जाता है।" सहसा अफसर की नज़र मुझ पर पड़ी। मेरी क्रुद्ध आँखों को देखकर उसका सपना टूट गया। वह कोमल स्वर मे बोला, "क्या बात है, आपकी तबीयत ठीक नही है क्या ?"

"हाँ, मेरी तबीयत ठीक नही है!" मैं तमतमाया, "आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नही दिया।"

"कौन-सा प्रश्न ?" वह चौंका।

"यही कि एक ओर तो यह प्रचार किया जाता है कि शराब मत पीजिए। दूसरी ओर आप शराब के ठेक नीलाम करते हैं। 'शराब मत पीजिए, शराब जहर है' इन विज्ञापनों पर आप क्यों करोड़ों रुपये फूँक देते हैं ?"

"क्योंकि हम शराब का प्रचार नहीं कर सकते।" वह अपने कंधे उचका कर बोला, "इसलिए हम जनता से शराब न पीने की अपील करते हैं।" अफसर ने मेज़ की दराज खीची उसमें से एक शीशी निकाल कर एक घूँट भरा। शीशी पर 'टॉनिक' लिखा था।

"यही तो मैं पूछ रहा हूँ," खीजकर मैंने अपने सिर के बाल नोच लिए, "कि आप शराब-विरोधी प्रचार क्यों करते हैं ?"

"जिससे शराब अधिक बिके।" वह हँसा।

"शराब का विरोध करने से शराब ज्यादा कैसे और क्यों बिकेगी?" मुझे लगा मैं पागल हो जाऊँगा।

"हुऊँ ......" वह कुछ सोचने और कुछ समझाने की मुद्रा बनाता हुआ बोला, "तुमने बच्चा देखा है ? छोटा-बडा बच्चा, कैसा भी बच्चा !"

"हाँ !"

"बडा जिद्दी होता है।" उसने मुँह बिचकाया, "आप उसे जिधर जाने से मना करेंगे, वह वही जाएगा। आप उसे जो कार्य करने से रोकेंगे, वह वही करेगा।"

"तो ?" किसी बुद्धु बालक के समान मेरा मुँह खुला।

"अब इसमे 'तो' क्या !" उसने मुझे डाँटा, "सीधा-सीधा अर्थ है। अगर हम जनता से कहेंगे कि, 'शराब पीजिए'; तो वह नही पीएगी। बल्कि सोचेगी कि जरूर शराब पिलाकर सरकार अपना कोई हित साधना चाहती है। ..... और जब हम चीखते है कि, 'शराब मत पीजिए' तो जनता का अहंकार जागता है। वह सोचती है: पैसा हमारा, शरीर हमारा; फिर सरकार की क्या हिम्मत कि वह हमें रोके। इसलिए सरकार शराब न पीने का परामर्श देकर हमे चुनौती दे रही है। हमे उसका प्रतिवाद करना है- और मद्य-पान से अच्छा प्रतिवाद और क्या होगा। समझे ?" □

समीक्षा प्रगति के तीन दशक

गोपाल राय

पुस्तको की समीक्षा साहित्य का एक विशिष्ट पक्ष है जिसकी अक्सर उपेक्षा की जाती है। समीक्षा मे जिस गहराई की आवश्यकता होती है, वह अकसर उसमे से गायब मिलती है। डॉ. गोपाल राय बरसो से इस दर्द को झेल रहे है। अपने सीमित साधनों के बावजूद हिंदी मे एकमात्र समीक्षा पत्रिका को निरंतर निकाल रहे है। पिछले पचास वर्षो की समीक्षा के बारे मे उनसे बेहतर कौन बता सकता है।

'समीक्षा' का प्रवेशाक (जुलाई, 1967) सितम्बर 1967 मे प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम सम्पादकीय में आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने लिखाः 'समीक्षा' एक निश्चित लक्ष्य लेकर उपस्थित हुई है। इसका लक्ष्य हिंदी की अब तक निकली सभी पत्र-पत्रिकाओं से भिन्न है। यह दावा बहुत बड़ा है पर गलत नही है। वार्षिक से लेकर दैनिक तक जो भी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती है उनमें पुस्तक-समीक्षा का भी एक स्तम्भ सामान्यतः रहता ही है। पर केवल पुस्तक-समीक्षा को अपना ध्येय बनाकर निकलने वाली यह हिंदी की पहली पत्रिका है। भविष्य की बात तो हम नही कह सकते पर इसका आरंभ ही ऐतिहासिक महत्त्व का अधिकारी हो गया, इससे किसी को असहमति न होगी।

"हिंदी में पुस्तक समीक्षाएं तो होती ही हैं, प्रतिदिन हो रही हैं, किन्तु कला या विज्ञान के रूप मे समीक्षा का विकास अब तक नही हो पाया है। पुस्तक समीक्षा के लिए कोई शब्द हिंदी मे अभी रूढ़ भी नही हो पाया है। अंग्रेजी में 'रिव्यू'शब्द पुस्तक-समीक्षा के

लिए रूढ़ वाचक हो गया है। हिंदी में 'समीक्षा', 'आलोचना', 'परिचय' आदि अनेक शब्द चल रहे हैं। कहने की आवश्यकता नही कि इन शब्दो के वाच्य भिन्न-भिन्न हैं और अब समय आ गया है, जब शब्द के अर्थ की तरलता दूर कर संकेत निश्चित किए जाएं। यह वैज्ञानिकता और निर्भातिता की पहली मांग है। जब तक संकेत निश्चित नही होंगे तब तक भाषा में निर्भ्रांत व्यंजकता नही आएगी। हमने 'रिव्यू' के लिए *'समीक्षा'* शब्द चुना है। इसलिए पत्रिका का नाम अन्वर्य है।

"हिंदी के विरोधी मानें या न माने, अब हिंदी प्रकाशन गुण और परिमाण दोनों मे इतना समृद्ध हो गया है कि समीक्षा की एक पत्रिका आवश्यक हो गयी है। समीक्षा को आनुषंगिक बनाकर रखना हिंदी के प्रकाशनों के प्रति न्याय नही होगा। चालू ढग की समीक्षा से न पुस्तकों के संबंध में कोई स्पष्ट धारणा बन पाती है और न उनकी व्याज्यता-ग्राह्यता का निर्धारण हो पाता है। अंग्रेजी मे ऐसी समीक्षा-पत्रिकाएं हैं जो किसी रचना के गुण-दोष का विवेचन ही नही करती, उसके प्रतिपाद्य का सारांश भी दे देती हैं जिससे पुस्तक को न पढ़ने पर भी उसके विषय की जानकारी हो जाती है। पुस्तकों की अनन्तता के साथ अपाठ्यता की जो अनिवार्य सीमा लगी है, उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि उनके विषय का ज्ञान सामान्य पाठक को भी संक्षेप में हो जाए। जो विस्तार के इच्छुक हैं, वे पूरी पुस्तक पढ़ेगे। समीक्षा के इस रूप को विकसित करना भी 'समीक्षा' का लक्ष्य है।

"समीक्षा केवल नवप्रकाशित पुस्तकों का परिचय ही नही देती, वह सत्साहित्य के विकास और समृद्धि का पथ भी प्रशस्त करती है, पठन-रुचि का निर्माण और परिष्कार भी करती है, हीन साहित्य के प्रसार को नियंत्रित भी करती है। वह लेखक, प्रकाशक एवं पाठक के बीच संबध स्थापित कर और एक-दूसरे की प्रतिक्रियाओ से उन्हें अवगत कराकर उनके सामान्य उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनती है।"

'समीक्षा' के अंक 2-3 (संयुक्तांक) में डॉ. रामचंद्र प्रसाद ने इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा था:

"आधुनिक युग की पौरस्त्य ही नही, पाश्चात्य समीक्षा सारणियां भी खाइयों और टीलों से भरी हैं। पुस्तक-समीक्षाओं की दशा सर्वत्र एक-सी दीख पड़ती है। अधिकांश समीक्षक न तो विवेच्य कृति के समस्त पहलुओ को अपनी समीक्षा में समेट पाते है और न उस कृति से प्राप्त अनुभूतियों को विश्लेषित करने का प्रयास करते हैं। सम्भवतः स्थानाभाव के कारण वे ऐसा कर भी नही सकते। किसी भी कृति की सांगोपांग विवेचना के लिए (नैसर्गिक एवं व्युत्पत्तिजन्य प्रतिभा के अतिरिक्त) पर्याप्त अवकाश और स्थान की अपेक्षा होती है। इनके अभाव में समीक्ष्य रचनाओं पर कतिपय ऐसी टिप्पणियां प्रस्तुत की जाती हैं जो अत्यंत तत्मोपरिक एवं आत्मनिष्ठ होती हैं। परंतु पुस्तक-समीक्षा को वही

वैज्ञानिक पीठिका चाहिए जो व्यावहारिक आलोचनाओं के लिए अनिवार्य समझी जाती है। स्वस्थ और वस्तुनिष्ठ अभिवृत्ति से जो समीक्षा होगी, अध्ययन और चिन्तन से उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात करने के पश्चात् स्वस्थ प्रतिमानो से जो समीक्षा लिखी जाएगी, स्पष्ट कथन से जो समीक्षा उद्गत होगी, उसी से उस पीठिका का निर्माण होगा जिस पर हिंदी की व्यावहारिक समीक्षा को संस्थापित होना है।

"अतः समीक्षक केवल यह न कहे कि 'वाह, यह कितना सुंदर है!' "यह कितना कुरूप है।" जेरम स्टालनिज ने इसी तथ्य को यह कहकर प्रकाशित किया है कि ऐसी आलोचना कलाकृति की आलोचना न होकर आत्माभिव्यक्ति मात्र होती है, विवेच्य कृति द्वारा प्रोद्दीप्त प्रतिक्रियाओ की अभिव्यंजना होती है। समीक्षा का उद्भव तब होता है, जब समीक्षक पूछता है: "लेखक (अथवा कवि) ने ऐसा क्यों कहा?" "क्या यह कृति सचमुच भद्दी है?" चूंकि पुस्तक-समीक्षा व्यावहारिक समीक्षा का ही एक अनिवार्य अग है, इसलिए पुस्तक-समीक्षक सस्ते बाजारू विशेषणों से बचता हुआ विवेच्य कृति के कतिपय महत्त्वपूर्ण स्थलों का ही विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत कर सकता है। वस्तुतः वह अन्य व्यावहारिक समीक्षको की अपेक्षा अधिक जागरूक होता है। उसे सूत्र रूप में वे सारी बाते कहनी पड़ती हैं जिन्हें अन्यान्य आलोचक विस्तारपूर्वक कहते हैं। यदि यह विवेच्य कृति के प्रतिपाद्य से सम्बद्ध (या उसका स्मरण दिलाने वाली) अन्य कृतियो की चर्चा करने मे समर्थ है तो इससे उसकी समीक्षा अधिक प्राणवती समझी जाएगी।

"हमारा ख्याल है कि समीक्षा तभी अभिनन्दनीय होती है जब वह विवेच्य कृति को अच्छी तरह समझकर लिखी जाए। यह एक साधारण-सा कथन है पर ऐसे समीक्षकों का न तो पश्चिम मे अभाव रहा है और न पूर्व में जो समीक्ष्य कृति को पूर्णतया अधिकृत किए बिना ही समीक्षाएं लिख डालते हैं। समीक्षा के क्षेत्र मे औचित्य का अतिक्रमण अराजकता उत्पन्न करता है। आत्मनिष्ठ प्रतिमानों में नमनीयता की अपेक्षा होती है। यदि हम आत्मोद्भावित निकषों पर सर्जनात्मक साहित्य को परखना शुरू करें तो हमें जो प्रिय है, उसमें ही सत्य, शिव और सुन्दर का समाहार दीख पड़ेगा। शेष साहित्य से ये गुण लुप्त हुए प्रतीत होंगे। अतः कतिपय ऐसे मानदण्ड गृहीत करने होंगे जिनकी युक्तियुक्तता सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। ऐसे मानदण्डो का अन्वेषण 'समीक्षा' के कई लक्ष्यों में एक है।

"परन्तु किसी एक दृष्टिकोण से आबद्ध होना हमें तर्कसंगत नही लगता। विलबर स्कॉट ने साहित्यालोचन के क्षेत्र में प्रचलित पांच दृष्टिकोण को अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ का विषय बनाया है। वस्तुतः समालोचना के क्षेत्र में पांच नही, अनगिनत दृष्टिकोण हैं और रहेंगे। सत्समालोचक चाहें तो इनसे एक संतुलित समंजित दृष्टिकोण का निर्माण कर सकते हैं—ऐसे दृष्टिकोण का निर्माण जो स्वस्थ, अरोचकी एवं तलस्पर्शी हो।"

इन दोनों संपादकीय टिप्पणियों को विस्तार के साथ उद्धृत करने का उद्देश्य यह दिखाना है कि कैसे 'समीक्षा' ने अपना लक्ष्य और आदर्श सुस्पष्टता के साथ आरंभ में ही निर्धारित कर लिया था। 'समीक्षा' के तीस वर्षों के कार्यकाल मे उक्त लक्ष्य और आदर्श से विचलन हुआ ही न हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर हम इससे दृढ़तापूर्वक जुड़े रहे हैं, यह हमारा दावा है। हमारी यह भरपूर कोशिश रही है कि स्वयं द्वारा निर्धारित मानदण्डों का निष्ठापूर्वक पालन किया जाए।

यों तो 'समीक्षा' के प्रवेशांक में लगभग दस समीक्षकों ने, जो सभी स्थानीय थे, इकतीस पुस्तकों की समीक्षाएं की थी, पर इनमें से कम-से-कम चार समीक्षक तो निश्चित रूप से ऐसे हैं जो बाद में समीक्षा और आलोचना के क्षेत्र मे अपनी पहचान बनाने में समर्थ हुए हैं। अंक 2-3 (संयुक्तांक) में जो नए समीक्षक-परिवार में सम्मिलित हुए उनमें कुमार विमल, बिजेन्द्र नारायण सिह और मधुरेश उल्लेखनीय हैं। अमरनाथ सिन्हा ने भी इसी अंक से समीक्षा में लिखना शुरू किया था। इनमें प्रथम दो और चौथे समीक्षक तो बिहार के थे, पर मधुरेश बिसौली (उ.प्र.) के थे। इस प्रकार समीक्षा-परिवार के समीक्षकों का क्षेत्र-विस्तार हुआ। स्वयं आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने भी अज्ञेय के प्रसिद्ध कविता-संग्रह 'कितनी नावों में कितनी बार' की समीक्षा की। अंक-4 उल्लेखनीय नए समीक्षको में रामधारी सिह 'दिनकर' परमेश्वरी लाल गुप्त, नागेश्वर लाल, सिद्धनाथ कुमार, रामवचन राय आदि प्रमुख थे। इससे स्पष्ट है कि 'समीक्षा' को सजग और सुधी समीक्षकों का अच्छा-खासा सहयोग मिला। इनमें से अधिकतर समीक्षक तो विश्वविद्यालयों या कॉलेजो मे अध्यापक थे, पर कुछ समीक्षक ऐसे भी थे जो अभी शोधकार्य कर रहे थे और जो बाद में अध्यापन कार्य से भी जुड़े और समीक्षा और आलोचना के क्षेत्र मे भी यश प्राप्त किया।

फिर भी हम स्थिति से संतुष्ट नही थे और अपनी समस्याओं के बावजूद, उसे सुधारने में लगे हुए थे। इसका पता प्रथम वर्ष के चौथे अंक की आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा की संपादकीय टिप्पणी से चलता है। उन्होंने लिखाः "कई मित्रों ने संकेत किया है कि हमारे समीक्षक स्थानीय अधिक हैं। इन्हें व्यापक बनाना चाहिए। हम इस सुझाव से सहमत ही नही, स्वयं समुत्सुक भी हैं कि हमारे समीक्षकों की परिधि अखिल भारतीय हो। किंतु इसमें जो कठिनाइयां हैं उन्हे हम निस्संकोच भाव से आपके सामने रखना चाहते हैं। पहली बात तो यह कि समीक्षा किसी पूंजीपति की पत्रिका नही है; उसकी पूंजी है आपका स्नेह। अतः जहां पैसो की अपेक्षा होती है वहां हमें बहुत सोच-समझकर कदम उठाना पड़ता है। समीक्षार्थ दूर-दूर पुस्तकें भेजना व्यय-साध्य है और हम डाक व्यय पर अधिक खर्च करने की स्थिति मे नहीं हैं।..... हम नही भेज सकते, यह तो है ही। इसी कारण से प्रकाशक भी अपनी पुस्तकें हमारे पास समीक्षार्थ भेजने में संकोच का अनुभव करते हैं।

परिणामतः बहुत सारी पुस्तके हमें प्राप्त नही हो पाती। यह हमारी पहली कठिनाई है। दूसरी कठिनाई यह है कि डाक व्यय का दुर्वह भार उठाकर भी हमने पुस्तकें पटना से बाहर समीक्षार्थ भेजी पर समय पर समीक्षाएं प्राप्त नही हुई, यहां तक कि स्मारक पत्रो के उत्तर भी प्राप्त नही हुए। इससे 'समीक्षा' के मुद्रण का कार्य बाधित हो-हो गया है। द्रव्य और समय दोनो का व्यय करने पर भी हाथ लगा है शून्य। चूंकि 'समीक्षा' मे एक निश्चित अवधि में प्रकाशित पुस्तकों की ही समीक्षा की व्यवस्था है। अतः जिन पुस्तको की समीक्षा नही छपती वे सदा के लिए छूट जाती है। यह घाटा नीति और उपयोगिता—दोनों ही दृष्टियों से ऐसा है जिसे हम उठाना नही चाहते। फिर भी, हम इस ओर से उदासीन नही है।

समीक्षा को एक और अनुभव हुआ है। जिन पुस्तकों की प्रशंसात्मक समीक्षा नही छपी, उनके लेखक और प्रकाशक खिन्न हो गए। प्रश्न है कि *समीक्षा* में समीक्षा निकले या प्रशंसा? *समीक्षा* यदि विज्ञापन पत्रिका बन जाए तो उसका उद्देश्य ही खंडित हो जाएगा और हमारा विश्वास है कि आप इसे निश्चित ही पसंद नही करेगे। वस्तुतः संतुलित और निष्पक्ष समीक्षा तो लेखक और प्रकाशक दोनो के लिए लाभकर है। लेखक जान पाता है कि उसकी रचना किस कोटि की उतरी, उसके संबंध में पाठको की क्या धारणा हुई। प्रकाशक को पता लगता है कि उसके प्रकाशन कैसे हो रहे हैं? प्रकाशक प्रत्येक विषय का ज्ञाता नही होता। प्रकाशन के योग्य पुस्तको का वह सही चुनाव कर सके, इस दिशा मे उसकी सहायता कर *समीक्षा* उसका लाभ ही करती है वरना जिस किसी पुस्तक को प्रकाशित कर वह घाटे मे पड़ सकता है। जिसका अभिनंदन होना चाहिए उसे लेकर खेद किया जाए, यह तो और भी खेदकर है।"

यह देखकर आश्चर्य होता है कि *'समीक्षा'* की जो समस्याएं आज से तीस वर्ष पूर्व थी वे आज भी ज्यों की त्यो हैं—आर्थिक तगी, निष्ठावान समीक्षकों का अभाव, प्रकाशको की उदासीनता, पत्रिकाओ के पाठको की कमी, लेखकों की असहिष्णुता, सरकार की डाक-नीति आदि। अतः इन संपादकीय टिप्पणियों की प्रासंगिकता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसके बावजूद *समीक्षा* निकलती ही नही रही है, वरन अपने घोषित उद्देश्यों का अनुपालन भी करती रही है। आज का समीक्षक समुदाय और साहित्यिक पत्रिकाएं अनेकानेक गुटो में बंटी हुई है। संपादक पहले ही तय कर लेते हैं कि किस लेखक को गिराना और किसे आसमान पर चढ़ाना है। तदनुसार पुस्तक विशेष की समीक्षाएं करायी जाती है और लेखक को पुरस्कार आदि दिलाने की भूमिका तैयार की जाती है। उन आधारों को उजागर करने की कोई आवश्यकता नही जिन पर समीक्षकों और रचनाकारों के गुट बनते-बिगड़ते हैं। इसे प्रायः सब जानते हैं। पर *समीक्षा* के संबंध में कोई यह नही कह सकता कि इसका भी कोई गुट है। *समीक्षा* मे पुस्तकों और उनके लेखकों का

मूल्यांकन उनके साहित्यिक गुणों के आधार पर किया जाता है, इस कारण साहित्य-मठो के महन्त प्रायः समीक्षा से नाराज ही रहते है । पर हमे किसी की नाराजगी से अधिक अपने लक्ष्य की चिन्ता है । गुटों से जुड़े समीक्षक अकसर अपने विरोधी गुटो के लेखको के साथ न्याय नही कर पाते । अतः हम भी उनसे समीक्षा लिखाने के लिए बहुत समुत्सुक नही रहते । *समीक्षा* के अधिकतर समीक्षक नये होते हैं । *हंस* की एक टिप्पणी में भारत भारद्वाज ने खेद व्यक्त किया था कि *समीक्षा* को अब अच्छे समीक्षको का सहयोग नही मिल रहा । यह बात सच है, पर 'अच्छे' समीक्षक की हमारी अपनी अवधारणा है । हम 'अच्छा' समीक्षक उसे मानते है जो ईमानदारी से, पुस्तक को ठीक से पढकर, उस पर अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करे । किसी भी वाद या गुट से प्रतिबद्ध और अनेक कार्यो में व्यस्त समीक्षक ऐसा नही कर पाते । अतः हम वैसे समीक्षको को अधिक महत्त्व देते है जिनके पास पुस्तक पढने का समय और जिनमे समीक्षा लिखने का उत्साह होता है । इन नये समीक्षको की साहित्यिक समझ और भाषा यत्किंचित कमजोर होने पर भी वे नाम के धनी, पर पूर्वग्रहग्रस्त समीक्षकों की तुलना मे समीक्ष्य पुस्तक के साथ अधिक न्याय कर पाते है । नये समीक्षको से समीक्षा लिखाने का एक और लाभ है । ये ही नए समीक्षक बाद मे प्रबुद्ध समीक्षक बनते है और मठाधीश समीक्षको के एकाधिकार को तोडते है । (यह अलग बात है कि उनमे से भी कुछ गुटबन्दी मे अधिक विश्वास करने लगते हैं ।) *समीक्षा* का एक उद्देश्य नए समीक्षको को साहित्य के क्षेत्र मे उतारना है, यह बात हम अपनी कई सपादकीय टिप्पणियो मे कह चुके है । हमें इस बात पर गर्व है कि *समीक्षा* से ही समीक्षा-लेखन आरंभ करने वाले कई समीक्षक आज राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित हो चुके हैं ।

समीक्षा के वर्ष-2 मे कई बाते लक्षित करने योग्य हैं । पहली बात यह कि जहां प्रथम वर्ष तक प्रत्येक अंक की पृष्ठ संख्या 48 रहा करती थी, वहां दूसरे वर्ष मे प्रत्येक अक की औसत पृष्ठ संख्या 80 हो गयी । इस प्रकार पहले वर्ष की तुलना मे दूसरे वर्ष मे लगभग डेढ़ गुनी संख्या में पुस्तको की समीक्षाएं/परिचय प्रकाशित हुए और सैकड़ों पुस्तको की सूचनाएं दी गयी । इस प्रकार *समीक्षा* हिदी प्रकाशन संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रदान करने वाली अन्यतम पत्रिका बन गयी । दूसरी बात यह कि समीक्षकों की संख्या मे उल्लेखनीय विस्तार हो गया । जहां प्रवेशांक में 'समीक्षा' को केवल 10 समीक्षकों की भागीदारी प्राप्त हुई थी, वहां प्रथम वर्ष के अंत तक समीक्षकों की संख्या 57 हो गयी । प्रवेशांक के बाद से ही *समीक्षा* को बिहार के बाहर के समीक्षकों का सहयोग प्राप्त होने लगा, जिनमें मधुरेश (बिसौली, बदायूं), के. सुब्रह्मण्यम (मद्रास), रत्नलाल शर्मा (दिल्ली), विनय (दिल्ली), महेंद्र भटनागर (ग्वालियर) आदि शामिल थे । दूसरे वर्ष *समीक्षा* को लगभग 80 समीक्षकों का सहयोग प्राप्त हुआ, जिनमें बिहार के बाहर के समीक्षकों की संख्या भी काफी बढ़ गयी । बिहार के बाहर के समीक्षकों में कृष्ण मुनि प्रभाकर (दिल्ली),

कौटिल्य उदियानी (दिल्ली), गणेशबिहारी शर्मा शास्त्री (डिब्रूगढ़), गिरिजा सिह (इलाहाबाद), नरेंद्र मोहन (दिल्ली), भगवती प्रसाद सिंह (गोरखपुर), मान्धाता ओझा (दिल्ली), रमाशंकर श्रीवास्तव (दिल्ली), रामदेव आचार्य (बीकानेर), रामप्रसाद दाधीच (जोधपुर), रामस्वरूप आर्य (बिजनौर), लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (इलाहाबाद), विजयेन्द्र स्नातक (दिल्ली), विवेकी राय (गाजीपुर), विष्णुकान्त शास्त्री (कलकत्ता) आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अनेक नाम आज के साहित्य में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए सुपरिचित हैं।

समीक्षा के अंकों को देखकर भौतिकी के प्रसिद्ध विद्वान् और टी.एन.बी. कॉलेज, भागलपुर के प्राचार्य डॉ. सुदर्शन प्रसाद सिह ने परामर्श दिया कि विषय सूची में समीक्ष्य पुस्तको के नाम के साथ-साथ उनके लेखकों के नाम भी मुद्रित होने चाहिए। हमने इस उपयोगी सुझाव को मान लिया और वर्ष-2, अंक-4 से इसका पालन शुरू हो गया। आज भी विषय सूची में पुस्तकों के साथ-साथ उनके लेखकों के नाम भी मुद्रित किये जाते है।

वर्ष-दो का एक उल्लेखनीय प्रसंग यह है कि *समीक्षा* का संपादक मंडल समाप्त हो गया। अनेक कारणों से डॉ. बचनदेव कुमार और डॉ. रामचंद्र प्रसाद का *समीक्षा* को संपादकीय सहयोग मिलना बंद हो गया और इस वर्ष के अंक चार में संपादक के रूप में केवल गोपाल राय (प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक) रह गए। पर प्रधान संपादक के रूप में आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा का अमूल्य सहयोग प्राप्त होता रहा।

जुलाई, 1969 में *समीक्षा* ने अपने तीसरे वर्ष में प्रवेश किया। इस वर्ष का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। अक्तूबर 1969 अंक में डॉ. नगेंद्र ने एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होने शिकायत की थी कि "अधिकांश समीक्षक दोष-दर्शन में अधिक सतर्क रहे हैं। प्रत्येक समीक्ष्य पुस्तक मे गुण भी अवश्य होते हैं जिनका उल्लेख पहले होना चाहिए। जिन पुस्तकों में गुणों का अभाव है, वे समीक्षा के योग्य नही रह जाती। जो लोग तेजाब से लिखने का दावा करते हैं, वे वास्तव में सर्जना नही कर सके, क्योंकि तेजाब का काम रचना नही, भस्म करना है।" (पृष्ठ-53) इसके जवाब में मैंने 'तेजाब से लिखी समीक्षाएं' शीर्षक से संपादकीय टिप्पणी लिखी थी (अप्रैल, 1970) जिसमें मैंने विनम्रता, पर दृढ़तापूर्वक डॉ. नगेन्द्र से अपनी असहमति (सभी बातों पर नहीं) व्यक्त की थी। इस संपादकीय टिप्पणी का तत्कालीन वरिष्ठ आलोचकों पर कोई अनुकूल प्रभाव नही पड़ा था। पर बहुतों ने इसका समर्थन किया था (देखें, पत्र-पत्रिकाएं, जुलाई 1970, पृ. 63-64)

अप्रैल, 1970 अंक से हमने एक नया प्रयोग शुरू किया। अब तक सभी पुस्तकों की, चाहे उनका स्तर जो भी हो, केवल एक-एक समीक्षा ही प्रकाशित हुआ करती थी। पर इस अंक से हमने महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की एकाधिक समीक्षाएं प्रकाशित करनी शुरू की। इस अंग में गिरिधर गोपाल कृत 'कन्दील और कुहासे' तथा रामदरश मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ' पर दो-दो समीक्षाएं प्रकाशित हुई। यह सिलसिला बहुत दिनों तक चला, जो अब

कतिपय व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण समाप्त हो गया।

दिसम्बर, 1970 में पटना में एक 'युवा लेखक सम्मेलन' आयोजित हुआ जिसके कर्त्ताधर्ता नन्दकिशोर नवल थे। आयोजन सम्पन्न हो जाने पर प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने *समीक्षा* के जनवरी, 1971 अंक में 'युवा लेखक सम्मेलन' शीर्षक से एक टिप्पणी लिखी, जिमसें सम्मेलन की प्रशंसा के साथ-साथ उसके कुछ पक्षो की आलोचना भी की गयी थी। पर यह आलोचना नवल जी को बर्दाश्त नही हुई और उन्होंने 'समीक्षा' से अपना संबंध तोड़ लिया। होना तो यह चाहिए था कि वे उक्त टिप्पणी का उत्तर देते जिसे *समीक्षा* में प्रकाशित किया जाता। ऐसा न करके उन्होने *समीक्षा* से सबंध तोड़कर अपने गुस्से का इजहार किया। सौभाग्य से यह गुस्सा ज्यादा दिनों तक नही रहा और उन्होने अप्रैल, 1973 से पुनः *समीक्षा* को अपना सहयोग देना शुरू कर दिया।

समीक्षा के वर्ष-5, अंक 1 (जुलाई 1971) में, अगले वर्ष से, इसे 'मासिक पात्रिका' बनाने की घोषणा की गई। इसके साथ ही प्रत्येक अंक में हिंदी साहित्य का वार्षिक समीक्षात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का निश्चय किया गया और हिंदी के जागरूक पाठको, समीक्षकों और शोधकर्त्ताओ से अलग-अलग विधाओं पर सर्वेक्षण लेख भेजने का अनुरोध किया गया। इसी वर्ष, जनवरी 1972 के अंग में, प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक ने डॉ. नगेन्द्र के उस भाषण की, जो 17 नवम्बर 1971 को, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के सत्रहवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिया गया था, आलोचना करते हुए तत्कालीन हिंदी समीक्षा की स्थिति पर प्रकाश डाला था। डॉ. नगेन्द्र का भाषण एकांगी और तथ्यों के प्रतिकूल था, इसलिए उसकी आलोचना निहायत जरूरी थी।

पूर्व घोषणा के अनुसार *समीक्षा* के वर्ष छह का प्रथम अंक मी, 1971 में 'मासिक' रूप में प्रकाशित हुआ। पत्रिका के आकार मे भी परिवर्तन हो गया। पहले वह क्राउन अठपेजी आकार में प्रकाशित होती थी, अब उसका आकार कुछ छोटा—रॉयल हो गया। इस अंक के सम्पादकीय मे आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने लिखा, '*समीक्षा* का प्रकाशन जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर किया गया था वह हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐतिहासिक महत्त्व का था, सर्वथा अभूतपूर्व। पुस्तक-समीक्षा को स्वतंत्र कला और विधा के रूप में विकसित करने का श्रेय *समीक्षा* को मिलेगा और हिंदी पत्रिकारिता का भावी इतिहास लेखक *समीक्षा* की देन को स्वीकार करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। त्रैमासिक से मासिक प्रकाशन पर उतरना जोखिम से खाली नही है, किन्तु ज़िनके सहयोग से त्रैमासिक *समीक्षा* ने अनेक बाधाओं और कठिनाइयों के बीच अपनी प्रगति कायम रखी है उनके स्नेह का सम्बल पाकर *मासिक समीक्षा* और दृढ़ता से आगे बढ़ेगी और लंबी मंजिल तय करेगी, इसमें संदेह नही।

पूर्व घोषणा के अनुसार इस वर्ष से सर्वेक्षण लेखो का प्रकाशन भी आरंभ हो गया।

सर्वप्रथम इस वर्ष के अंक 3-4 (जुलाई-अगस्त, 1972) में रामदेव आचार्य और मदन केवलिया के सर्वेक्षण लेख प्रकाशित हुए। परवर्ती अंको में हरदायल कृत '1971 की हिदी कविता', मधुरेश कृत '1971 का हिदी उपन्यास', परमानंद श्रीवास्तव कृत 'आलोचना 1971', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कृत 'कविता की खोज, 1971 की कविता', गोपाल राय कृत 'काव्येतर हिदी साहित्य 1971', रमेश तिवारी कृत 'हिंदी कहानीः सातवां दशक' गोविन्द रजनीश कृत 'सातवें दशक की कविता', परमानन्द श्रीवास्तव कृत 'हिदी आलोचना 1971' आदि लेख प्रकाशित हुए।

अब तक 'समीक्षा' को लगभग सौ समीक्षको का सहयोग सुलभ हो चुका था जिनमे से कुछ प्रायः प्रत्येक अंक मे और कुछ थोड़ा बहुत अंतराल देकर समीक्षां लिख रहे थे।

सर्वेक्षण लेखों के प्रकाशन का सिलसिला वर्ष-7 में भी जारी रहा। इस वर्ष गिरीश रस्तोगी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, गोपाल राय, हरदयाल, रघुवर दयाल वार्ष्णेय, मधुरेश, परमानन्द श्रीवास्तव आदि के सर्वेक्षण लेख प्रकाशित हुए।

सर्वेक्षण लेखों का प्रकाशन-क्रम वर्ष आठ मे भी चलता रहा। कितु इस वर्ष *समीक्षा* की सबसे उल्लेखनीय घटना 'दिनकर स्मृति अंक' का प्रकाशन थी। 24 अप्रैल, 1974 को दिनकर जी का स्वर्गवास हो गया था और हमने उनकी श्रद्धांजलि के रूप में दिनकर स्मृति अंक निकालने की घोषणा की थी। *समीक्षा* का वर्ष आठ, अंक 11-12 (मार्च-अप्रैल, 1975) दिनकर पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ। यह अंक इसलिए भी विशेष उल्लेखनीय था कि इसमें पहली बार दिनकर के जीवन तथा उनकी रचनाओं के संबंध में इतनी पूर्ण और प्रामाणिक जानकारी प्रदान की गयी थी। दिनकर की स्फुट कविताओं की तिथिक्रमीय सूची इस अंक की एक अन्यतम विशेषता थी। पर दुर्भाग्यवश इस अंक के प्रकाशन में जितना श्रम और धन लगाया गया था उसके अनुरूप हिदी जगत मे इसका प्रचार नही हुआ। इस अंक की बहुज-सी प्रतियां अनबिकी रह गयी और अन्ततः दीमकों के पेट और कबाड़ी की गाड़ी में शरण पाने को मजबूर हुई।

सन् 1975 ई. तक आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा की व्यस्तता (वे उस समय पटना विश्वविद्यालय के कुलपति थे) इतनी बढ़ गयी थी कि *समीक्षा* के लिए समय देना उनके लिए बिलकुल ही संभव नहीं रह गया था। अतः उन्होंने *समीक्षा* के प्रधान संपादक का पद छोड़ने का निर्णय किया। इस निर्णय का पालन होना ही था। पर शर्मा जी ने अब तक *समीक्षा* को इतना सुदृढ़ आधार प्रदान कर दिया था कि प्रस्तुत पक्तियो के लेखक को यह कठिन दायित्व निभाने में कोई विशेष कठिनाई नही हुई। प्रसन्नता इस बात से हुई कि आचार्य जी ने *समीक्षा* के लिए गठित 'परामर्श समिति' सदस्य के रूप में शामिल होना स्वीकार कर लिया। इस परामर्श समिति के अन्य सदस्य हुए डॉ. विजयेंद्र स्नातक, डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित, डॉ. रामचंद्र प्रसाद और डॉ. वचनदेव कुमार।

समीक्षा के ग्यारहवें वर्ष में एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ कि सपादक का नाम गोपाल राय से बदलकर 'गोपाल' हो गया। इस परिवर्तन का एक सैद्धांतिक आधार था। इस वर्ष के अंक 5-6 (सितम्बर-अक्तूबर, 1977) मे संपादक ने 'संपूर्ण क्राति: एक और नारा' शीर्षक टिप्पणी लिखी जिसमें उसने तथाकथित 'सम्पूर्ण क्रांति' की सफलता पर संदेह करते हुए भी, पहले 'संपूर्ण क्रांति' की व्याख्या और फिर उसे सफल बनाने के लिए सुझाव दिये। उसका एक सुझाव यह था कि सपूर्ण क्रान्ति के सामाजिक पक्ष के तहत जातियां समाप्त की जाए और इसके प्रथम चरण के रूप मे संपूर्ण क्राति के नेता अपने नामो से जुड़ी उपाधियों का त्याग करे। सुझाव देने के साथ-साथ संपादक को लगा कि पहले उसे स्वयं ही इस पर अमल करना चाहिए और उसने अपने नाम से 'राय' की पदवी हटा दी। इसके बाद 'समीक्षा' के संपादक तथा लेखक के रूप मे उसका नाम 'गोपाल' ही छपने लगा।

एक दशक समाप्त होते-होते *समीक्षा* के स्वरूप में एक प्रकार की स्थिरता आ गयी। कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन होते रहे और पुराने समीक्षकों के साथ अनेक नए समीक्षक भी *समीक्षा* को अपना सहयोग देते रहे।

वर्ष तेरह मे *समीक्षा* पुनः मासिक से त्रैमासिक हो गयी। वस्तुस्थिति यह थी कि विगत कुछ वर्षों से *समीक्षा* घोषित रूप में 'मासिक' होकर भी 'त्रैमासिक' रूप में निकल रही थी। पर 'मासिक' या 'त्रैमासिक' रूप में *समीक्षा* को निकालना हमारे लिए मुश्किल हो रहा था। अतः हमने निर्णय किया कि भविष्य मे *समीक्षा* त्रैमासिक रूप में ही निकले।

वर्ष-18, अंक-1 से सत्यकाम ने सहायक संपादक के रूप मे योगदान करना आरंभ किया। वर्ष-19, अंक-3 (अक्तूबर-दिसम्बर 1985) से वे सह संपादक मनोनीत हुए और तब से आज तक वे इस पद का दायित्व संभाले हुए है।

वर्ष-18 से ही समीक्षको की सूची में जुड़ने वाले नये नामो में कुछ कमी आती दिखाई देती है। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि अब तक *समीक्षा* से इतने अधिक समीक्षक जुड़ चुके थे कि नये समीक्षको के प्रवेश के लिए अधिक गुंजाइश नही रह गयी थी। दूसरा कारण प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की विश्वविद्यालय व्यस्तता और युवा समीक्षकों से उसका अपरिचय भी हो सकता है। इस कमी को दूर करने के लिए ही सत्यकाम को सह संपादक का कार्यभार सौंपा गया और वे इस कार्य को संपादित भी कर रहे हैं। वर्ष-22 के प्रथम अंक (अप्रैल-जून, 1989) से *समीक्षा* का दूसरा कार्यालय दिल्ली में खोला गया और *समीक्षा* दिल्ली से ही छपने तथा वितरित होने लगी। संप्रति यही व्यवस्था चालू है।

इस वर्ष के अंक-1 (अप्रैल-जून 1989) में, अपने 'संपादकीय' मे प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक ने लिखा था: "इस अंक के साथ 'समीक्षा' अपनी यात्रा के बाईस वर्ष पूरे कर रही

है । इस बीच यह कई बार लड़खड़ाई है, कई बार इसकी सांस रुकते-रुकते बची है, पर न जाने कैसे वह आज तक न केवल अपना अस्तित्व बचाए हुए है वरन् सिर ऊंचा करके भी चल रही है । इसका श्रेय *समीक्षा* के उन पाठकों और लेखकों को है जो कही न कही अपने को इसके साथ गहराई से जुड़ा हुआ पाते हैं । इन पंक्तियों का लेखक समीक्षा की पूरी यात्रा में एक माध्यम भर रहा है । जब कभी 'समीक्षा' पर अर्थ संकट के बादल गहराये हैं इस 'माध्यम' ने उसके अदृश्य अनाम पाठकों से संवाद स्थापित किया है और *समीक्षा* को नया जीवन मिल गया है । आज भी कुछ ऐसी ही स्थिति है । कागज और मुद्रण की महंगाई आज साहित्यिक पत्रिकाओं को किस बेरहमी से मार रही है, यह बताने की आवश्यकता नहीं । जिन पत्रिकाओ को सरकार या किसी सस्था का संरक्षण प्राप्त है वे तो निश्चिन्त हैं, पर पाठकों के चन्दे पर चलने वाली पत्रिकाओं के सिर पर हमेशा नंगी तलवार लटकती रहती है । *समीक्षा* की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है । बाईस वर्षो तक सतत जारी रहने के बावजूद *समीक्षा* तीन-सवा तीन सौ से अधिक ग्राहक प्राप्त नही कर पायी है । *समीक्षा* की वर्तमान आर्थिक स्थिति यह है कि ग्राहकों के शुल्क से कागज, मुद्रण और डाक व्यय का खर्च भी नहीं निकल पाता । नही जानता कि इस दशा मे *समीक्षा* कब तक निकल पाएगी । यों किसी पत्रिका के लिए बाईस वर्षों की आयु कम नही होती और यदि वह बंद भी हो जाती है तो संपादक के रूप में प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक के लिए बहुत असंतोष की बात नही है । कितु अपने संपर्क मे आने वाले लोगों की बातो से लगता है कि अभी *समीक्षा* की उपयोगिता समाप्त नही हुई है । मै स्वयं भी *समीक्षा* की उपयोगिता को नकार नही पाता । कम-से-कम एक उपयोगिता तो *समीक्षा* की रही ही है कि इसके माध्यम से नये-नये समीक्षक प्रकाश में आते रहे हैं । *समीक्षा* नये समीक्षकों के लिए प्रशिक्षणशाला तो रही ही है । आज भी *समीक्षा* यह कार्य बखूबी कर रही है ।

समीक्षा के पच्चीसवें वर्ष के प्रथम अंक के 'संपादकीय' में हमने विगत चौबीस वर्षों की *समीक्षा* की प्रगति और समस्याओं का सिहावलोकन करते हुए लिखा था: "हमें इस बात से संतोष है कि *समीक्षा* विगत चौबीस वर्षों तक, कई प्रलोभनों के बावजूद, अपने मूल संकल्प और प्रकृति की रक्षा करने में सफल रही है । यह आज भी केवल समीक्षा की पत्रिका है । हमे इस बात से भी संतोष है कि *समीक्षा* शब्द हिदी में 'पुस्तक समीक्षा' का रूढ़ वाचक हो गया है । 1967 में यह स्थिति नही थी । तब *समीक्षा* पद का प्रयोग आलोचना या समालोचना के पयार्य के रूप मे होता था । आज शायद ही कोई आलोचना के अर्थ मे 'समीक्षा' में पद का प्रयोग करता हो । *समीक्षा* को इस बात का श्रेय भी दिया जा सकता है कि इसने समीक्षा को गंभीर लेखन का स्तर प्रदान किया । पहले पुस्तक-समीक्षा बाएं हाथ का लेखन मानी जाती थी । अधिक-से-अधिक वह पुस्तक परिचय का पर्याय थी । 'आलोचना' और 'कल्पना' जैसी कुछ पत्रिकाएं पुस्तक-समीक्षा को

गंभीरता से लेने का प्रयास करती थी, पर एक तो उनमें पुस्तक-समीक्षा के लिए बहुत कम स्थान निर्धारित होता था और दूसरे वे साहित्यिक गुटबन्दी से भी मुक्त नहीं थीं। *समीक्षा* ने पहली बार साहित्यिक गुटबंदी से सर्वथा मुक्त होकर केवल पुस्तक समीक्षा तक अपने को सीमित रखा। इसके परिणामस्वरूप *समीक्षा* में, पहले ही वर्ष में, 45 उपन्यासों, 18 कहानी-संग्रहों, 77 कविता पुस्तकों, 5 नाटकों, 30 आलोचना-ग्रंथों तथा 45 विविध विषयों की पुस्तको की समीक्षाएं और परिचय प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त 1967 ई. में प्रकाशित लगभग 175 नवीन पुस्तकों की सूचनाए् उपलब्ध करायी गयी। यह क्रम 1980 ई. तक चालू रहा। हम विनम्रता के साथ यह दावा कर सकते हैं कि 1967 ई. से 1980 ई. के बीच प्रकाशित हिंदी के नब्बे प्रतिशत रचनाओ की सूचनाए् और परिचय *समीक्षा* के अंकों में'हिंदी साहित्याब्द कोश' 1967-1980 मे भी आसानी से उपलब्ध हो जा सकते हैं। शायद ही इस अवधि में प्रकाशित हिंदी की किसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक की समीक्षा *समीक्षा* में न छपी हो। हमारा दृढ़ विश्वास है कि भविष्य मे 1967-80 ई. अवधि के हिंदी साहित्य के प्रामाणिक ज्ञान के लिए *समीक्षा* के अंक किसी भी शोधकर्त्ता या आलोचक के लिए अपरिहार्य होंगे।

"1980 तक हम प्रयास करते रहे कि हिंदी में नव प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक, चाहे उसका स्तर जैसा भी हो, *समीक्षा* मे समीक्षित या सूचित जरूर हो जाए। पर धीरे-धीरे नवप्रकाशित पुस्तकों की सूचनाएं एकत्र करना मुश्किल होता गया और बढती हुई महंगाई के कारण *समीक्षा* की पृष्ठ संख्या कम करना भी जरूरी हो गया। अतः 1981 से हमने नयी पुस्तकों की सूचना देने वाला स्तम्भ तो समाप्त कर ही दिया, समीक्ष्य पुस्तको के चुनाव पर भी ध्यान देना आरंभ कर दिया। साहित्येतर पुस्तकों तथा अनुवादों की समीक्षा मे कटौती कर दी गयी और हमने महत्त्वपूर्ण मौलिक पुस्तको की समीक्षा तक ही अपने को सीमित कर लिया। सम्प्रति हम इसी नीति पर चल रहे है।

समीक्षा की अनेक समस्याएं हैं। मुख्य समस्या आर्थिक है, यह तो अति स्पष्ट है। पर एक समस्या नयी पीढ़ी के युवको का लिखने-पढ़ने की तरफ से उदासीन होना भी है। नयी पुस्तकों की उत्तरदायित्व और सम्यक् बोध के साथ लिखी गयी समीक्षाएं प्राप्त करना आज भी बहुत ही मुश्किल हो गया है। अनेक युवा समीक्षक नयी पुस्तकें लेने के तो इच्छुक रहते हैं, पर समीक्षा लिखने में इतने हीले-हवाले करते है कि सपादक होना किसी पूर्वजन्म का अभिशाप-सा प्रतीत होने लगता है।"

इससे समीक्षा की स्थिति और समस्याओ पर सम्यक् प्रभाव पड़ता है। वर्ष-25 के द्वितीय अंक मे संपादक के नाम में एक परिवर्तन दिखाई दिया। जैसा हम पहले लिख चुके हैं, *समीक्षा* के वर्ष-11, अंक 5-6 (सितम्बर-अक्तूबर, 1977) में हमने अपने नाम से 'राय' पदवी निकाल दी थी और संपादक का नाम गोपाल छपने लगा था। पर जिन

परिस्थितियों में और जिस कारण से, हमने अपने नाम से 'राय' उपाधि हटायी थी, वे इन चौदह वर्षों में हास्यास्पद हो गए थे। अब तक 'संपूर्ण क्रांति' पद का मखौल बन चुका था और उसकी पुष्टि में, सैद्धांतिक जिद पर उपाधि-त्याग एक तमाशा जैसा प्रतीत होने लगा था। मुश्किल यह भी थी व्यावहारिक रूप में गोपाल राय नाम इतना रूढ़ हो चुका था कि उसके स्थान पर गोपाल नाम स्वीकृति प्राप्त नहीं कर पा रहा था। एक साथ गोपाल और गोपाल राय दोनों नाम चलने से साहित्य जगत मे जब-तब भ्रम भी पैदा हो रहा था। अतः हमने अपने नाम के साथ पुनः राय जोड़ने की घोषणा कर दी और समीक्षा के आवरण पृष्ठ पर संपादक का नाम गोपाल राय छपने लगा। हिदी संसार ने इसे अत्यंत सहज रूप मे ग्रहण किया, जिसका अर्थ यह है कि हमारा यह निर्णय सही था।

इस वर्ष के अंक तीन से एक और नया सिलसिला, पुस्तक-परिचय का, शुरू किया गया। वस्तुतः यह क्रम बिल्कुल नया न होकर एक पुराने क्रम का ही तनिक परिवर्तित रूप था। *समीक्षा* मे आरंभ मे ही समीक्षार्थ प्राप्त सभी पुस्तकों की 'समीक्षा' या 'परिचय' प्रकाशित किए जाते थे। पर 'समीक्षा' और 'परिचय' इस प्रकार साथ-साथ प्रकाशित होते थे कि उनमें अन्तर करना मुश्किल हो जाता था। बाद में जब *समीक्षा* की पृष्ठ संख्या कम करने की बाध्यता हुई तो हमने 'परिचय' वाली समीक्षाओ का प्रकाशन समाप्त कर दिया फिर भी 'समीक्षा' और 'परिचय' का घालमेल बना ही रहा। श्रेष्ठ पुस्तको के साथ-साथ सामान्य पुस्तकें भी समीक्षार्थ प्राप्त होती रही और उनकी बिलकुल ही उपेक्षा कर देना उचित नही लग रहा था। अतः हमने निश्चय किया कि सामान्य स्तर की या साहित्येतर पुस्तकों का 'परिचय' या उनके प्रकाशन आदि की सूचना मात्र प्रकाशित की जाए। सहायक संपादक डॉ. सत्यकाम ने अपने संपादकीय मे ठीक ही लिखा कि "समीक्षा एक सृजन प्रक्रिया हैः पुस्तक परिचय का काम सूचना देना भर है। समीक्षा मे समीक्षक रचना और रचनाकार के धरातल पर उतरकर उसकी छानबीन करता है और जिस समीक्षा का जन्म होता है यह नया सृजन होता है। 'पुस्तक परिचय' मे कुछ नया नही रचना होता है।"

पुस्तक परिचय के लिए हमने नये पृष्ठ न जोड़कर समीक्षाओं के अंत मे बच गये स्थान का उपयोग करने का निश्चय किया। यह हमारी एक प्रकार की विवशता ही थी।

इस वर्ष के चौथे अंक से हमने एक नया स्तम्भ शुरू किया 'पत्रिकाओ के बहाने'। इस स्तम्भ की लोकप्रियता पाठकों से प्राप्त पत्रो से हुई है। इस स्तम्भ मे प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक समकालीन साहित्य, भाषा और समाज से जुडे ज्वलत प्रश्नों पर, जिनके सूत्र समकालीन पत्रिकाओं से प्राप्त होते हैं, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इस स्तम्भ के अंतर्गत अब तक 'साहित्य में लालूवाद', 'जातिवादी चिन्तन का दुर्भाग्य', 'भारतीय उपन्यास की अवधारणा', 'ऊर्ध्वमूल चिन्तन', 'नान्यः पन्था', 'दुखती रग', 'भाषा संबंधी सोच का नजरिया', 'क्या हिन्दी साहित्य हिदू सांप्रदायिकता का शिकार है', 'उर्दू के लिए

देवनागरी लिपि', 'अंग्रेजीपरस्तों का गुस्सा और गम', 'क्या हिंदी की समृद्धि के लिए बोलियों की बलि जरूरी है' आदि टिप्पणियां प्रकाशित हुई हैं, जो काफी उत्तेजक और चर्चित रही है।

वर्ष 25 का अंतिम अंक, जिसे मार्च, 1991 में प्रकाशित होना चाहिए था, 20 अप्रैल, 1992 को प्रकाशित हुआ—एक वर्ष से भी अधिक विलम्ब से। वस्तुतः *समीक्षा* के अंकों के प्रकाशन मे विलम्ब का सिलसिला वर्ष-20 से ही शुरू हो गया था। इसका प्रमुख कारण तो आर्थिक ही था पर एक कारण प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक की 'विश्वविद्यालीय व्यस्तता' भी थी। कारण जो भी रहे हों, तथ्य सामने यह था कि *समीक्षा* के अको का प्रकाशन एक साल पीछे चल रहा था और उसे अद्यतन करने के साधन हमारे पास नही थे। अतः हमने अप्रैल 1992 – मार्च 1993 को अन्तराल वर्ष घोषित कर दिया और अगले अंक को हमने अप्रैल-जून 1993 का अंक माना। पर जिल्द या वर्ष संख्या नही बढ़ायी गयी। इस तरह *समीक्षा* की जिल्दो का क्रम अभग रहा।

वर्ष-25 से *समीक्षा* परिवार में शामिल होने वाले नये समीक्षको की रफ्तार बढ़ती हुई दिखाई देती है। इस वर्ष के नये समीक्षको में आदित्य प्रचंडिया (अलीगढ़), केदारनाथ 'कोमल' (दिल्ली), देवेन्द्र कुमार (दिल्ली), पशुपतिनाथ उपाध्याय (अलीगढ), फुलवन्त कौर (कलकत्ता), भीखी प्रसाद 'वीरेन्द्र' (सिलीगुडी), मंजु गुप्ता (दिल्ली), महेन्द्रनाथ दुबे (आगरा), श्री रंजन सूरिदेव (पटना), सत्यप्रकाश सिह (अलीगढ), सोमदत्त शर्मा (दिल्ली), मो. हारून रसीद खान (गाजीपुर) आदि। इसी प्रकार वर्ष 26 के नये समीक्षको मे कृष्ण शलभ (सहारनपुर), चंचल चौहान (दिल्ली), चमन लाल (पटियाला), जितेन्द्र धीर (कलकत्ता), देवेन्द्र नेपाली (गढवाल), शशिप्रभा शास्त्री (देहरादून), श्रीवत्स (दिल्ली); वर्ष 27 के नये समीक्षको मे अश्विनी पाराशर (दिल्ली), कामिनी बाली (दिल्ली), पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी (उज्जैन), माया प्रसाद (रॉची), मृगेन्द्र राय (मुम्बई), राजी सेठ (दिल्ली), वन्दना राय (जगदलपुर), श्याम कश्यप (दिल्ली), सत्यकेतु साकृत (कटनी), हरीश कुमार सेठी (दिल्ली); वर्ष 28 के नये समीक्षको में अनीता राय (वाराणसी), अनुभा (दिल्ली), अल्पना (पंचमढी), ओम निश्चल (वाराणसी), गुरुचरण सिह (दिल्ली), प्रकाश मनु (फरीदाबाद), महेन्द्र प्रसाद सिह (दिल्ली), विश्वेश्वर प्रसाद सिह (गया), रामजन्म शर्मा (दिल्ली), सुमित्रा अग्रवाल (मुम्बई), हरिमोहन (गढवाल) तथा वर्ष-29 के नये समीक्षकों में कैलाश नीहारिका (दिल्ली), गोविन्द अक्षय (हैदराबाद), कृष्णचन्द्र गुप्त (मुजफ्फर नगर), मंजु पुनीत (दिल्ली), रमेश तैलंग (दिल्ली), शैलेद्र चौहान (फरीदाबाद), सजना कौल (श्रीनगर), संजीव ठाकुर (दिल्ली) आदि उल्लेखनीय हैं।

वर्ष-28 में मुद्रण में हुआ परिवर्तन उल्लेखनीय है। इस वर्ष का अंक चार *'कम्प्यूटर प्रिटिग'* तकनीक से प्रकाशित हुआ और अब *समीक्षा* इसी आधुनिक मुद्रण तकनीक से

मुद्रित हो रही है। इससे निश्चय ही *समीक्षा* का मुद्रण व्यय अधिक हो गया है, पर मुद्रण की पुरानी तकनीक को तो समाप्त होना ही है। *समीक्षा* की नयनाभिरामता तो इस अंक से बढ़ ही गई, बहुतों के लिए यह आश्चर्य और ईर्ष्या की बात भी हुई। पर पाठकों ने इसका स्वागत किया। डॉ. प्रभा खेतान ने इस अंक का पूरा मुद्रण व्यय देकर *समीक्षा* के लड़खड़ाते पांवों के लिए सुस्ताने का अवसर प्रदान कर दिया। जहां संकल्प-शक्ति है, वहां सहायता भी कही न कही से मिल ही जाती है।

यह है *समीक्षा* का तीन दशको का इतिहास। हमे विश्वास है, यह इतिहास और भी लम्बा होगा। हमारा प्रयास *समीक्षा* के पूर्व निर्धारित उद्देश्य को उसकी पूर्णता तक पहुचाना तो है ही, साथ ही हम समीक्षा के नये क्षितिजो के उद्घाटन के लिए भी सदा सक्रिय है। □

'महाभारत' के रूसी अनुवादक ब्लादीमीर इबानोविच कल्यानोव

डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

भारत और रूस के साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संबंध बहुत पुराने हैं। दोनों देशों ने एक दूसरे की धरोहर को जानने का प्रयत्न किया है। एक ऐसे ही प्रयत्न का चित्रण कर रहे है डॉ. वीरेन्द्र शर्मा।

अक्तूबर' 79 से अक्तूबर' 82 तक मेरा तत्कालीन सोवियत संघ में प्रवास रहा। उन दिनों मैं भारतीय दूतावास मास्को में द्वितीय सचिव था। उस दौरान रूस मे भारत विद्या के अध्ययन-अध्यापन, शोधकार्य आदि की परम्पा और इतिहास तथा वहां के भारतवेत्ताओ के सम्बन्ध में विवरण-सामग्री एकत्रित करते हुए मेरा संपर्क प्रो. बी. इ. कल्यानोव (कल्याण मित्र) से हुआ। पहले ही मिलन मे, पहली ही दृष्टि मे जो आत्मीयता जुड़ी, वह वैसी की वैसी अब तक बनी हुई है।

तत्कालीन लेनिनग्राद (अब सेंट्स पीटर्सबुर्ग) के निवासी प्रो. कल्याण मित्र से मिलने का सुयोग मुझे सन् 1981 के सितम्बर-अक्तूबर महीने में हुआ। वे कृपा करके मेरे होटल में पधारे। बड़ी लम्बी वार्त्ता हुई—साहित्यिक, सांस्कृतिक। लेनिनग्राद प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान में प्राचीन भारतवेत्ताओं के योगदान, संस्थान मे भारत विषयक शोधकार्य आदि के सम्बन्ध में बातचीत होती रही। उनके संस्कृत ज्ञान, गहन अनुशीलन, उनकी निष्ठा, उनकी विद्वता, सहजता, सरलता, बाल-सुलभ भावात्मक उदारता—उनके व्यक्तित्व

में रमे-बसे अनुराग से इतना प्रभावित हुआ, अभिभूत हुआ कि समय कैसे बीत गया—पता ही नहीं चला। दोपहर को बैठे थे, कब शाम हो गई—ध्यान ही नही रहा—पूरी बातचीत में काफी हार्दिक मधुरिमा थी। दूसरे दिन मै उनके घर पर भी गया।

इस सबका किचित् उल्लेख मैंने अपने लेख—'रूस मे महायज्ञ—महाभारत का अनुवाद'—में किया है जो दैनिक हिन्दुस्तान (नई दिल्ली) के रविवासरीय संस्करण में 20 दिसम्बर 1981 को प्रकाशित हुआ था। मैंने लेख की प्रति प्रो. कल्याण मित्र के लिए भेज दी थी। वे गदगद हो गये थे। जून 1994 में मैं अशगाबात पहुंचा। वहाँ पहुंचकर प्रसिद्ध भारतवेत्ता और रूसी में 'महाभारत' के प्रसिद्ध अनुवादक डॉ. बोरिस ल्योनिदविच स्मिर्नोव (जन्म 15 दिसम्बर 1891–निधन 2 मई, 1967) के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी इकट्ठी करने मे लग गया। अशगाबात मे आकर मुझे इस बात से अतिशय आनंद मिला कि डॉ. स्मिर्नोव का कार्यक्षेत्र अशगाबात ही था। यो तो सामान्य रूप से मुझे डॉ. स्मिर्नोव के 'महाभारत' के रूसी अनुवाद का पता था किन्तु उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में इतनी निकटता से जानने का अवसर मिलेगा, इसकी मुझे आशा नही थी। आने के बाद इस क्षेत्र मे कुछ पढ़ने-लिखने की प्रेरणा हुई।

डॉ. स्मिर्नोव की स्मृति ने डॉ. कल्याण मित्र से पुनः सम्पर्क करने के लिए अभिप्रेरित किया। यो तो अन्तर्मन मे प्रो. कल्याण मित्र के व्यक्तित्व और कृतित्व का मुझे निरन्तर स्मरण बना रहा किन्तु अशगाबात मे आकर उनसे संपर्क करने की इच्छा अत्यन्त प्रबल हो गई। और एक दिन अपने पुराने कागज-पत्तर उलटते-पलटते उनके फोन नं. पता आदि को ढूंढ ही निकाला। मैंने फोन मिलाया। फोन स्वय प्रो. कल्याण मित्र ने उठाया।

—अलो-अलो ! उधर से आवाज आई।

—मै डॉ. कल्यानोव से बात करना चाहता हूँ—मैंने कहा। (बाते रूसी भाषा मे हुई)

—जी हां, मै बोल रहा हूं।

—क्या आप वही डॉ. कल्याण मित्र हैं जिन्होंने रूसी में 'महाभारत' का अनुवाद किया है ?

—हां, हां—मैं वही हूं।

—मैं वीरेन्द्र शर्मा बोल रहा हूं।

मैं बात पूरी भी नही कर पाया था कि वे कहने लगे—मैंने तो अपनी पुस्तक 'महाभारत के द्रोण पर्व' के अनुवाद में (सन् 1992 में प्रकाशित) आपका तथा आपके लेख का उल्लेख भी किया है। क्या आपने यह पुस्तक देखी है ?

मैंने कहा—धन्यवाद, मैंने यह पुस्तक अभी नही देखी है। किन्तु देखना अवश्य चाहता हूं। वह कैसे मिलेगी ?

मैंने उनके अनुवाद-कार्य पर साधुवाद किया—धन्यवाद दिया कि उन्हें मेरा स्मरण रहा तथा भगवान से उनके चिरायु होने की प्रार्थना की।

मेरे पास एक प्रति है, आपको भेज दूंगा।

मैंने दूसरे दिन एक पत्र उन्हें लिखा। लगभग दो महीने पश्चात् उनका आत्मीय पत्र (कुछ अंश संस्कृत में भी) मुझे प्राप्त हुआ। साथ में पुस्तक की प्रति भी।

प्रो. कल्याण मित्र की जिजीविषा, भारत तथा भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा एवं 86 (जन्म 21 जून 1908) वर्षीय होने पर भी कर्मठता, विलक्षण स्मरण-शक्ति आदि के सम्बन्ध मे जब विचार करता हूं तो मुझे सुखद आश्चर्य होता है—कैसे महान् व्यक्तित्व के धनी है प्रो. कल्याण मित्र। 14 वर्ष का अन्तराल होने पर भी नाम मात्र के संकेत से ही मुझे पहचान लेना उनकी उदारता एवं प्रतिभा क्षमता का प्रतीक है। उन्होने अपने पत्र में लिखा है कि अब वे अस्वस्थ रहने लगे है और उनकी दृष्टि क्षीण होने लगी है। उनकी श्रवण-शक्ति भी प्रभावित हुई है क्योंकि फोन पर मुझे कई बार दोहराना पड़ा और जोर से बोलना भी। किन्तु उनकी कर्मठता से आत्मिक संतोष मिला। कहने लगे कि मेरी आगली पुस्तक प्रेस मे है और आगे भी कार्य कर रहा हूं।

प्रो. कल्याण मित्र सभी भारत विद्या प्रेमियों-संस्कृत के अनुरागियों एव भारतवासियों के लिए प्रेरणास्पद है। संस्कृत के लिए समर्पित कोई विश्वविद्यालय, उच्च अध्ययन सस्थान उनका सम्मान करे, पुरस्कृत करे तो कृतज्ञता-ज्ञापन का प्रतीकात्मक संकेत होगा और निश्चय ही यह सत्कार्य शीघ्रातिशीघ्र होना चाहिए। क्योंकि ऐसे सम्मान एवं पुरस्कार के निश्चय ही वे सच्चे पात्र है—*भारत से भी दूर अवस्थित है।*

□

नेपाली साहित्य के महाकवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा का जीवन-दर्शन

डॉ. उषा ठाकुर

हमारा पड़ोसी देश नेपाल भी प्रख्यात साहित्यकारों की भूमि है। जीवन पर्यन्त रोग शोक और भूख से संघर्ष करने वाले लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा नेपाली साहित्य के युग द्रष्टा कवि हैं। युग की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक नब्ज पर उनकी गहरी पकड़ रही है।

नेपाली भाषा और साहित्य को समृद्धि प्रदान कर सफलता के शिखर तक पहुँचाने वाले महाकवि लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा नेपाली साहित्य की एक महान विभूति हैं। अपनी बहुमुखी साहित्यिक व्यक्तित्व के कारण नेपाली साहित्य के मूर्घन्य साहित्यकार के रूप में वे अमर तो है ही, अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक क्षेत्र में भी वे एक सशक्त महान् प्रतिभा के रूप में प्रतिष्ठित है।

सरस्वती के वरद् पुत्र महाकवि लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा का जन्म काठमांडू के दिल्ली बाजार मे सन् 1909 ई० में (वि. स. 1966) हुआ था तथा उनकी मृत्यु 50 वर्ष की उम्र में काठमांडू के पवित्र तीर्थस्थल पशुपतिनाथ के आर्यघाट में सन् 1959 ई० (वि. स. 2016) में हुई। साहित्य के कविता-विद्या में उनकी रुचि होते हुए भी साहित्य की विविध विधाओं में उन्होंने सफलता पूर्वक कलम चलाई। उन्होंने नाटक-3, कथासंग्रह-1, उपन्यास-1, निबन्ध संग्रह-2, समालोचना संग्रह-1, अनुदित प्रबन्ध संग्रह-1 तथा अनुदित नाटक-1

लिखी है। इसके साथ ही कविता क्षेत्र में लिखी गई उनकी कृतियों में महाकाव्य-6, खण्डकाव्य-21 तथा कविता-संग्रह-14 अर्थात् 41 ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

जीवन-पर्यन्त रोग, शोक और भूख के साथ उन्हें संघर्षमय जीवन व्यतीत करना पड़ा, फिर भी देवकोटा ने जीवन से कभी हार नही मानी। अपने कवि-कर्म को पूर्ण रूप से सार्थकता प्रदान करते हुए कवि के युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा रूप को पूर्णतया उन्होंने चरितार्थ किया। सच तो यह है कि असंतुलित सामाजिक व्यवस्था और अन्तर विरोधों ने उन्हे हमेशा असीम बल प्रदान किया। युग की अर्थनीति, राजनीति, समाजनीति, शिक्षा नीति, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य सभी क्षेत्रों में गहन चिन्तन-मनन करके समाज की अनेकानेक छोटी-बड़ी समस्याओ पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करके उन्होंने जो साहित्यिक अभिव्यक्ति दी, वह उनकी आत्मा की भीतरी आवाज थी, जो पूर्णतः सत्यता के बिल्कुल करीब थी। समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के लिए अपने स्वयं को मिटाकर मानव-जीवन को मंगलमय बनाने की दिशा मे उन्होने एक अविस्मरणीय उदाहरण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

विचारणीय प्रश्न है कि आखिर देवकोटा के व्यक्तित्व के भीतर वह कौन-सी प्रतिभा थी, वह कौन-सा जीवन-दर्शन था जिसके कारण आजीवन असह्य गरीबी सहकर भी उन्होंने सत्य, विवेक और ईमानदारी का पक्ष ही सदैव लिया, कठोर परिश्रम को ही सर्वोत्तम बताया। स्वतंत्रता, समानता और मानवता का पक्ष लिया तथा सम्पूर्ण संसार में विश्व-बन्धुत्व की भावना का प्रसार करने के लिए कृत-संकल्प रहे। कवि देवकोटा के जीवन-दर्शन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि उन पर एक ही नही, विभिन्न दर्शनो और दार्शनिको का प्रभाव है। वेद, पुराण, उपनिषद् से उनका कवि-व्यक्तित्व तो प्रभावित है ही, बुद्ध, नित्से, रूसो, मार्क्स, गांधी आदि के दर्शनों का भी उन पर प्रभाव है। साथ ही, पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन-मनन ने भी उन्हें सोचने-समझने की नई दिशा दी। कहने का तात्पर्य यह कि अनेक पोर्वोत्य और पाश्चात्य विचार-दर्शनो से प्रभावित होने के बावजूद भी हर जगह उनके विचारो में उनके निजीपन की गहरी छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। मानव-कल्याण के लिए उन्होंने विभिन्न दर्शनो के उपयोगी पक्ष को अपने जीवन-दर्शन में लेने की कोशिश की है। लेकिन उसे आंख मूंद कर स्वीकार नहीं किया है, बल्कि अपने भीतर के प्रकाश में पूरी तरह परख कर अपनी मौलिकता के साथ उन उपयोगी तत्त्वों को ग्रहण किया है।

कवि पुराण और अध्यात्मवाद का समर्थक होते हुए भी अपने जीवन-दर्शन में नवीनता का अन्वेषक है। ईश्वर में पूर्ण आस्था का पक्षपाती कवि परलोक की आकांक्षा के बजाय इसी लोक के गहरे प्रेम में बँधा है और जीवन के प्रति अपनी गहरी आस्था और प्रेम दर्शाता है। कवि जीवन से मुक्ति की चाहना नही करता।

"हामी मुक्ति चाहन्नौं रे ! बिऊँझी ऑउला । बिऊँझी ऑउला ।"

कवि के अनुसार, यदि मुक्ति की ही कामना करनी है तो जीवन से मुक्ति न चाहकर इस जगह की दुःख, दरिद्रता और असमानता से मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। मूल रूप में कवि आस्तिक कवि है, लेकिन उनकी यह आस्तिकता परम्परागत न होकर आधुनिक विचार-दर्शनों से प्रभावित है और उनकी मौलिक भावनाओ से समन्वित है। अपनी काव्य-रचनाओं में वे ईश्वर, प्रकृति और मानव के प्रति अपना दार्शनिक चिन्तन प्रस्तुत करते है, लेकिन उनके जीवन-दर्शन का मूल केन्द्र-बिन्दु विश्व-बन्धुत्व और विश्व मंगल कामना है जिनमें कवि की भावनाएं तदाकार दीख पड़ती है। उनकी कविता-यात्रा के प्रारम्भिक चरण से ही कवि की कविताओं में जो उदारता दीन-दुखियो के प्रति सेवा-भावना और कल्याण-कामना दीख पडती है, उनकी परवर्ती रचनाओ मे यही मानवतावादी भावना क्रमशः बढ़ती जाती है।

कवि की मान्यता है कि यह प्रकृति ही संसार की स्रष्टा है और हमारे दुःख-सुख की सहभागिनी भी। प्रकृति हमे सद्ज्ञान देती है, अच्छी राह दिखाती है साथ ही हमे सुख-शांति भी देती है। सृष्टि की उत्पत्ति इसी प्रकृति से होती है और प्रकृति मे ही विलीन हो जाती है। तात्पर्य यह कि मृत्यु अवश्यम्भावी है इसलिए मृत्यु से डरना नही चाहिए, बल्कि विवेकशील मनुष्य को मृत्यु का साहसपूर्वक सामना करना चाहिए तथा इस क्षणभंगुर जीवन को अधिकाधिक उपयोगी बनाने की दिशा में क्रियाशील होना चाहिए। ईश्वर के प्रति पूर्णतः आस्तिक कवि-हृदय अपने 'यात्री', 'मार्ग' और मृत्यु शय्या पर लिखी उनकी अन्तिम रचना 'संसार रूपी सुख स्वर्ग मित्र' मे भी ईश्वर के अस्तित्व को पूरी तरह स्वीकार किया है। अपने जीवन मे त्याग और सेवा को उन्होने सर्वोपरि महत्त्व दिया क्योंकि उनके अनुसार त्याग मे ही जीवन का सच्चा सुख है—

"खोज्छन सबै सुख भनी, सुख त्यो कहाँ छ ?
आफू मिटाई अरुलाई दिनु जहाँ छ।"

आशावादी कवि की मान्यता है कि जीवन में चाहे जितने भी कठोर संघर्ष आएं, मनुष्य को अपने भीतर आशा और विश्वास का संचार करते हुए हॅस-हॅसकर विपत्तियो का सामना करना चाहिए। मनुष्य के लिए प्रेम ही जिन्दगी है, परोपकार और सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। कवि के जीवन-दर्शन का मूल मंत्र यही मानव सेवा है क्योंकि कवि को पूर्ण विश्वास है कि—

"मानिसलाई मद्दत गर्नें स्वर्गमा पुग्ने छ।"

कवि के अनुसार, केवल मूर्ति-पूजा से, गरीब मनुष्यों को दुःख-कष्ट देकर मन्दिर दौड़ने से ईश्वर को खुश नही किया जा सकता। वास्तव में दीन दुःखी गरीब मनुष्यों की सेवा ही ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति भावना है। गरीब मनुष्य के कंधे पर चढकर मन्दिर जाने

वाले यात्री को लौटकर मानव-सेवा करने का सन्देश देते हुए कवि कहता है—

"फर्क-फर्क हे ! जाऊ समाऊ
मानिसहरू को पांऊ ।
मलम लगाऊ—आर्त्तहरू को
चहरयाइरहे को धाउ ।
मानिसहरू मैं ईश्वर को त्यो
दिव्य मुहार हँसाउ ।"

कवि शोषित-पीडित, दीन-दुःखी के हृदय मे ही ईश्वर का निवास बताता है। दीन-दुःखियों की सेवा से ही ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। कवि के अनुसार सुख की प्राप्ति के लिए स्वर्ग जाने की आवश्यकता नही, बल्कि दुःख, दैन्य, असमानता को दूर कर इसी धरा पर स्वर्ग की अवतारणा की जा सकती है। वस्तुतः यह कल्पना कवि की सुदूर व्यापिनी दृष्टि को द्योतक है।

कवि एकता और समानता का पुजारी है। वस्तुतः देवकोटा काव्य का मूल स्वर यही है कि समाज में सब लोग समान हो, कोई विभिन्नता न रहे। शोषितो के प्रति गहरी सहानुभूति कवि ने 'पूर्णया की स्वास्नी', 'कामी दाई', 'गरीब', 'एक सुदरी च्यामिनी प्रति' और 'सुन्दरी वेश्या प्रति' शीर्षक कविताओं मे अभिव्यक्त किया है। कवि के अनुसार धार्मिक षड्यन्त्रकारियो ने समाज को छोटी-बडी जातियो मे बाँटकर जनता को विभाजित और दिग्भ्रमित करने की कोशिश की है, जबकि कवि के शब्दो में सच्चाई यही है कि—"मानिस ठूलो दिल ले हुन्छ, जातले हुंदैन।" श्रमिकों को प्रोत्साहित करते हुए कवि ने उन्हे 'सृष्टिकर्त्ता' कहकर संबोधित किया। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनम्' का आदर्श अपने समक्ष रखकर कवि ने निष्काम कर्म का सदेश अपनी 'किसान', 'गरीब', 'भिखारी', 'कामीदाई', जैसी अनेकानेक कविताओ के माध्यम से दिया है।

एक ओर यदि देवकोटा की रचनाओ मे शोषितो की दर्दनाक स्थिति और समाज में उनकी दुर्दशा का सजीव चित्रण है, तो दूसरी ओर अन्याय के प्रतिकार का आह्वान भी। अपने प्रारम्भिक काव्य-रचनाओं का आदर्शवादी कवि परिस्थितिवश धीरे-धीरे यथार्थवादी, सुधारवादी और प्रगतिवादी बनता गया। विभिन्न युगीन समस्याओं के समाधान के लिए कवि ने पाश्चात्य दर्शन और साहित्य का भी गहरा अध्ययन-मनन किया तथा युग और समय की मांग के अनुसार समाज मे व्याप्त अन्याय, दमन और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष के लिए जोरदार आह्वान करते हुए कवि ने देशवासियो के स्वाभिमान को ललकारा और कहा कि जब तक तुम स्वयं आवाज नही उठाओगे, संघर्ष नही करोगे, तुम्हे विजय नहीं मिलेगी। जनता को उद्बोधित करते हुए, उनकी सोई हुई चेतना को ललकारते

हुए कवि ने कहा—

"जंगल को कानून....

जसले हॉक्यो, उसको पाक्यो, कॉतरको हक थाक्यो

न लड़ी कोई हुन्न विजेता।"

इसी तरह 'सॉढे', 'झंझावीर', 'जित्नु छ साथी, जिलाउनु छ साथी' तथा 'पहाड़ी पुकार' जैसी अनेक रचनाओं में अन्याय के प्रतिकार के लिए कवि का भयंकर विद्रोही तथा क्रान्तिकारी रूप दीख पड़ता है—

'मानिस लाई चाहिने हक

न लिई छाड़दैनों

मर्नु त एक दिन अवश्यै पर्छ

पशु झैं न जिऊं

मानिस हुं भने, मानिस मैं जिऊं

मानिस को हक लिउं।"

कवि की ऐसी ओजपूर्ण कविताएं जन-जीवन में क्रान्ति-चेतना और संघर्ष को उत्कर्ष प्रदान करती हैं। इस दृष्टि से कवि की 'झंझा प्रति' 'बाढ़ी की विष्णुपती', 'बाघले बच्चा किन खान्छ' जैसी कविताएं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। कवि ने एक ओर इन ओजपूर्ण कविताओं की रचना करके सुसुप्त जनता की चेतना को झंकृत किया, उद्बोधन के सन्देश दिए, वही 'दाल भात डुकु' जैसी रचनाओं द्वारा देश की अनेकानेक समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया, साथ ही 'पागल' जैसी कविताओं के द्वारा उन्होंने सामाजिक विकृतियों पर प्रहार करते हुए समाज मे सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया। इसी तरह 'रावण-जटायु युद्ध' जैसी कविता के माध्यम से कवि ने अपना जीवन-दर्शन स्पष्ट करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा कि असत्य और अन्याय जितना भी शक्तिशाली हो, अन्तिम विजय सदैव सत्य और न्याय की ही होती है।

कवि की मान्यता के अनुसार, साहित्य जीवन का प्रतिनिधि होना चाहिए और कवि को जनता का प्रतिनिधि। इसीलिए जन-भावना की कद्र करके, जन-जागरण के उद्देश्य से कवि ने जन लय "मन्याउरे' में 'मुनामदन' और 'पहाड़ी पुकार' जैसी रचनाओ का सृजन करके जन-जन के हृदय को जीत लिया।

निष्कर्षतः 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्' के उपासक कवि देवकोटा की लेखनी पूर्णतः विश्व-बन्धुत्व की भावना के प्रचार-प्रसार में समर्पित रही। समाज में व्याप्त विषमता को हटा कर कवि एकता और समानता लाने का आह्वान करता है तथा विश्व में बिखरी मानवता को एक सूत्र में बॉधकर इसी धरा को स्वर्ग बनाने की मंगलमय कामना करता है।

निश्चय ही पौर्वात्य और पाश्चात्य साहित्य, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, कला और संस्कृति के गहन चिन्तन-मनन और अध्ययन के कारण महाकवि का जीवन-दर्शन, अत्यन्त व्यापक और महान था। मानव-प्रेम और मानव-सेवा का मूल मंत्र लेकर मानवता के कल्याण के लिए उनका समर्पित कवि-व्यक्तित्व युग-युग तक हमें दिशा-निर्देशन देता रहेगा। ☐

संगीत का आठवां स्वर

अश्विनी कुमार दुबे

भारत ने संगीत को अनेक महान प्रतिभाएं दी हैं। इनमें 'बाबा' उस्ताद अलाउद्दीन खां का नाम संगीत क्षेत्र में उल्लेखनीय है। त्रिपुरा स्टेट के शिवपुर ग्राम में एक मध्यम मुस्लिम परिवार मे जन्मे बाबा का संस्मरणात्मक शब्द चित्र अश्विनी कुमार दुबे चित्रित कर रहे हैं।

माई का हार से बना 'मैहर'। यह म.प्र. का एक छोटा-सा कस्बा है। यहां मां शारदा का भव्य मंदिर है। यही एक छोटा-सा आशियाना है, जिसे मदीना भवन कहते हैं। यह मदीना भवन ईंट, गारे, सीमेंट और पत्थर का बना हुआ सिर्फ एक घर नही है। यह वह साधना-स्थल है, जहां आज के संगीत जगत की शीर्षस्थ प्रतिभाएं पं. रविशंकर, अली अकबर खां और अन्नपूर्णा जी पली-बढ़ी हैं। उन दिनों 'मदीना भवन' के कमरों की सब दीवारें बोलती थी। जाने किस कोने से कौन-सा स्वर फूट बड़े। कोई पच्चीस बरस पहले का एक जीवंत 'मदीना भवन' आज भी मेरे दिलोदिमाग मे बहुत ताजा है। पूरब की ओर खुलने वाली वह खिड़की, खिड़की के ठीक नीचे ही वह तख्त, जिस पर बाबा बैठते और सामने वाली सड़क की ओर जाने क्या सोचते हुए निहारते रहते थे। कभी मौज आती तो वही बैठे-बैठे सरोद पर कोई राग छेड़ देते। मैंने कई बार उनके बगीचे में चुपके से घुसकर संतरे और बेर खाये हैं। उनके घर (मदीना भवन) के ठीक सामने ही हमारा स्कूल था। जब भी कोई पीरियड खाली मिला, बस घुस गये बाबा के यहां। कभी-कभी बाबा प्यार से बुलाते और खुद अपने हाथों से सब विद्यार्थियो को संतरे बांटते। परंतु लड़के तो बस

शैतान ही ठहरे। उन्हें यूं उपहार मे लेकर खाने में भला कहां मजा आने वाला? वहां बाबा ने पीठ फेरी और लो ये चढ़ गये पेड़ पर। फिर पेड़ टूटे या डाली, अपनी बला से! जब धमाचौकड़ी ज्यादा बढ़ जाती तो बाबा छडी लेकर दौड़ते, तब तक तो हम सब रफू-चक्कर हो जाते थे।

उन दिनों क्या पता था कि हम जिन्हें प्यार से, श्रद्धा से बाबा कहते हैं, वे सगीत जगत की बहुत बड़ी हस्ती है। दिन बीतते गये। मै मैट्रिक मे पहुच गया था। उन दिनों मैहर मे एक बहुत बड़ा संगीत-समारोह हुआ। देश भर के नामी-गिरामी सगीतज्ञ वहां पधारे। बाबा को मंच पर सबसे ऊपर बैठाया गया। बडे-बड़े कलाकार मंच पर आते और बाबा के चरण छूकर आशीर्वाद लेते, फिर अपना कार्यक्रम शुरू करते। हम सब विद्यार्थी यह नजारा देखकर दंग रह गये। उन्ही दिनों पत्रिकाओ मे, अखबारो में बाबा के फोटो छपे। किसी मे राष्ट्रपति से अलंकरण ले रहे है, किसी मे प्रधानमंत्री से बतिया रहे है। अब जाकर हमारी आंखें खुली कि जिन बाबा को हम रोज बाजार मे सब्जी लेते हुए देखते है, जो अकसर हमें बुलाकर फल खिलाते है, वे 'बाबा' सगीत जगत मे हिमालय जैसे ऊंचे और महान है। भारत सरकार ने उनकी संगीत सेवां के लिए उन्हे 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया है।

यूं तो पद्मभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खा साहब को संगीत से प्रेम रखने वाला हर व्यक्ति जानता है। मैहर मे सब उन्हे प्यार से 'बाबा' कहते है। यह सबोधन भी उनका बहुत मशहूर है। वे केवल सगीत वाचस्पति ही नही, महात्मा भी थे। उनका रहन-सहन, अहार-विहार सदैव सादा और सात्विक ही रहा है।

बाबा का जन्म त्रिपुरा स्टेट के शिवपुर ग्राम मे एक मध्यम मुस्लिम परिवार में दुर्गाष्टमी सन् 1862 मे हुआ था। पिता का नाम साधू खा एवं माता का नाम श्रीमती हर सुंदरी देवी थी।

पं. रविशंकर बाबा से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होने एक दिन 'बाबा' के कदमो में सिर रखकर संगीत सीखने की प्रार्थना की। बाबा ने खुश होकर रवि को सितार सिखाना आरंभ किया। बाबा के एकमात्र सुपुत्र है अली अकबर खां, जो आज ख्यातिप्राप्त सरोद वादक हैं। तीसरी और सबसे ज्यादा लाडली है श्रीमती अन्नपूर्णा देवी, जिन पर बाबा ने अपने जीवनकाल में सबसे ज्यादा मेहनत की है। अन्नपूर्णा जी का जन्म शरद पूर्णिमा के दिन मैहर में ही हुआ था। महाराज बृजेन्द्र सिह ने उन्हें हिन्दू नाम दिया 'अन्नपूर्णा', बाबा ने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया। बाबा ने बिटिया अन्नपूर्णा को बचपन से सुर की गहरी शिक्षा दी थी। बाबा ने उन्हें हिदू नाम ही नही, पं. रविशंकर के साथ विवाह कर उन्हें हिदू पति भी दिया। बाबा किसी भी प्रकार की कोई जात-पात और धर्म-भेद आदि नही मानते थे। मेरा मानना है, अन्नपूर्णा जी ही आज सही मायने में बाबा की विरासत हैं। रविशंकर

जी की अपार सफलता और लोकप्रियता में इस देवी का योगदान अप्रतिम है ।

बहुत दिनों बाद आया हूं मैहर । बचपन बिलकुल आंखों के सामने नाच रहा है । वही ही गलियां । वही पुराने परिचित चौराहे, वही सब्जी मंडी, वही मस्जिद और वही ऊंचे पर्वत पर मां शारदा का मंदिर । परन्तु बाबा ? बाबा अब इस दुनिया मे नही रहे । ईश्वर ने उन्हें 108 वर्ष से भी ज्यादा उम्र दी । भला किसे मिली है इतनी लंबी उम्र ? परन्तु बाबा ऐसे थे, जिन्हें कितनी ही लंबी उम्र क्यों न मिल जाये, वह कम ही लगती है ।

मदीना भवन से मंदिर की तरफ जाने वाली जो लिक रोड है, कभी उस पूरी सड़क पर खूबसूरत नीम-चमेली के ऊंचे-ऊंचे पेड़ हुआ करते थे, शाम होते ही वह पूरी गली महक उठती थी । अब न वे पेड़ हैं और न वह मीठी सोधी महक । मदीना भवन की बगिया भी उजड़ गयी है । अब पूरा मदीना भवन सुनसान लगता है । हसा परदेश जो उड़ गया है । मदीना भवन के सामने आज भी हमारा स्कूल ज्यो का त्यो है । हां, कुछेक नये कमरे बने हैं । बिल्डिग भी नई-नई-सी लगती है । कुछ छात्र कॉपी-किताबे बगल मे दबाये इधर से उधर फुदकते रहते हैं । शायद वे कोई नया फिल्मी गीत गुनगुना रहे है । मेरी इच्छा होती है कि मै उन छात्रों से पूछूं—"तुममें से किसी ने इस बगीचे के संतरे खाये है कभी ? क्या किसी को मालूम है इस बगिया के बेरों का स्वाद ? क्या किसी ने देखी है पूरब की ओर खुलने वाली वह खिड़की ?" मैं सामने वाली सड़क पर खडा हो, उस चिरपरिचित खिड़की, जो अब बंद है, को एकटक निहारे जा रहा हूं । मुझे लगता है, वह खिड़की थोडी ही देर में खुलेगी और उसके खुलते ही सरोद के तारो की कोई स्वर लहरी झरने की तरह बह निकलेगी । परन्तु ऐसा कुछ नही होता । बगल से कोई युवा छात्र 'डीग-डांग' गुनगुनाता हुआ मस्ती से गुजर जाता है । □

जीवन मूल्य : वार्ता-साहित्य के संदर्भ में

उलफत मुखीबोवा

जीवन मूल्य और साहित्य का अंतरंग संबंध है। जीवन मूल्यों के अभाव मे साहित्य एक निरर्थक सृजन हैं। जीवन मूल्यों के संदर्भ में साहित्य की पड़ताल प्रस्तुत कर रही है ताशकंद राजकीय संस्थान, उज़बेकिस्तान मे कार्यरत उल्फत मुखीबोवा।

मूल्य पर बहुत से विद्वानो ने विचार किया है परन्तु अभी तक मूल्य के संबंध मे एक सर्वसम्मत अवधारणा सभव नही हो पायी। लेकिन इस सर्वसम्मत अवधारणा के बिना भी मूल्य हमारे जीवन मे विद्यमान है और अपनी भूमिका का निर्वाह करते आ रहे हैं।

हिन्दी साहित्य कोश मे मूल्य शब्द का नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और साहित्य शास्त्र की दृष्टियों से अध्ययन किया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार 'मूल्य' 'बाज़ारदर' के अर्ध साहित्य मे 'मूल्य' शब्द को नैतिक और सांस्कृतिक संदर्भ में जोड़ते हुए 'सत्य-शिवं-सुन्दर' को उसका आधार माना गया।

संसार मे कारण आदि का संयोग होने से जो पदार्थ जितने व्यय में सिद्ध होता है वह व्यय ही उसका मूल्य होता है।

स प्रकार स्पष्ट है कि 'मूल्य' शब्द का जीवन में विशेष तौर पर तीन तरह का प्रयोग मिलता है - आर्थिक, दार्शनिक और साहित्यिक।

साहित्य मे मूल्यों की बात जीवन-मूल्य और मानव मूल्यों के संदर्भ मे की जाती है।

जीवन-मूल्य और साहित्य में क्या संबंध है ?

जब से मानव ने जन्म लिया वह अपनी समस्याओं के प्रति संघर्ष को जीवन मूल्यों से जोडकर किसी न किसी रूप में व्यक्त करते आ रहा है। डा० रघुवंश अपने 'सास्कृत्तिक प्रक्रिया' लेख में इस संबंध में लिखते है 'मनुष्य अपने इतिहास के बारे मे जिस सीमा तक सचेत हुआ उस सीमा तक उस ने किसी न किसी रूप में अपनी मानवीय स्थिति और जीवन परंपरा का मूल्यांकन किया है। प्रारंभ में मनुष्य प्रकृति से अभिन्न था। क्रमशः प्राकृतिक शक्तियों का दैवीकरण हुआ और केन्द्रीय देवता की कल्पना एक ईश्वर के रूप में की गई। परन्तु आगे चलकर धीरे-धीरे मनुष्य की सामाजिक चेतना का विकास होता गया और वह अपने सामाजिक जीवन की एकता और स्थायित्व को बनाये रखने की भावना से प्रेरित हुआ। मनुष्य मानने लगा कि वह अपने मे स्वतः मूल्यवान है और अपनी नियति के निर्माण के लिये निर्णय लेनेवाला प्राणी है। इस भावना के आधार पर समाज मे बन्धुत्व, बराबरी, स्नेह-संबध, सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों का विकास हुआ। इन मूल्यो का वर्णन साहित्य मे होने लगा। यही से जीवन मूल्य और साहित्य का घनिष्ट सबंध शुरू होता है।

साहित्य जीवन का दर्पण है। इस दर्पण से जो जीवन हमे नज़र आयेगा वही जीवन मूल्य है। इसका मतलब है कि एक के बिना दूसरा नही हो सकता। जीवन मूल्य और साहित्य एक दूसरे पर टीके हुए है। धर्मवीर भारती अपनी 'मानव मूल्य और साहित्य' नामक पुस्तक मे लिखते हैं 'साहित्य समाज-व्यवस्था से प्रभावित होता है और उसी को प्रभावित करता है"। इसी तरह साहित्य मे मानवीय प्रभावित लेखक या कवि की रचना जन्म लेती है और दूसरों को प्रभावित करता है, जीवन मूल्यो को पाठको तक पहुचाता है, विचार-विमर्श करके इस से सही निष्कर्ष निकालने के लिये पाठको को जाग्रत करता है। जनता की सेवा करना हर एक साहित्य का पवित्र धर्म है। वह धर्म तभी पूरा और मजबूत हो सकता है जब वह जीवन मूल्यो को सही पहचाहकर उन का सही वर्णन कर सकते है। मार्क्स ने साहित्य को वर्ग-संघर्ष का अस्त्र माना था और उभरते हुए वर्ग की आकांक्षाओं और दृष्टियो को प्रतिफलित करनेवाले तथा वर्गहीन समाज की विकास प्रक्रिय मे सहायता देनेवाले साहित्य को ही उस ने प्रगतिशील साहित्य माना। धर्मवीर भारती इस संदर्भ मे लिखते है 'यदि साहित्य मे वह शक्ति है जो हमारी वृत्तियों को संस्कृत बनाता है तो वह साहित्य कल्याणकारी है' अतः जीवन मूल्य की परछाई साहित्य मे ही होता है और जीवन मूल्य का प्रचार भी साहित्य के माध्यम से ही हो सकता है।

मध्यकालीन भारतीय साहित्य मे जीवन मूल्य क्या था ? भारतीय समाज के जीवन में हमेशा एक की जगह दूसरा, दूसरे की जगह तीसरा धर्म आता और जाता रहा। हर धर्म अपना-अपना सिद्धात स्थापित करने, अपने प्रचार करने की चेष्टा करता है। इस कारण उन

को मानना या न मानना अकसर समाज में विवाद का विषय बन जाता है। हालांकि प्रत्येक धर्म कुछ समान सिद्धान्तो पर टिका होता है। जैसे-प्रेम, विश्वास, पवित्रता, सच्चाई आदि।

मध्ययुग में उत्तरी भारत में इन्ही सिद्धांतो पर आधारित धार्मिक आंदोलनों में से भक्ति आंदोलन का प्रचार काफ़ी समय तक रहा। इस आंदोलन का प्रचार प्रसिद्ध दार्शनिक श्री वल्लभाचार्य जी, माघवाचार्य जी, निम्बकाचार्य जी आदि द्वारा हुआ। सच्चा भक्त होने का उन्हों ने एक ही रास्ता बताया - 'अपना जीवन ईश्वरापर्ण करना और ठाकुर जी की सेवा करना'। यही सिद्धान्त पूरे उत्तरी भारत के समाज का विशेष जीवन मूल्य बन गया। इस युग मे रचित किसी भी रचना को ले - चाहे वह गद्य में हो चाहे पद्य में - सब में कृष्ण भगवान के प्रति प्रेम, उनकी की बचपन की लीलाओ और राधा के साथ प्यार का सुन्दर वर्णन मिलेगा।

कृष्ण भक्ति आंदोलन भारतीय समाज मे समानता स्थापित करनेवाला एक प्रगतिशील सिद्धांत था। भगवाने के सामने सब एक है, बराबर हैं जाहे वह ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, वैश्य या शुद्र। भारत के जाति वर्गों मे बांटे समाज के खिलाफ यह शायद पहला धार्मिक आंदोलन था जिसने अपने मे सब को स्वीकार कर लिया। समानता का यह जीवन-मूल्य प्रमुखतः दलित जनो को बहुत रूचिकर लगा, लोगो को प्रभावित किया और निस्संदेह प्रत्येक के मन मे भक्त होने की इच्छा पैदा हुई होगी। वास्तर में यह प्रेम भागवान के प्रति था लेकिन भगवान से गहरा प्रेम करने से पहले उस की सृष्टि से, मानव मात्र से, प्रकृति से, जीव मात्र से प्रेम करना, उसके प्रति दया व्यक्त करना आवश्यक था। तभी आप का प्रेम भगवान द्वारा स्वीकार किया जा सकता है। मध्ययुग के भक्त कवियो जैसे सूरदास के नेतृत्त्व मे अष्टछाप के आठ कवियो तथा कबीर, तुलसीदास, मीराबाई आदि की रचनाओं मे भक्ति पर आधारित प्रेम की यह व्यापक अनुभूति प्रभावी रूप में अभिव्यक्त हुई। इन कवियों का जीवन-दर्शन उच्च्व जीवन मूल्यो पर ही आधारित है, जो अध्ययन और विचार करने याग्य है। सन्त कवियो ने अपने पदो में भले ही ईश्वर को अपना प्रमुख विषय माना हो किन्तु उन का तात्पर्य मानवीय मूल्यो की समग्रसाधना से ही था, जिनका प्रतिफलन हमारे जीवने में होता है। कबीर कहते थे - 'इंसान की सेवा करना भगवान की सेवा करने के बराबर है'। इससे अच्छा और इस से सुन्दर जीवन मे और कौन-सा मूल्य हो सकता है।

भक्ति काल में पद्य के साथ-साथ गद्य मे भी बहुत सारी रचनाएँ रची गई थी। हिन्दी हित्यकारों में मध्ययुग के गद्य की सब से पहली रचना 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' मानी गई है। इस वार्त्ता में भक्तो का जो जीवन चरित्र है वह उच्च्व जीवन मूल्यों पर आधारित है। वे सब श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। उन में अष्टछाप के कवि कुंभनदास, सूरदास, परमानन्ददास , कृष्णदास, गोविदस्वामी आदि थे। श्री वल्लभाचार्य जी ने जिस मत का

प्रचार किया था वह पुष्टिमार्ग कहलाता है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता' में पुष्टिमार्ग के सब से पहले प्रतिनिधियों का जीवन चरित्र है। आज अवश्यकता इस बात की है कि इन भक्तों का जीवन चरित्र व्यापक पैमाने पर न सिर्फ विद्वानो की तरफ से बल्कि उन के अच्छे गुणों को अपनाने के लिये समाज में, पाठशालाओं में उन का अध्ययन भी होनी चाहिए।

दूसरों को यह कहना कि तुम यह न करो वह न करो, बडा सरल है, पर मुख्य समस्या तब आती है जब व्यक्ति को स्वयं यह निर्णय करना होता है कि वह किन मान्यताओ पर दृढ़ रहे, किन मूल्यों का अवलम्ब ग्रहण करे। उज्बेक लोगो में एक कहावत है "तुम वह करो जो पाखंडी उपदेशक करने को कहता है, लेकिन वह मत करो जो वह करता है"। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धर्म के प्रचारको ने धर्म को पैसे कमाने का साधन बना लिया, और फलस्वरूप लोगो का विश्वास धर्म के प्रति कम हुआ। श्री वल्लभाचार्य जी ने भक्तिमार्ग के सिद्धान्तों को अपने जीवन-व्यवहार मे ढालकर प्रचारित किया। भक्त भी वही हो सकता है जिसके जीवन पद्धति में उच्च जीवन मूल्यों की स्पष्टि हो उसकी कथनी और करनी में अन्तर न हो। भक्तिमार्ग या पुष्टिमार्ग की भलाई इसी मे है कि इस मार्ग में किसी को बलपूर्वक नही लाया जा सकता। जैसाकि कुछ धर्मों में यह देखा जा सकता है। भक्तिमार्ग में हर एक इंसान अपनी इच्छा से बहुत ही प्रेम-भावना के साथ, उसके सिद्धांतो पर पूरा विश्वास करके एक सच्चा भक्त बनने की आशा से आ सकता है। लोगों के स्वभाव की धुष्प्रवृत्तियो से मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम की भावना खण्डित होती है। इससे आगे चलकर समाज टूटता है। इससे बचने के लिये सब से पहले लोगो में एक दूसरे के प्रति प्यार, विश्वास पैदा करना चाहिए। मनुष्य का मूल्यांकन सिर्फ उस के अच्छे या बुरे काम से ही किया जा सकता है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान दि० लिहाचेव ने लिखा था 'सच्चा दयालु दया करने वाले को नही बुराइयों से वंचित रहनेवाले को कहते हैं'। इस दृष्टि से लोगो में अंतर किया जा सकता है।

वार्ताओं में दिये गये भक्तों के स्वभाव के विशेष गुण हैं —

- एक दूसरे के प्रति विश्वास और प्रेम करना
- दूसरों की प्रसन्नता में ही प्रसन्न रहना
- किसी की निन्दा न करना
- अपनी कथनी और करनी में एकता रखना
- जिम्मेदारी महसूस करना
- भगवान के साथ-साथ मानव मात्र की सेवा करना
- किसी को दुख नहीं पहुँचाना
- झूठ न बोलना आदि।

इस तरह के बहुत से मानवीय गुणो की चर्चा की जा सकती है। वार्ताओ में प्रत्येक के लिये सुन्दर आदर्श मिल सकते है।

वार्ताओं में भक्ति मार्ग के महत्त्व पर बड़ा जोर दिया गया है। जैसे कि 'श्री पुरूषोत्तमदास जोशी की वार्ता' में जब श्री पुरूषोत्तमदास जी श्री वल्लभाचार्य जी से प्रश्न करते हैं कि महाराज ! कर्ममार्ग बडा है या ज्ञानमार्ग? तो उन का उत्तर यह हुआ था "जिसके मन में जिस मार्ग के प्रति दृढ़ता हो, पक्का विश्वास हो वही उसके लिये बड़ा है। वर्तमान में इन दोनों में बडा है भक्तिमार्ग। भक्ति का आश्रय लेने से जीव कल्याण होता है"।

वार्ताओं मे ऐसे प्रसग भी है भगवदीन के साथ सतसग करने से न सिर्फ स्वयं भक्त का बल्कि उस से संपर्क रखने वाले का भी कल्याण हो जाताहै। 'श्री जनार्दनदास चोपड़ा की वार्ता' में एक प्रसग यूं है "भगवदीन का सग जीवन मे उत्क्रांति ला देता है। उससे जीवन के विकार छूट जाते हैं। भगवदीन का संग मानव को भगवदीन बनाकर, अपने समान ही बना लेता है। भगवान का भजन उत्तम है किन्तु भगवदीनो का संग उससे भी जल्दी चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है। "श्री नरहरि सन्यासी की वार्ता" में यह पक्तियॉ है "भक्ति मार्ग मे भक्ति का बीज नष्ट नही होता। भक्तिमार्ग पर चलनेवाला यदि कुसग से भ्रष्ट भी हो जाता है तो सत्संग मिलने पर फिर समय पर चलने लगता है।"

इस प्रकार हम देखते है कि आज कल के हमारे समाज में समर्पित भक्तो की कमी है क्योंकि सच्चा भक्त ही सब का भला चाहता है और उसका मुख्य उद्देश्य भी समाज का कल्याण है। हमे पूरा विश्वास है कि उनका जीवन उच्च जीवन मूल्यो पर ही आधारित है। श्री गोकुलनाथ जी ने इसलिये वार्ताओ मे अपने गुरू व भक्तों का जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया, ताकि भविष्य में आनेवाली पीढ़ियों के लिये मूल्यो और आदर्शो की एक परंपरा स्थापित हो जाए। उनका जीवन चरित्र आज के लोगों के लिये आदर्श बन सके। हम जीवन मूल्यो के माध्यम से परमपिता परमेश्वर के समीप पहुँच सके।

सहायक ग्रंथ सूची

1. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती
2. सांस्कृतिक प्रक्रिया (लेख) डा० रघुवंश
3. विश्व सूक्ति कोश, भाग-2 धीरेंन्द्र वर्मा आदि
4. हिन्दी साहित्य कोश
5. 'चौरासी वैष्णवनो की वार्ता' श्री गोकुलनाथ जी कृत

प्रेम व आस्था की कवयित्री

रश्मि बजाज

सुनीता जैन मानवीय संवेदनाओ को गहरे समझती हैं और उसे पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त करती हैं। एक सहज प्रवाह के साथ बहती हुई इनकी कविता मन के अनजान कोनो को अनायास ही छू जाती है। इनकी कविता के विभिन्न पक्षों को रश्मि बजाज ने अपने दृष्टिकोण से देखा है और बिना किसी आवरण के प्रस्तुत किया है।

मोहभंग, सांस्कृतिक शून्य, निरर्थकता बोध व सम्पूर्ण निषेध से सत्रस्त समसामयिक युग मे किसी रचनाकार का प्रेम व आस्था के स्वर मुखरित करना निश्चय ही एक महती उपलब्धि है। ऐसी ही कवयित्री है सुनीता जैन जिन्होने अपने बीस वर्ष के रचनाकाल में प्रकाशित बीस काव्य-संकलनो द्वारा जीवन व जिजीवषा का जयगान किया है;

मुझको मरने तक
हर उस विष से लडना है
जो धरती में अंकुर का
घातक है।

('तिल तिल कर', इस अकेले तार पर, पृ० 67)

भली प्रकार जानते हुए कि यह वन्ध्ययुग "प्रेम की अनुभूति का नहीं/अभिव्यक्ति का

नही" कवयित्री ने प्रेम व रस की सृष्टि तथा वृष्टि कर कविता की गरिमा तथा अर्थवत्ता को पुनर्प्रतिष्ठित किया है। इनकी कविता यथार्थ से निरपेक्ष अथवा वास्तविकता से पलायन करने वाली कविता नही है अपितु यहाँ सतत् प्रवाहित हो रही यह स्नेह-सरिता उस अन्तर्भेदी दृष्टि की उपलब्धि है जो सतही अवसाद व विषाद के परे जाकर जीवन तथा जगत के चरम सत्यो का अनुभूत्यात्मक साक्षात्कार करती व करवाती है। कवयित्री वस्तुजगत की विभीषिकाओ, विसंगतियों तथा त्रासदी से पूर्णतया परिचित है किन्तु उसकी तत्वभेदी दृष्टि सृष्टि के मूल मे व्याप्त हर्ष व उल्लास का दर्शन कर पाने में समर्थ है;

यद्यपि बच्चा भूखा है, युवा बेकार है
बूढ़े पर अत्याचार है,
तो भी नभ से नदी तक
गीत है, ऋतु है, शृंगार है।

('लज्जा नही आती, पौ फटे का पहला पक्षी, पृ० 5)

प्रेम भाव की धारा से उन्होने जीवन के "काष्ठ" को "वीणा" कर डाला है।

उनकी लम्बी काव्ययात्रा में चेतना का उन्मीलन विभिन्न स्तरों पर दृष्टिगोचर होता है व जीवन तथा जगत के प्रति प्रेम व आस्था कभी मानवीय सम्बन्धो के प्रति अनुराग, कभी प्रकृति व मनुष्य की घनिष्टता, कभी मानवेतर वृहत् सत्यो के प्रति लगाव, कभी कवि की कविता के प्रति आसक्ति आदि विविध रूपो मे व्यक्त होते है। "प्रकृति व पुरुष मे अटूट प्यार, प्यार है" विश्वास करने वाली कवयित्री ने नर-नारी सम्बन्ध के विभिन्न आयामो को अभिव्यक्ति दी है। कुछ कविताओ में संसर्गजन्य उल्लास का ऐसा उत्सव है जो कविता को स्वयं ही सगीत व लय प्रदान करता है;

सरसो का खेत मेरा मन
लहके साँस में सुगन्ध
तेरे साथ से सुखी
मेरा आखिरी वसंत
प्रिय पहली तरंग
तेरे प्राण से उठी जो
मेरे अंग में रची वह
जैसे मेंहदी का रंग
मेहंदी का रंग बन्ने
लाल सी पतंग
मैंने धोया बहुत

इसको पोंछा बहुत
बैरी रचता ही जाए

("सरसों का खेत मेरा मन", हो जाने दो मुक्त, पृ० 13)

नारी-हृदय के प्रणयोन्मेष की सुन्दर अभिव्यंजना के लिए निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है

खिल गए सौ रंग
मोरों के छितर गए पंख
उंगली से कभी छू कर बंदन
तुमने लिखा जब प्यार
सिमटा सकल संसार तब
घंटी मे जैसे जल
किसी दुल्हन पे चढकर रूप फिर
महका बहुत चुपचाप।

("खिल गए सौ रंग", हो जाने दो मुक्त, पृष्ठ24)

किन्तु उनके लिए प्रेम मात्र देह-व्यापार न होकर देह, मन व आत्मा का सयुक्त आवेग है चूकि मात्र "जीभ व जॉघ का भूगोल" उन्हे नही रुचताः

इस लम्बाई
गोराई
गदराई के
सूक्ष्म पारखी
अथक भोगी
सच कहना
कभी इनमे
"मैं भी मिली ?

("सच कहना", कौन सा आकाश, पृ० 45)

कवयित्री की चाह तो है उस संगीत की जो "जो शरीर में तरंगित कर/आत्मा को/बेकल कर जाए।" प्रेम के अन्य आयाम-स्निग्ध पक्ष व आध्यात्मिक पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं व अपनी पूर्णता में प्रेम ईश्वरीय साक्षात्कार का एक मार्ग भी हैः

कही ऐसा हो
तू मेरे रूप से जगे
मैं तेरे जगते ही
अलक्ष्य हो जाऊँ

नही लेन देन
तिल, तिल मरन
देह की छीन झपट
हो एक तार
एक रस
एक गंध-तन तेरा हो
मै सृष्टि-सृष्टि बिखरूँ
तू शंकर हो

('कही ऐसा हो', हो जाने दो मुक्त, पृ० 27)

नर-नारी इतर मानवीय सम्बन्धो मे भी प्रेम व आस्था की सशक्त अभिव्यंजना हुई है। सुनीता एक बेटी भी हैं व माँ के प्रति स्नेह भाव का ऐसा मर्मस्पर्शी व भावात्मक प्रस्तुतिकरण हिन्दी कविता मे अनूठा है। "जाने लडकी पगली" नामक सम्पूर्ण संकलन माँ को समर्पित है। "शन्नो बेटी" व उनकी माँ का यह अनन्य, आत्मीय व एकप्राण सम्बन्ध है:

मैं मात्र उसकी बेटी न थी
थी वह धमनी जो
धड़का करती लिए उसका आवेग ही

('मुझे मालूम थी, जाने लड़की पगली, पृ० 153)

यह सम्बन्ध जो सुनीता के लिए "फलियों मे दाने सा, भीगे सूरज सा, सर्दी के गरमाते दिन सा है", उसके समाप्त हो जाने पर मानो जीवन रस ही लुप्त हो जाता है:

अब मैया कही नही है
यह सूनी दोपहरी कहती है
देहरी की सांकल कहती है
बिन आई पाती कहती है
अंदर की छल-छल कहती है

('देहरी की सांकल कहती है,' जाने लड़की पगली, पृ० 145)

व कवयित्री की इच्छा है:
काश इतने बड़े जगत मे
मै हो सकती
किसी अन्य से एकप्राण फिर वैसी

('मुझे मालूम थी', जाने लडकी पगली, पृ० 153)

बेटी होने के साथ-साथ कवयित्री एक माँ भी है और "मै बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी" का सुभद्रा कुमारी वात्सल्य भाव कविताओ मे उमड़ पडता है। सुनीता ने माँ-बेटी के सम्बन्ध का एक और पक्ष अत्यन्त मर्मभेदी रूप से प्रकट किया है जिससे सम्बन्ध की तीव्रता कई गुणा संवर्धित हो गई है। यह पक्ष है माँ-बेटी का विछोह व कवयित्री माँ ने यह पीड़ा खूब झेली है:

वह छोड़ गई
सब रीत गया

('दिन बीत गया', युग क्या होते और नही, पृ० 36)

व्याकुल मातृहृदय क्रन्दन कर उठता है बिटिया के वियोग में जो

बड़ी हुई
होते-होते घर छोड़ गई
माँ को भी

('दिन बीत गया', युग क्या होते और नही, पृ० 36)

यह क्षतिपूर्ति संभव नही चूकि बेटी के जाने के साथ जुड़ी है और बहुत कुछ खो जाने की अनुभूतिः

मान गया जब
उड़ी नीड़ तज
अस्थि अपनी पाली-पोसी

('संग पानी', युग क्या होते और नही, पृ० 60)

नारी-भ्रूण हत्या व पारस्परिक अलगाव के युग में बेटी व माँ के प्रति यह अनुराग-अभिव्यक्ति कवयित्री की वर्तमान साहित्य व समाज को एक बहुमूल्य भेंट है।

उनका प्रेम भाव मात्र मानव जगत तक ही सीमित न होकर एक उदात्त व व्यापक अनुभव है तथा प्रकृति के विभिन्न पदार्थ भी उनके स्नेहांचल में सिमट आए हैं। प्रकृति का स्वतन्त्र सत्ता के रूप में सस्नेह चित्रण इनकी कविता को लावण्य प्रदान करता है। कवयित्री का प्रकृति से अटूट रागात्मक सम्बन्ध है व प्रकृति माँ से उन्हें मिला है:

पन्नग हाथों का
ममतीला-स्पन्दन, यह धरणी
यह वनदेवी, माँ सी प्यारी
माँ मेरी

('वन', पौ फटे का पहला पक्षी, पृ० 11)

महानगरीय वास के पश्चात् भी उनकी दृष्टि प्रकृति से कदापि पराङ्मुख नही हुई

लेकिन मुझको तो दिखते ही रहते हैं
हौले-हौले हिलते सिरस गंधीले
झर-झर-झरते नीम निमोले
शिव पूजन को उद्यत विल्व-फल
पूरे तन गुठियाए गूलर

('जाने कितने जंगल', मूकं करोति वाचालं, पृ० 18)

प्रकृति व मनुष्य का अत्यन्त प्रगाढ सम्बन्ध है:
गेहूँ मे चौथा पानी देता
सोच रहा भैरो अब तो
गौने की तिथि आती होगी।

('वसंत पंचमी', इस अकेले तार पर, पृ० 5)

उनकी कविता 'वन' प्रकृति, ईश्वर, मानव जनगत व काव्य की पारस्परिक एकरसता की अभिव्यक्ति के लिए बेजोड है:

यह मेरा प्रिय आम रसीला
कोयल सुनवाई जिसने थी
कविता ज्यो पहली
यह खिरनी सोने सी, जामुन ढ़िग ज्यो
कृष्ण खडे संग रघुराई।

('वन', पौ फटे का पहला पक्षी, पृ० 11)

मानव लोकोतर परमशक्ति में आस्था व आध्यात्मिक संवेदना की अभिव्यंजना भी उनके काव्य मे परिलक्षित होती है। कही राम, कृष्ण, वाणीदेवी सरस्वती के चरणो मे प्रार्थनापुष्प अर्पित है तो कही आध्यात्मक की आन्तरिक अनुभूति। कवयित्री वीणावरदण्डमण्डितकरा के प्रति पूर्णतया समर्पित है

गाऊं मै जब गाऊ,
गान तुम्हारा ही मॉ

(शेष, कातर-बेला, पृ० 103)

कभी राधा बनी वह अपने कन्हाई को प्रेमपूर्ण निमन्त्रण देती है
आना तुम वायु के जैसे
हर सांकल से हर द्वारे से

('आना तुम वायु के जैसे', रंग-रति, पृ० 6)

कही "राम जी/मैं दीना/तुम नाथ" मानने वाली कवयित्री की श्री राम से विनती है

आ जाना
जब धीरज छूटे

('राम', कातर-बेला, पृ० 75)

कभी उनका राम कण-कण व्यापी हो जाता है :

कण-कण को
पल भर में मैंने
राम-सियामय
पाया

('जो होती कहु राम सो', कहाँ मिलोगी कविता, पृ० 75)

कवयित्री ने अपने भीतर उतर परम तत्व के दर्शन भी किए है

जितने जितने पग मै
अपने भीतर उतर आई
उतने उतने तीर्थे
सम्पन्न हुए यही

('तीर्थ', कातर बेला पृ० 105)

वह जाना है मानव शरीर मे भी प्रभु-साक्षात्कार का सुखः

नाचा करते
सहस्त्र रूप हो
कब से मुझ में
कृष्ण-हरि

('समझ लेना मन', पौ फटे का पहला पक्षी पृ० 13)

इनका भक्ति भाव 'हरि को हरिनाम' नही अपितु उस परम सत्ता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम व आस्था का प्रसाद है। यह वस्तु जगत से पलायन का साधन नहीं, अपितु संघर्ष के लिए शक्ति देने वाला अक्षुण्ण स्रोत है।

प्रेम तथा आस्था से ओतप्रोत काव्य की रचना करने वाली कवयित्री का स्वयं कविता के प्रति प्रेम व आस्था होना अत्यन्त नैसर्गिक है। यह सम्बन्ध उनके लिए सर्वोपरि बन जाता है। कही कविता मोहिनी प्रिया है, कहीं जीवन संगिनी, कही बिटिया, तो कही जीवन को उल्लसित करती हुई प्रक्रिया। वह कविता से "मन का भाषा से भांवर पड़ना" के सम्बन्ध से जुड़ी हैं व उन्मेष का न होना कुछ इस प्रकार पीड़ादायक हो उठता है

जब आती न कविता
लगता ज्यों रूठ गया हो
प्रियतम किसी प्रिया का

('सीधी कलम', कलम सधे ना, पृ० 31)

कभी कवयित्री लालायित हो उठती है:

कविता को, कर्ण सा
कुन्ती हो, धारण करने

('कर्ण', सुनो मधु किश्वर, पृ० 18)

उनकी कविता उनकी "मन्नत का संचित-अर्जित फल है" जो एक और जीवन को उल्लासपूर्ण व लावण्यमयी बनाती है:

तुम जब से आई हो
दोनो हाथ मोती हैं
वृक्षों पर पन्नग खिलते है
पृष्ठो पर मानक उगते हैं

('कविता', धूप हठीले मन की, पृ० 48)

तो दूसरी ओर जीवन जीने का साहस व साधन भी उपलब्ध कराती है:

केवल इन बोलते
लहर लहर आते शब्दो के सहारे
चलूं, भले अकेले

('शपथ', सूत्रधार सोते है, पृ० 89)

और कवयित्री की कामना है:

हर एक दिन
हर एक पल
हर शब्द फूल
कविता हो

('चम्पा', "कातर बेला, प० 103)

इस प्रकार जीवन व जगत का स्वागत करती सुनीता जी की कविताए इस धारणा का प्रत्याख्यान करती हैं कि आज के युग में प्रेम व आस्था की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति एक असंभव कार्य है। जहॉ नारी-अस्मिताजन्य त्रासदी के कारण अन्य कवयित्रियॉ समस्त जीवन को अस्वीकार कर सर्वनाश का आह्वान करती हैं

पूरी पीढ़ी बंजर हो
और बंजर रहे मेरे देश की धरती
मुझे नही आकॉक्षा
किसी के जीवन या मृत्यु की

(मोना गुलाटी, अकविता - 5)

वहा जीवन व सृजन का स्वर गुंजित करती इस कवयित्री की कविताएँ पाठको को "घर" देती है व मानवीय सम्भावनाओं को प्रकट करती है। भावात्मक व रागात्मक संवेदना से ओत-प्रोत नेह भाषा मे रचित उनका काव्य रसानुभूति कराने मे अत्यन्त समर्थ है। अतीव बिम्बात्मकता व दुरूहता की आसक्ति से मुक्त उनकी सहज, नैसर्गिक व गीतात्मक कविता जीवन के सनातन सत्यो का साक्षात्कार करवाती, मनाती चलती है

उत्सव
जीजीविषा
आस्था का

('तुम्हे जिस रूप मे पाया है, कातर बेला, पृ० 3)

□

हिन्दी व्यंग्य की मुकम्मल तस्वीर

डॉ. देव शंकर नवीन

'हास्य' और 'व्यंग्य'– ये दो ऐसे शब्द है जिसे अमूमन लोग अव्ययवाची या पर्यायवाची की तरह उपयोग में लाते है। पर, जो भी गम्भीर पाठक है, उन्हें यह भलीभांति मालूम है कि दोनो शब्दो में स्थायी भाव मे बुनियादी फर्क है। लेकिन यह फर्क इतना सूक्ष्म है कि इसे रेखाकित करना बडी मुश्किल है। सर्वविदित है कि दूसरो की 'विकृति' हमारे भीतर 'हास्य' उत्पन्न करती है, जबकि विकृतियो की बुनियादी तलाश उसके सारे पहलुओ पर संवेदनशील होकर विचार किया जाए, तो वह व्यंग्य होता है। व्यंग्य मे भी हास्य की भरपूर मौजूदगी रहती है। 'हास्य' और 'व्यग्य' की परम्परा भारतीय साहित्य मे बहुत पुरानी है। प्राचीन नाटको मे या उपन्यासो मे कम से कम एक हास्य दृश्य अवश्य ही दिखते हैं। भारतीय ग्रामाचल मे कला प्रस्तुत करने वाली कम्पनियो मे एक 'बिपटा' अवश्य ही होता है। चिकित्सको ने तो हास्य को महत्व इतना दिया है कि हसना जीवन के लिए एक जरूरी व्यायाम हो गया है।

सुविख्यात व्यंग्यकार श्री श्रीलाल शुक्ल तथा डा० प्रेम जनमेजय के कुशल संपादन में नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित पुस्तक *"हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन"* मानव जीवन की इसी जरूरत की भरपाई करती है। पचास वर्षीया स्वाधीनता के आगोश में सांस लेते भारतीय नागरिक के जीवन से आज 'हंसी' और 'खुशी' कपूर की तरह गायब हो गई है। प्रश्न उठ सकता है – क्यो ? ..... यह पुस्तक इसी प्रश्न की बुनियाद तलाशती है।

व्यग्य लेखन बड़ा जोखिम भरा काम है। इसमे 'सावधानी हटी, दुर्घटना घटी' वाली स्थिति है। व्यंग्यकार की थोड़ी-सी चूक इसे भोडे हास्य मे बदल सकती है या फिर संचारहीन वार्तालाप भी बना सकती है। जाहिर है कि व्यंग्य के साथ मिलाकर साहित्य मे

जिस 'हास्य' की चर्चा होती है, वह हंसी भोंडेपन या सस्ती पत्रिकाओ के चुटकुले या हंसाइयां आदि से दूर-दूर तक नही जुडता। यह वह हास्य है जो जीवन-जगत के यथार्थ मे मौजूद विकृतियों को धिक्कारते हुए उठता है। यह हास्य और वह व्यग्य दुःखी हो लेने के बाद की स्थिति है।

हिन्दी हास्य-व्यग्य साहित्य के रचनाकारों ने इस जोखिम की चुनौती को प्रारंभ से ही बड़े साहस के साथ स्वीकारा है। और, यह साहस 'हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन' नाम की इस पुस्तक मे मौजूद है। ये रचनाएं पाठक को वैसे नही हंसाती जैसे केले के छिलके पर पांव पड जाने के कारण फिसलकर गिरते हुए पथिक पर कोई हसता है, ये वैसे हंसाती, जैसे बटोही को गिरता देखकर उसे उठाया हुआ आदमी उस छिलका फेंकने वालो और उन हंसने वालो पर हंसता है।

हिन्दी साहित्य की हास्य-व्यंग्य परम्परा काफी लम्बी है, परन्तु इस पुस्तक में भारतेन्दु युग से लेकर आज तक के हिन्दी व्यग्य साहित्य को प्रातिनिधि रुप से प्रस्तुत किया गया है। प्रारंभ से ही लिखे गए व्यंग्यो को समाविष्ट कर पाना शायद संभव भी नही था। स्वयं श्रीलाल शुक्ल इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं, "भारतेन्दु काल के पहले का हिन्दी साहित्य मूलतः कविता पर केन्द्रित है। गद्य की जो छिटपुट रचना अठारहवी सदी के अत से मिलने लगी थी उनका ऐतिहासिक महत्व ही अधिक है। पूर्ववर्ती काव्य-साहित्य मे हास्य-व्यंग्य की स्फुट रचनाओ का सर्वथा अभाव नही है। पर वहा हास्य के स्रोत-स्वरूप वैसे वैविध्यपूर्ण और उन्मुक्त नही है जैसे कि वे आज आधुनिक साहित्यों मे पाए जाते है। वहां हास्य मे परिहास के तत्व प्रायः शृंगारिक क्रीडाओ से प्रेरित होते है और 'शृंगाराज्जायते हासः' की पुष्टि करते है। व्यंग्य की स्थिति और भी सीमित है। पूर्ववर्ती काव्य मे जो व्यंग्य मिलता है वह किसी सामाजिक स्थिति पर कवि की खीझ को भले ही व्यक्त कर दे, पर पाश्चात्य आवधारणा के 'सटायर' के मुकाबले वह बहुत सीमित और साधारण है।"

इस संकलन में बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु की पीढी से लेकर ज्ञान चतुर्वेदी, सुरेश कान्त तक की पीढ़ी के उनचास महत्वपूर्ण व्यंग्यकारों की प्रतिनिधि रचनाओ को संकलित किया गया है। भारतेन्दु युग से लेकर आज तक के हिन्दी व्यंग्य लेखन की इस तरह की यह पहली पुस्तक है जहा इतने लम्बे अन्तराल के व्यंग्य लेखन का मुकम्मल चित्र मौजूद हो।

"व्यंग्य वस्तुतः एक सुशिक्षित मस्तिष्क की देन है और पाठक को गुदगुदाने के लिए नही, बल्कि किसी विसंगति या विडम्बना के उद्घाटन से उसके सम्पूर्ण संस्कारो को विचलित करने की प्रक्रिया है।" श्रीलाल शुक्ल के इन वाक्यो से सहमत होना स्वाभाविक है। यह संकलन बीते दिनों के हमारे आस-पास के जनजीवन की विसंगतियो को बड़े आक्रामक तेवर के साथ उद्घाटित करता है।

इस संकलन मे एक साथ कई पीढ़ियों के व्यग्य लेखन का नमूना उपलब्ध है। पराधीन भारत के जनजीवन से स्वाधीन भारत की स्वर्ण जयन्ती के अवसर तक के समाज का प्रतिबिम्ब यहां सूक्ष्मता से दर्ज है। इन वर्षों मे भारतीय समाज मे क्या-क्या परिवर्तन हुए, भारत का नागरिक स्वाधीन होने के बाद कैसे-कैसे हिरण से भेडिया की योनि मे तब्दील हुआ, कैसे-कैसे खरगोश से लोमड़ी बना, कैसे-कैसे कबूतर से बाज बना – इसका स्पष्ट चित्र यहां मौजूद है।

यह तो सर्वविदित है कि साहित्य की सारी विधाएं अन्ततः व्यग्य ही है। अपने समाज की भीषण परिस्थितियो को धिक्कारता हुआ शब्द, व्यंग्य के सिवा और हो भी क्या सकता है। परन्तु व्यग्य लेखन के दीर्घ अन्तराल मे स्वातन्त्र्योत्तर काल के व्यग्य लेखन मे रचनाकारो की एक ऐसी सशक्त पीढी तैयार हुई और व्यंग्य लेखन का एक ऐसा आक्रामक तेवर सामने आया कि अलग से इस पर चर्चा करना आलोचकों को मुनासिब लगने लगा। भारतेन्दु युग से प्रारंभ हुआ गद्यमय व्यंग्य आज अपने जिस मुकाम पर है, इसका श्रेय व्यंग्य लेखन में तन्यमता से लगे हमारे व्यंग्यकारो की तीक्ष्ण प्रतिभा, अपूर्व कौशल, सुशिक्षित मस्तिष्क को ही जाता है। हा, पाठकों की निरन्तर बढ़ती ग्रहण शक्ति को भी कम नही। पाठको की विलक्षण और विकासमान ग्राह्यता ने भी इन व्यंग्यकारों को काफी समृद्ध किया है।

व्यक्ति और परिवार के परिदृश्य से शुरू हुआ व्यंग्य साहित्य आज राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मुद्दो को जिस गभीरता से डील कर रहा है, उसका मुकम्मल सबूत यहां मौजूद है। व्यक्ति-व्यक्ति, परिवार-व्यक्ति, समाज-व्यक्ति, समाज-राजनीति, राजनेता-राजनीति .... सबो की सामूहिक, वैयक्तिक और आत्मिक गुत्थियो पर आज का व्यंग्य इत्मीनान से और बडे साहस से अपनी बात करता है।

आज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के मद्देनजर यह बात बेहिचक कही जा सकती है कि जब आदमी इतना अनैतिक हो जाए कि नीति समझाने पर भी वह अपनी करनी से बाज न आए तब कोई भी सुशिक्षित मस्तिष्क उसके लिए 'सर्पवध' की तरह लाठी या तलवार नही लाएगा, वह व्यग्य ही लिखेगा। और हमारे देश की इसी परिस्थिति ने बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमचन्द, निराला, अज्ञेय, नागार्जुन, हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, नामवर सिह, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, विजय.देव नारायण साही, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, के.पी. सक्सेना, प्रेम जनमेजय, विष्णु नागर प्रभृत्ति कों जन्म दिया है। 'मातादीन को चॉद पर भेजकर क्या हुआ, कुत्ते और कुत्ते में क्या फर्क है, बापू की विरासत का क्या हस्र हो रहा है, नए वर्ष के आगमन से क्या होता है, इन्टरव्यू देने आए बेरोजगारो को रास्ता किधर मिलेगा, मनुष्य और ठग के बीच कितना फासला है, कुर्बानी किस तरह मौत और किस तरह कुर्बानी होती

है, सुअर के बच्चे और आदमी के बच्चे मे क्या फर्क है — इन परिस्थितिओं को तो हमारे देश के आम नागरिक अपने आसपास लम्बे समय से देखते आए हैं। परन्तु ये ही स्थितियां हमारे व्यंग्यकारों की नजर से घुलकर जब हमारे सामने आती हैं तो हमे किस कदर अन्दर तक छेदती हैं, किस तरह हमें विचलित करती है, उद्वेलित करती है, परेशान करती हैं, हमारे पूरे संस्कार को मथती हैं — इसका अनूठा उदाहरण यह सकलन है।

इस संकलन से गुजरते हुए भारतेन्दु काल से लेकर आजतक के हिन्दी व्यंग्य साहित्य की गुणवत्ता मूर्तिवान हो उठती है और तब हिन्दी व्यग्य की गुणवत्ता के विकास का यह ग्राफ चकित करता है। इस दीर्घ अन्तराल मे हिन्दी व्यग्य के कई आयाम खुले है। कई पीढ़ियो के प्रतिभा संपन्न रचनाकारो की अनासक्त साधना से समृद्ध हुआ हिन्दी व्यग्य आज जिस तेवर के साथ हमे उपलब्ध है, एक तरह से स्वाधीन भारत के पचास वर्ष की एक उपलब्धि है। यूं, यह एक हास्यास्पद स्थिति है कि समाज की विकृतियो पर सुशिक्षित मस्तिष्क मे उठी हुई खीझ की अभिव्यक्ति को हमें उपलब्धि कहना पड रहा है। काश ! इस देश के चेहरे मे इतनी विकृतिया नही आई होतीं।

बहरहाल, इस पुस्तक की हर रचना और इसमे संकलित हरेक रचनाकार पर पृथक-पृथक समालोचना लिखने की आवश्यकता है। एक आलेख में उनचास रचनाकारो की रचनाओ पर बात होना असभव है। परन्तु इतना तय है कि इस शताब्दी के बीते वर्षो के हिन्दी व्यंग्य की उपलब्धि और स्वाधीन भारत के विकल चेहरे को साफ-साफ और इकट्ठा देख पाने के लिए यह मुकम्मल और आवश्यक पुस्तक है। □

हिन्दी हास्य व्यंग्य संकलन/संपादक श्री श्रीलाल शुक्ल एवं डॉ. प्रेम जनमेजय नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली - 110016/ पृ० 244/ मूल्य 40/-

तुम पूरी पृथ्वी हो कविता के बहाने

प्रमोद त्रिवेदी

किसी कवि की समय-समय पर प्रकाशित रचनाओ से अलग-अलग साक्षात्कार उसकी सक्रियता की पुष्टि करता है। पर उस कवि की एक साथ प्रकाशित रचनाओं से साक्षात्कार एक भिन्न अनुभव तो होता ही है, उसकी क्षमता और सामर्थ्य से भी साक्षात्कार हो जाता है। सुखद है कि कवि प्रेमशंकर रघवंशी के काव्य सकलन-"तुम पूरी पृथ्वी हो कविता' मे न केवल उनकी अब तक प्रकाशित सारी महत्वपूर्ण कविताएँ संकलित हैं, बल्कि उनके काव्यात्मक विकास की रूपरेखा भी लगभग सामने होती है। यही नहीं, हर कविता के साथ रचना तिथि और स्थान का उल्लेख इस भ्रम को भी तोड़ता है कि कवि अक्सर लापरवाह होते है। (हिन्दी के शोधार्थियो के लिए ऐसे ब्यौरे उपयोगी ही होते हैं।)

"तुम पूरी पृथ्वी हो कविता" की कविताओं से एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि कवि को कविता और उसकी भूमिका पर अब भी पूरा यकीन है। वह मानता है कि मनुष्य (सर्वहारा) के पक्ष मे कविता की भूमिका न केवल महत्वपूर्ण होगी, बल्कि निर्णायक भी। कविता आज भी न केवल सक्रिय है, बल्कि वह अपने दायित्व का निर्वाह भी सही-सही कर रही है।

आज दृश्य-प्रसार युग में सार्थक शब्दो के लिए जगह लगातार कम होती जा रही है। अर्थहीन शब्दावली और निरर्थक शोर को जगह मिलती जा रही है। मनुष्य पर आज उपभोक्तावाद पूरी तरह से छा गया है। सारे व्यवहार, सोच और लक्ष्य बदल गये है। रचना पढ़ने और सुनने (प्रभावित होने की तो बात ही दूर है) तक का अवकाश नहीं है। और तो और एक रचनाकार भी बिना मतलब के किसी की न तो रचना पढ़ता और न ही उसकी प्रशंसा या निन्दा करता है। ऐसे ठण्डे समय में रघुवंशी जी का कविता पर इतना

भरोसा सचमुच चकित ही करता है ।

-"शब्दों के माफिक

और नये-नये हथियारों की
शक्ल में
तैयार होने लगतीं धारदार कविताएँ"

(लोहापीटों के डेरे)

-"एक भरापूरा उपवन जरूरी तो है
किन्तु इन सूखी कलियों को भी
चमन तो करना ही होगा कविता
इसी मौसम में ! !"

(चमन तो करना ही होगा कविता)

"-बहुत दिनों बाद आई
बतलाओ कहॉ-कहॉ देखी तुमने
अंगारों-सी धूप, हड्डी-तोड़ ठण्ड, मूसलाधार बारिश ?
सिकुड़कर मत बैठो गुमसुम
कुछ बात करो कविता चौपालो पर"

(चुप क्यों हो कविता)

-"अच्छी तरह
जानने लगी है कविता यह
कि वह
अपने बलबूते पर ही
ला सकेंगे विश्व शान्ति !
अच्छी तरह
जान गयी है कविता यह
कि वह
शब्दों का जरिया होते हुए भी
कैसे ला सकेगी जन क्रांति ! !

(शब्दो का जरिया होते हुए भी)

प्रेमशंकर रघुवंशी अकेले ऐसे कवि नही हैं जो कविता से इतनी अपेक्षा रखते हैं । इसलिए ऐसी कविता सर्जना से अधिक एक रूढ़ मुहावरा अधिक लगती है । कविता क्या, किसी का भी, किसी मुहावरे में बॅध जाने से उसकी तासीर को कम ही करता है । यह बहस

ही बेकार है कि कविता से ऐसी और इतनी आशा करना उचित भी है अथवा नहीं। पर भावुकता किसी भी तरह की क्यो न हो, वह कोई खास मदद नही करती है और ऐसी उम्मीद भी भावुकता ही है।

"कविता नारक्यादाजी के साथ" "छोड़ दिये जाते हैं बेगुनाह," "मोड़सिग", "सन्तू मेरे दोस्त", "गोबरया", "जमना बेडनी और बिहारी ढोलकिया", "लोहा पीटो के डेरे" आदि कई दृष्टियों से इस संकलन की अत्यन्त महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। इन कविताओ मे कोई व्यक्ति अपने पूरे परिवेश और परिवेशगत दबावों के साथ उपस्थित है। ये व्यक्ति अथवा पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि है और सक्रिय भी। दीर्घ आकार की ये सारी कविताएँ परिश्रम और गहरे सोच का परिणाम है। गांधी पर केन्द्रित "छोड दिये जाते बेगुनाह" को छोड दिया जाए तो शेष सारी कविताएँ लगभग एक ही दिशा मे अग्रसर हो रही है। इन कविताओ का लक्ष्य भी एक ही है स्थितियो, पात्रो की भिन्नता के बावजूद सारी कविताएँ एक ही कविता लगती है। ये कविताएँ अलग-अलग है तो केवल इसलिए है कि इन आवृत्तियो से कवि की वैचारिक निष्ठा को बल मिलता है। इन दीर्घ आकार की कविताओं से दो सवाल जरूर उठते है—

1 वर्ग चरित्र पर केन्द्रित कविताओ को तो निश्चित रूप से बल मिलता है, पर ऐसी कविताएँ इस वर्ग को कितना बल प्रदान करती है? इसी से जुड़ा हुआ सवाल यह भी है कि इस वर्ग तक इन कविताओ की पहुँच कितनी है?

2. मान लेना चाहिए कि इस तरह की चरित्र और घटना प्रधान कविताएँ कविता को अमूर्तन से बचाने का प्रयत्न है। पर कविता को यह चुनौती का अमूर्तन था कलावाद से नही मिली, गद्य (कथा-साहित्य) की प्रखर चुनौती का सामना करते हुए कविता को अमूर्तन की ओर जाना पड़ा था। आज कविताओं मे फिर पात्र कथा तत्व उभर रहा है, तो क्या मान लेना चाहिए कि गद्य की चुनौती अब नही रही?

अच्छी रचना का एक लक्षण यह भी है कि वह पाठक के समक्ष कुछ गम्भीर और मूलभूत प्रश्न उपस्थित करे। ये कविताएँ ऐसे कुछ प्रश्न खडे करती हैं।

राजगढ़, चतरखेड़ा, तोरनियाँ, निरखी, सिवनी मालवा, जमानी-बैंगनियाँ, हरदा, होशंगाबाद प्रेमशंकर रघुवंशी की काव्यात्मकता को सम्पन्न करते हैं। अपनी इसी भूमि से अपनी कविता में न केवल पूरी पृथ्वी को देखते हैं, बल्कि कविता ही उनके लिए समग्र पृथ्वी हो जाती है। यों वे भले ही अपनी कविता में बेजामिन मोनाइस को ले आयें पर उनका रिश्ता (कहिए गहरा रिश्ता) तो अपने नारभ्यदाजी, मोड़सिंग, सन्तू, गोबरया, जमना बेड़नी, बिहारी छोलकिया और लोहापीटो से ही जुड़ता है। यों भी प्रेमशंकर रघुवंशी अपने भाषागत संस्कारों से भी महानरीय कवि नही है और न वे होना चाहते हैं। इसीलिए जब

वे "जाल्पा घाटी का अकेला पेड़" जैसी कविता रचते हैं, तो वे उस अकेले पेड़ के साथ ही नही होते, उसकी जड़ों तक भी पहुँच जाते है। सतपुड़ा पर केन्द्रित तीनों कविताएँ हों या "नर्मदा की भोर", ये ऐसी ही प्राणवान कविताएँ हैं—

" माथे पर सूरज के आते ही
पहाड़ों के पावों मे
सिमट चली छाँव,
धूप की लहरो में
तैर उठे पर्वतीय गाँव
जुट गया सूरज स्वर्ण किरण बोने"
(सतपुड़ा-दोपहर)

इन या ऐसी कविताओ के बावजूद प्रेमशंकर रघुवंशी की कविता की प्रकृति और इनका रचाव वक्तव्य के निकट है। एक वर्ग है, जो मानता है कि कविता पहले एक वक्तव्य होती है। बहस इस मुद्दे पर भी हो सकती है। वक्तव्य को कविता की शक्ल देना क्या जरूरी है? और यह भी कि वक्तव्य के सपाट चरित्र के अनुरूप ढलकर कविता, कितनी कविता रह पाती है? यदि कविता और वक्तव्य में कोई तात्विक भेद नही है तो क्या हर वक्तव्य को कविता माना जा सकता है? और वे जो वक्तव्य नही है या हो पाती वे कविताएँ क्या कविताएं नही है?

प्रेमशंकर रघुवंशी के अपने वैचारिक आग्रह और वैचारिक प्रतिबद्धताएँ स्पष्ट है। (यो भी विचारहीन लेखन हो भी नही सकता है, यह मानना कठिन ही है।) पर "सतपुड़ा पर तीन कविताएँ" नर्मदा की भोर", एक "भरापूरा ऋतुराज", "खुली धूप मे", "घडे बनाते कुम्हार के ख्यालों में", "भास्वरता", "वह नौ कविताएँ", "गाँव की ग्रीष्म'', "नदी-चार कविताएँ", "प्रेम" कुछ ऐसी ही कविताएँ हैं जिन पर वैचारिकता का अतिरिक्त दबाव नही है। अतिरिक्त दबाव चाहे विचारगत हो अथवा कलागत; रचना की नैसंर्गिता में हस्तक्षेप ही करते हैं और रचना को असहज बना देते है। कविता का असर कविता की प्रकृति के अनुरूप ही हो, पाठक की यह माँग क्या अनुचित है?

चार खण्डों में व्याप्त "तुम पूरी पृथ्वी हो कविता" की कविताओं में वृत्त-खण्ड की कविताएँ एक ही भाव के विस्तार में अनेक कविताओं का खण्ड है। प्रेम पर अनेक कविताएँ हो सकती हैं। एक ही तिथि में अनेक कविताओं का सृजन भी सम्भव है, पर रचना करना और रचना के चयन का विवेक अलग-अलग पक्ष है। कवि ने इस खण्ड की कविताओं के चयन मे कुछ और सावधानी बरती होती, तो यह खण्ड और अधिक प्रभावशाली हो सकता था। खैर सम्भावना पर बात न तो होती है और न ही होनी चाहिए।

कुल मिलाकर-"तुम पूरी पृथ्वी हो कविता" की सारी कविताएँ इस बात की स्पष्ट घोषणा है कि प्रेमशंकर रघुवंशी चाहे-"लियोनोव के प्रति" कविता लिखें या हौंसले भरती है कविता "अणु बम के बादल" लिखें या "छोड़ दिये जाते बेगुनाह" वे रहेंगे हमेशा नारक्या दाजी के साथ और साथ होगी उनकी रचनात्मक ऊर्जा भी-

"बचपन में रेवड़ के पीछे-पीछे
धूल धूसरित होती
तुम्बी का पानी पीती
पुटरिया से चटनी रोटी खाती
सुबह से शाम तक
दाजी के संग साथ रहती मेरी कविता
दोजख व दीन की परवाह किये बगैर
घूम रही है अपनी जमीन पर
अब भी।"

अपने जनपद के प्रति ऐसी प्रतिश्रुति ही कविता को अर्थवान बनाती है और कवि को महत्त्वपूर्ण। अस्तु –

प्रेमशंकर रघुवंशी-राजगढ़, सिवनी मालवा, हरदा, चतरखेड़ा, तोरनिया, विदिशा, जमानी, बैंगनिया के परिवेश और परिस्थितियों की निर्मिति हैं और इसी निर्मिति की उपलब्धि है उनकी सतत् रचनाशीलता। कवि की अपने जनपदों के प्रति यह आसक्ति ही उन्हे विशिष्ट बनाती है और अपनी भूमि से सारी दुनिया को देखना भी प्रमाणिक लगता है।

शब्दों के प्रति घटते आकर्षण और एक लापरवाह समय में यदि कोई प्रेमशंकर रघुवंशी के इस संकलन से गुजरेगा, तो वह एक तृप्ति के साथ-साथ कई जरूरी सवालों से भी रू-ब-रू जरूर होगा।

तुम पूरी पृथ्वी हो (कविता) प्रेमशंकर रघुवंशी / परिमल प्रकाशन अल्लाचख, इलाहाबाद 211006 / मूल्य : दो सौ रुपये / प्रथम संस्करण : 1995

यादों एवं प्रकृति का तादात्म्य

शशिजा ओझा

श्रीमती शीला गुजराल ने जिस तरह से प्रकृति को देखा और अनुभव किया उसका निरूपण उन्होने 'बर्फ के चेहरे' मे किया है। संभवतः उनकी इन कृतियो का धरातल उनके प्रवासी अनुभवो सरीखा ही है। 'प्रकृति प्रयेसी' के रूप मे अपने आत्म कथ्य में वह इस बात को स्वीकारती भी है - 'उनके मन मस्तिष्क पर मास्को की बर्फ का चेहरा अभी तक धुंधलाया नही है।' पुस्तक मे शीला गुजराल की सौ काव्य कृतिया संकलित हैं। उन्होने प्रकृति के कार्य-व्यापार को गहराई से तलाशने का प्रयास किया है। 'हिमपात' में यह अच्छे स्वरूप मे निखर कर आया है। सारी शाम/धीमी-धीमी बौछार/लोरी की तरह थपथपाती/निदिया बुलाती रही/सांझ ढले/श्वेत चादर मे लपेट/लौट गई/

हिमपात से पूर्व वर्षा की स्थिति को उन्होने लोरी के थाप के सदृश चित्रित कर प्रकृति और जीव के मध्य वात्सल्य भावना के संबंध को उजागर किया है। घर के आंगने ने हिमपात को किस सरल और आनन्दमय स्वरूप मे ग्रहण किया: एक सुबह मैंने देखा/नटखट आंगन/भीगी बिल्ली की तरह/श्वेत ओढ़नी की/कई परतों में लिपटा/बेसुध पड़ा था/मीठी नीद मे मगन/सपनों की दुनिया में खोया/न जाने कब तक सोया रहा।

'सीलसवर्ग : एक दृश्य' में उन्होंने चित्रात्मक वर्णन के माध्यम से अपना भाव बड़े स्पष्ट रूप मे प्रकट किए हैं - जो सुंदर बन पड़े हैं। विशेषकर कविता का उत्तरार्ध इन सुदर चीजों से पाठक को वशीभूत कर लेता है, और पहाडियॉ जिन्हे लबे, ऊंचे देवदारो की कतार ने आबद्ध कर रखा था; कही भावावेश मे झील में न कूद पड़ें - एक ऐसा बिम्ब

आपके सामने प्रदर्शित करता है जहां आप इन पंक्तियो को पढ़ने के बाद खुद को बिना मुस्कराए नही रख पाएँगे, देखिए, दाई ओर बर्फ में लिपट पहाडियां, गर्व से इठला रही थीं, सूरज बाला स्नेह से उन्हे सहला रही थी, असख्य संतरियों की कतार - लंबे देवदार, उन्हें थामे खड़े थे-कही भावावेश में आकर, पहाड़िया झील में न कूद जाएँ। 'हत्याकांड-2' 'हत्यारा' 'साधक', 'आभास', 'उषा-प्रत्यूषा', 'पीले-पत्ते', 'तुम कौन थे', 'संजीवनी', 'संजीवनी-2', 'करिश्मा', 'अतिम-यात्रा', जैसी कविताए बेहतर बन पडी है। संपूर्ण कविताए पढने के बाद ऐसा लगता है कि यह आवेगपूर्ण एंद्रिक मॉसलता कतिपय कविताओ को छोड़ लगभग सभी मे विद्यमान है और कई-कई स्थानो पर उसमे दिव्यता परिलक्षित होने से रह जाती है। मंदिर, मस्त पवन, पत्तियो की ओढनी को पीछे धकेलता, फूलो के लंहगो की कालर उधाडता, नटखट नृत्य भंगिमा दिखाता, कपट मुस्कान से पंखुडियो का हृदय फंसा, चुपके से रोशन दान की राह, उन्हे बैठक मे ले आया, वहां घंटों जी-भर मौज मना, श्लथ प्रमेकाओ को वही सुला, रातों रात व्यभिचारी पवन, दूसरे शिकार की खोज मे निकल पडा, सुबह किवाड़ खोलते ही मैने देखा, चारो ओर फैला, शव अंबार (हत्याकांड-से)

इस तरह के कुछ और भी उदाहरण है, जिनमे दिव्यता के स्थान पर आवेग पूर्ण एन्द्रिक मांसलता ही हावी है। चूंकि ये कविताएं एक लंबे अरसे में लिखी गई होंगी यही कारण है कि कुछ बिम्बो की एक से अधिक स्थान पर लगभग शब्दशः पुनरावृत्त हुई। है। इसमें, सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है 'शव-अंबार', अमन का दरवेश, 'दरवेश', 'धरा गर्भ, में छिपा सहस्र-जिह्व देव', 'पद घुंघरू बांध नाचती मीरा का मार्मिक नाद'। इत्यादि का प्रयोग भी एकाधिक बार हुआ है। सकलन में चयन के समय इनसे बचा जा सकता था। मनुष्य जब-जब बेचैन हुआ है - प्रकृति की शरण मे पहुचा है। वह उसकी सहचरी बनी है, उसने उसे मातृ-सुख प्रदान किया है तो कई स्थानों पर मार्ग दर्शक भी बनी है, वह। आदि शंकर का शून्य-पंच तत्त्वों को आत्मसात कर लेता है - प्रकृति इनके प्रमुख अवयव में से है। प्रकृति का ऐसा पायदान है, अध्यात्म जिसके सहारे उस सर्वशक्तिमान के अस्तित्व को तलाशता है। पूरे संकलन में हिम, पर्वत, देवदार, आकाश गंगा, नदी, नाले और भानुदेव का जिक्र है। किन्तु यह जिक्र उनके स्थूल क्रिया व्यापारों के अन्वेषण तक ही रूक गया है। संभवतः 'बर्फ के चेहरे' का अगला उस अन्तिम यात्रा की ओर ले जाएगा जिसे सत्य की खोज, ईश्वर की प्राप्ति, निर्वाण इत्यादि के नाम से जाना जाता है। 'प्रकृति-प्रेयसी' में एक पंक्ति 'नयनों की डोरी से आग बरसाती हुई भी कोई कम 'आकर्षित'नही है। कई स्थानो पर द्वन्द्वात्मक शब्दों के मध्य हाइफन नही प्रयोग में लाया गया, वही विराम के न प्रयोग करने की त्रुटि भी है यथा 'सागर क्रदन' कविता में 'नन्हें-मुन्ने, नर-नारी किसी ने आज' नन्हें मुन्ने के बाद अनिवार्यतः विराम चिह्न लगाना था, शायद ऐसा प्रूफ दोष की

वजन से हुआ होगा। कुल मिलाकर *'बर्फ के चेहरे'* एक प्रौढ़ होती कविता की पूर्वगामी कृति सी है। श्रीमती शीला गुजराल से साहित्य जगत, विशेष रूप में हिंदी काव्य जगत् को काफी उम्मीदे हैं। □

बर्फ के चेहरे/शीला गुजराल / भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली/ प्रथम संस्करण : 1997/ पृष्ठ संख्या : 80 / मूल्य : 65/- रुपये

उपलब्धियों भरा समय

लालित्य ललित

पिछले कुछ महीने साहित्य जगत मे हलचल भरे रहे । कही विजय गान, कही विदाई कही नई किताबो की चर्चा या फिर किसी गोष्ठी में धुंआधार चर्चा । अक्सर दैनिक समाचार पत्रो व मासिक पत्रिकाओ मे इन दिनो जो आया उससे संतोष तो नही हुआ । पर ऐसा भी नही कह सकते कि चुप्पी छाई रही । बेशक कविता-कहानी या नाटक पर चर्चा कम हुई मगर जो हुई वह सार्थक थी । नेशनल बुक ट्रस्ट, साहित्य अकादमी, प्रकाशन विभाग, वाणी प्रकाशन, किताब घर ने अपने नए प्रकाशन से पाठकों को अवगत कराएं । अगस्त में आयोजित तीसरा दिल्ली पुस्तक मेला भी इस बार पाठको की अपेक्षा में खरा उतरा वही नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा राजधानी दिल्ली के तमाम सरकार व पब्लिक स्कूलों के अलावा देश भर में राष्ट्रीय पुस्तक मेले सराहे गये । प्रकाशक खुश नजर आये और पाठक उत्साहित ।

उपलब्धियो के लिहाज से यह वर्ष महिलाओं के लिए काफी खुशगवार रहा । महाश्वेता देवी को मिला ज्ञानपीठ पुरस्कार और सुश्री अरूंधती राय को उनके पहले उपन्यास 'गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' पर बुकर पुरस्कार । मिस यूनिवर्स बनी डायना हेडैन ।

अब बात करते हैं राजधानी की साहित्यिक गतिविधियों की । साहित्यिक संस्था 'डायलाग' हमेशा अपने आयोजन में शुरू से सक्रिय रही है । इसके पीछे है सक्रिय कार्यकर्त्ता कवि-इंजीनियर विनोश शर्मा । कार्यक्रम था 'संवाद' का । उपस्थि थे भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिह, प्रख्यात कथाकार श्री अमर गोस्वामी, प्रतिष्ठित कवि श्री अशोक वाजपेयी, पद्मा सचदेव, दर्जन भर सक्रिय रचनाकार । माहौल जम गया तब जब उर्दू और कश्मीरी में फारुख साहब ने काव्य पाठ किया । हंसराज कालेज में

आयोजित प्रख्यात व्यंग्यकार श्री लाल शुक्ल के नाटक 'रागदरबारी' पर केंद्रित विचार गोष्ठी में सुपरिचित व्यंग्यकार डॉ० हरीश नवल ने कहा कि व्यंग्य उपन्यास विद्या में लिखी 'रागदरबारी' एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है। गोष्ठी मे बुद्धिजीवियो की उपस्थिति हैरतअंगेज थी।

इंडो रसियन लिटरेरी क्लब द्वारा आयोजित किताबघर से प्रकाशित कथाकार हरिसुमन बिष्ट के कहानी संग्रह 'मछरंगा' पर चर्चा की गई। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि कश्मीरी और हिन्दी के जाने-माने कथाकार डॉ० हरिकृष्ण कौल थे। अनेक वक्ताओ ने संग्रह पर अपने विचार व्यक्त किए।

सदा चर्चा में सक्रिय 'हंस' पत्रिका के सपादक श्री राजेंद्र यादव को प्रसार भारती बोर्ड का सदस्य मनोनीत किया गया है।

दिल्ली साहित्यकार मंच द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम मे कवि श्री महाराज कृष्ण राव की दो पुस्तकों 'अफसरशाही बेनकाब' व 'चढ़ते पानी से बाखबर' का लोकार्पण प्रख्यात कवि डॉ० केदार नाथ सिह ने किया। इस अवसर पर डॉ० गंगाप्रसाद विमल ने कहाः 'श्री काव की ये कविताएं सादगी, सरलता के चमत्कारी मुहावरे की कविताएं हैं। अन्य वक्ताओं मे डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल व युवा आलोचक डा. रमेश ऋषिकल्प प्रमुख थे।

'आस्था प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित एक साथ चार कविता संग्रहो का लोकार्पण किया गया। पुस्तकें थी डॉ. नरेंद्र मोहन की 'एक सुलगती खामोशी', मोहन सपरा की 'बरगद को कटते हुए देखना', प्रताप सहगल की 'इस तरह से' तथा तीन कवियो का संयुक्त संग्रह 'अलग-अलग कितने'। यह पहली बार ऐसा हुआ कि इस आयोजन मे राजधानी के सक्रिय हस्ताक्षर मौजूद थे।

पुष्टि मार्ग के सिद्धान्तों पर केद्रित 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' विषयक आराधना चौधरी द्वारा लिखित उपन्यास महामहिम राष्ट्रपति को दिया गया। पुस्तक की विषय-वस्तु 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और संत तुलसीदास के जन्म स्थान सोरो से प्राप्त 'राम चरितमानस' की हस्तलिखित प्रति से प्रेरित है।

हिदी भवन द्वारा आयोजित 'राष्ट्र भाषा हिन्दीः अपेक्षाएं और अपेक्षाएं' विषय पर चर्चा गोष्ठी में सर्वश्री गोपाल प्रसाद व्यास, डॉ. बलदेव वंशी, कृष्णदत्त पालीवाल मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित थे। वही गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. नगेंद्र ने कहा- आजादी के पचास वर्षों में हिंदी जितनी बढ़नी चाहिए थी, उतनी नही बढ पाई और जो फासला उसे तय करना था उसका बीस प्रतिशत भी तय नही कर पाई। परंतु ध्यान देने की बात यह है कि हिंदी में ज्ञान का साहित्य, कथा-साहित्य, पत्रकारिता आदि का विकास भी साथ-साथ हुआ है।

प्रेमचंद जयंती पर हर वर्ष 'हंस' पत्रिका एक दिवसीय संगोष्ठी आयोजित करती है। इस वर्ष की संगोष्ठी का विषय था 'स्वतंत्रता की अवधारणा और परिभाषाएं' इस अवसर

पर प्रख्यात समाज विज्ञानी प्रो० पी.सी. जोशी का कहना थाः कि हर पीढ़ी को यह अधिकार है कि वह अपने लिए स्वतंत्रता की परिभाषा तय करें।" गोष्ठी में प्रमुख वक्ताओं मे उपस्थित थे श्री सुधीश पचौरी, पंकज बिष्ट, मणिमाला और ध्योराज सिह बैचेन।

प्रतिष्ठित व्यंग्यकार यशवंत की पुस्तक 'अमिताभ का अ' का लोकार्पण माधुरी के पूर्व और समानान्तर कोश के संपादक श्री अरविन्द कुमार ने किया। पुस्तक पर शुभाशीष गणमान्य साहित्यकारो ने प्रदान किए।

व्यक्ति समय की आवाज है और आवाज ही वजूद का आईना। राजधानी मे 'परिचय साहित्य परिषद द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम मे कवयित्री अलका सिन्हा के काव्य संग्रह 'काल की कोख' का लोकार्पण वरिष्ठ साहित्यकार डॉ० रामदरश मिश्र ने किया।

भारतीय सास्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक पत्रिका 'गगनाञ्चल' का लोकार्पण भारत के उपराष्ट्रपति श्री कृष्णकात जी ने किया। 432 पृष्ठों की इस पत्रिका मे पिछले पचास वर्षो मे साहित्य, कला, भाषा, संस्कृति, दर्शन, संगीत की दुनिया में घटी महत्त्वपूर्ण घटनाओ को केद्रित किया है। इस अवसर पर उपराष्ट्रपति ने 'गगनाञ्चल' के विशेषांक की सराहना की और कहा 'यह अपने आप मे अद्वितीय अंक है जिसमे हर विषय पर बखूबी जानकारी दी गयी है।' भारतीय सांस्कृतिक सबंध परिषद् के महानिदेशक श्री हिमाचल सोम ने कहा 'किसी भी देश की कला और सस्कृति तभी विकसित होती है, जब शांति का माहौल रहता है। उन्होंने कहा कि पिछले पचास वर्षो मे हमने कला, साहित्य आदि क्षेत्रों मे अभूतपूर्व विकास किया है। विशेषांक के संपादक श्री कन्हैयालाल नंदन ने कहा कि आजादी के बाद जिस तेजी से समाज में विसगतिया बढी, उसका असर रचनाकारो की सोच पर भी पडा। आज सिर्फ साहित्य ही नही बल्कि कला, संस्कृति, दर्शन, शिक्षा, फिल्म संगीत आदि की दुनिया मे जबरदस्त बदलाव आया है। 'गगनाञ्चल' के सहयोगी सपादक डॉ. प्रेम जनमेजय ने कहा कि देश के हितो के सामने अपने स्वार्थ के अंधेपन से बड़ी गफलत कोई नही होती। स्वार्थपन का नंगा नाच राष्ट्र का सबसे बड़ा कलंक है और आजादी की पचासवी वर्षगांठ में इस कलंक की वीभत्सता को बंद करने का संकल्प लेना चाहिए।

कालजयी साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञ स्व. डॉ. शंकर दयाल सिह के साठवें जन्मदिन के उपलक्ष्य में आयोजित प्रथम शंकर व्याख्यानमाला और स्मृति ग्रंथ 'इंद्रधनुषी यादें' का लोकार्पण उपराष्ट्रपति श्री कृष्णकांत ने किया। इस अवसर पर कार्यक्रम की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध कवि डॉ० केदारनाथ सिह ने की। अनेक वक्ताओ ने कार्यक्रम मे विचार व्यक्त किए।

भारत सबका मन मोह लेता है यह कहा जापान से आये हिदी भाषा सीख रहे

प्रतिनिधि मंडल ने। भारत की यात्रा पर आए तेरह छात्रों और दो शिक्षकों ने हिंदी के दो नाटकों को मंचित भी किया। हिदी नाटकों को जापानी अभिनेता से मंचित होता देख भारतीयों ने आश्चर्य प्रकट किया वही जापानी छात्रों ने भारत में हिन्दी की उपेक्षा पर हैरानी जतायी। जापानी प्रतिनिधि मंडल में आए प्रोफेसर तोमिओ मिजोकामि जो जितनी अच्छी हिन्दी बोलते हैं उतनी ही अच्छी बांग्ला भी। उन्होंने कहा कि ओसाका विश्वविद्यालय लगभग 75 वर्षों से हिदी और अन्य विदेशी भाषाओं के पाठ्यक्रम चला रहा है। अपनी यात्रा के दौरान मुंबई में छात्रो ने कई नाट्य प्रस्तुतियां दी।

कबीर की आधुनिक प्रासंगिकता पर आयोजित एक परिचर्चा में नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के समसामयिक अध्ययन केद्र से संबंध सुश्री सरल झिगरन ने कहा कि कबीर ने सभी जीव-जंतुओ में एक परमात्मा को समान रूप से व्याप्त मानकर मनुष्य स्थित धर्म और जाति के भेदभाव का निराकरण किया। परिचर्चा मे अनेक वक्ताओ ने अपने विचार रखे।

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित स्व. धर्मवीर भारती के जन्मदिन पर एक सभा में पाठकों ने भारती जी की रचनाओं को सुनाया। इस सभा मे महिला व पुरुष साहित्यकारो की भागीदारी उल्लेखनीय रही।

हिदी के यशस्वी कथाकार जैनेन्द्र कुमार की 92 वी जयंती पर जैनेन्द्र स्मृति और साहित्य अकादमी के संयुक्त तत्वावधान मे स्वाधीनता का चरितार्थ विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित तीन पुस्तकों पर चर्चा की गई। पुस्तकें स्वाधीनता के बाद के समय के हिन्दी के तीन वरिष्ठ साहित्यकारों जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी पर लिखी गयी थी।

पुरस्कार

दिवंगत हास्य सम्राट काका हाथरसी की स्मृति में हिदी अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में श्री ओमप्रकाश आदित्य को 'काका हाथरसी' सम्मान से नवाजा गया है। सम्मान राशि में श्री आदित्य को 21 हजार रुपए, शाल, प्रशस्ति पत्र और प्रतीक चिहन् भेंट किया गया।

पिछले दिनों दिल्ली संस्कृत अकादमी ने प्रख्यात लेखक श्री रामेश बेदी को संस्कृत के प्रचार व प्रसार के लिए सम्मानित किया। श्री लालकृष्ण आडवाणी ने श्री बेदी को महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए ग्यारह हजार रुपए, प्रशस्ति पत्र व प्रतीक चिहन् प्रदान किया।

इस वर्ष श्रीमती रतन शर्मा स्मृति न्यास का तीसरा बाल-साहित्य पुरस्कार (1997)

पांवटा साहिब (हिमाचल प्रदेश) के श्री सैन्नीअशेष को उनके संग्रह 'अशेष बालकथाएं' के लिए दिया गया। उन्हें पुरस्कार स्वरूप बारह हजार रुपए, प्रतीक चिहन् व प्रशस्ति पत्र दिया गया।

महाश्वेता देवी

1996 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित महाश्वेता देवी को इस वर्ष मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। आदिवासी जनजातियों की समस्याओ और पीड़ाओं को अपनी कृतियों के जरिए दुनिया के सामने लाने वाली महाश्वेता देवी की पहली किताब 1956 में प्रकाशित हुई थी। 14 जनवरी, 1926 को ढाका में जन्मी महाश्वेता जी का जन्म सुसंस्कृत परिवार में हुआ। शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता और शांति-निकेतन में सपन्न हुयी। बी.ए. (आनर्स) कर कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य मे एम.ए. किया।

महाश्वेता जी के सुपुत्र श्री नवारुण भट्टाचार्य भी बांग्ला के श्रेष्ठ कवि और कथाकार है।

इस वर्ष का के.के. बिडला द्वारा स्थापित 'सरस्वती-सम्मान उर्दू के प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री शम्शुर्रहमान फारुखी को दिया गया। श्री फारुखी को यह सम्मान उनकी चार खण्डो मे प्रकाशित आलोचना पुस्तक 'शेर-ए-शोर अंग्रेज' के लिए दिया गया है। सम्मान राशि में पांच लाख रुपए, प्रशस्ति पत्र व प्रतीक चिहन् भेंट किया गया।

अरुंधती राय

भारतीय मूल की लेखिका सुश्री अरुंधती राय को उनके पहले उपन्यास 'द गाड ऑफ स्माल थिंग्स' के लिए ब्रिटेन का शीर्षस्थ साहित्यिक सम्मान 'बुकर' दिया गया है। ईसाई मां और बांग्ला पिता की संतान अरुंधती ने अपने उपन्यास मे दक्षिण भारत मे जातिगत विषमताओ से संघर्ष करने वाले जुड़वा बच्चों की कथा को उजागर किया है। सुश्री राय को अब तक विश्वभर से दस लाख पौंड की अग्रिम राशि रॉयल्टी के रूप में मिल चुकी है। 'बुकर सम्मान' के तहत सुश्री राय को तीस हजार डालर दिये जायेंगे। इससे पहले भारतीय मूल के जिन लेखको को यह पुरस्कार मिला है, उसमें प्रमुख है श्री बी. एस. नैपाल, रूथ झापाला (1975) और सलमान रुशदी (1987)।

नीलेश रघुवंशी

किताबघर द्वारा संचालित वर्ष 1996 के आर्य स्मृति सम्मान से युवा कवयित्री सुश्री नीलेश रघुवंशी को उनके काव्य संग्रह 'घर निकासी' के लिए सम्मानित किया गया है। पुरस्कार स्वरूप सुश्री रघुवंशी को ग्यारह हजार रुपए व प्रतीक चिहन् दिया गया।

लीलाधर जगूडी

प्रतिष्ठित कवि श्री लीलाधर जगूड़ी को उनके नये काव्य संग्रह 'अनुभव के आकाश में चांद' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए चुना गया है। जुलाई 1944 को टिहरी मे जन्में श्री जगूड़ी ने बनारस से इंटर किया है। इनका पहला कविता संग्रह 'शंखमुखी शिखरो पर' 1964 मे प्रकाशित हुआ था। श्री जगूडी को प्रतीक चिहन् व पच्चीस हजार रुपए की राशि भी प्रदान की जाएगी।

सतीश गुजराल

वर्ष 1997 का दयावती मोदी पुरस्कार प्रख्यात चित्रकार श्री सतीश गुजराल को दिया गया है। श्री सतीश गुजराल को पुरस्कार स्वरूप ढाई लाख रुपये, चांदी की एक प्रतिमा और प्रशस्ति पत्र भी दिया गया। कला जगत मे श्री गुजराल का अद्वितीय स्थान है।

निधन

धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती जी का जन्म 25 दिसबर को हुआ था। भारती जी ने साहित्य की हर विद्या में कलम चलायी और उन्हें सफलता भी मिली। पत्रकार की सजग और पैनी दृष्टि 'धर्मयुग' पत्रिका पर पडी तो अचानक ही पत्रिका एकाएक महत्त्वपूर्ण हो उठी। सपादक और साहित्यकार व एक हितैषी के रूप में भारती जी ने एक सीमा बनाये रखी। जरूरत पड़ने पर वह डांटने से भी नहीं चूके।

'धर्मयुग' मे उन्होने अपने पच्चीस वर्ष लगा दिये। साहित्यिक क्षेत्र मे उनके दबदबे की अक्सर चर्चा होती रहती, लेकिन वे चर्चाओ पर ध्यान देते थे। भारती जी ने 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'सूरज का सातवां घोड़ा', 'बंद गली का आखिरी मकान', 'गुल की बानो', 'ठडा लोहा' (कविता संग्रह) न जानें कितनी कृतियो से साहित्य में घिर आयी रिक्तता को पाट दिया था।

उन्होंने बच्चन से लेकर सुरेंद्र शर्मा मे कभी फर्क महसूस नही किया। वे सभी से समान भाव से मिलते थे। शायद यही वजह है कि वे सबके थे और सब उनके थे। साहित्य की धारा में रचे-बसे भारतीय आत्मा के भीतर एक गहरी उदासी छिपी थी जिसे उन्होने कभी जाहिर नही होने दिया। अनुशासन प्रिय भारती जी हर चिट्ठी का जवाब देते थे चाहे वह पंद्रह पैसे का पोस्टकार्ड हो या स्पीड-पोस्ट से आया कोई पत्र हो। वे मानते थे कि संवाद ही वह सतत् प्रक्रिया है जो पाठक और लेखक की निकटता बनाये रखता

है ।

आपातकालीन समय में उनकी लिखी कविता 'मुनादी' ने सही मायने मे हलजल कर दी थी । इलाहाबाद के बाद वे मुम्बई में आ गए और यही के होकर रह गए । भारती जी ने लगभग सात देशो की यात्रा की, मगर उन्होंने अपनी चीन यात्रा को ही यादगार माना । उन्होंने उस समय चीन यात्रा की जब भारत-चीन मैत्री सबंध ठीक न थे । 'ठेले पर हिमालय' निबंध संग्रह ने अपनी छाप छोडी । वही युवावस्था मे लिखा रोमानी उपन्यास 'गुनाहों का देवता' आज भी पढ़ने को हर युवा उत्सुक रहता है ।

13 सितंबर 1997 का दिन साहित्य जगत मे बिछोह का दिन था । उन्हे उस गाडी की टिकट मिली जो फिर लौट कर नही आती । भारती जी का चला जाना अपने आप मे हर कलेजे को साल गया ।

जनकविता से जुडे कवि स्वामी शरण स्वामी का देहात सक्षिप्त सी बीमारी के बाद हो गया । स्वामी जी ने कविता की कुछ पुस्तके पाठकों को दी । लबे समय तक वे दैनिक हिदुस्तान से जुड़े रहे ।

सुप्रसिद्ध पंजाबी साहित्य के लेखक प्रो. संत सिह शेखों का उनके पैतृक गाव दाखा (लुधियाना-पंजाब) मे देहांत हो गया । वे 89 वर्ष के थे । श्री शेखों को पंजाबी साहित्य का वट वृक्ष कहा जाता था ।

के. शिवराम कारंत

कन्नड साहित्य के युग-पुरुष के. शिवराम कारत का पिछले दिनो निधन हो गया । वे 95 वर्ष के थे । बहुमुखी प्रतिभा के धनी शिवराम कारंत ने 400 से अधिक पुस्तके लिखी थी । इनमे 45 उपन्यास, 31 नाटक तथा 231 अन्य साहित्यिक कृतियां शामिल है । उन्होंने दो विश्वकोषो का सपादन किया था ।

1958 मे श्री कारंत को साहित्य अकादेमी पुरस्कार और दो शतक बाद ज्ञानपीठ पुरस्कार से भी सम्मानित किए गया था । दस अक्टूबर 1902 को जन्मे श्री कारत पर्यावरण, साहित्य, कला और सगीत को लेकर हमेशा चिंतित रहे ।

श्री कारंत की उल्लेखनीय पुस्तकों मे 'राष्ट्रगीत सुधाकर' 'विचित्रकूट' 'यक्षगण बायालता' प्रमुख थी । उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'चोमन डूडी' पर फिल्म भी बनी ।

- ☐ आचार्य रामचद्र शुक्ल की परंपरा के हिदी के मूर्धन्य विद्वान आचार्य प० अयोध्या नाथ शर्मा का श्वास की बीमारी के कारण देहात हो गया । वे एक सौ एक वर्ष के थे । बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्रशुक्ल, प. अयोध्यासिह उपाध्याय, हरिऔध' व लाला भगवान दीन के सान्निध्य में साहित्य सेवा करने का सौभाग्य श्री शर्मा को प्राप्त हुआ ।

☐ हिन्दी के सुपरिचित लेखक तथा मार्क्सवादी विचारक सव्यसायी का कैंसर की लंबी बीमारी के बाद देहांत हो गया। श्री सव्यसायी आठवें दशक के चर्चित कवि थे। 'सुबह होने से पहले तक' इनका कविता संग्रह काफी चर्चित कृति थी। अपने जीवनकाल मे श्री सव्यसायी ने लगभग 28 पुस्तकें लिखी। वे साहित्यिक पत्रिका 'उत्तरार्द्ध' व 'उत्तरगाथा' के संपादक थे। ☐

रचनाकार

डॉ. खलिद बिन यूसुफ खाँ
प्रवक्ता, अलीगढ़, मुसलिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

कार्तिकेय कोहली
175, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

कृष्णदत्त पालीवाल
बी-54, शक्ति एपार्टमैंटस, सेक्टर-बी, रोहिणी, दिल्ली-110085

डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त
मंगलम्, सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर-471001

अमरेंद्र किशोर
ई-1820, जहागीर पुरी, दिल्ली-110033

दिनेशचंद्र अग्रवाल
8, कालेज फलैट्स, प्रदयुमन नगर सहारनपुर, 247001 (उ.प्र.)

रेणु गुप्ता
3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032

जी.ए. कुलकर्णी
द्वारा श्री रामदास भटकल, पापुलर प्रकाशन, 35 सी. पंडित मदन मोहन मालवीय मार्ग ताड़देव, मुंबई-400034

डॉ. राजम पिल्लै
रामकुंज रा. के. बैद्य मार्ग, दादर मुंबई-400058

रेखा बैजल
द्वारा प्रो. डॉ. सौ. उषा कुमार हर्षे, कैलास नगर, नांदेड़-431605

प्रो. डॉ. सौ. उषा कुमार हर्षे
हर्षे, कैलास नगर, नांदेड-431605 (महाराष्ट्र)

मार्टिन वैक्स
Chief Editor . AMBIT 17, Priory Gar den, Highate London-N-6.

अनीता थापर
Wolfoson College, CAMBRIDGE UK.

सुरेश उनियाल
बी-8, प्रेस अपार्टमेट्स 23, इंद्रप्रस्थ एक्सटेंशन, दिल्ली-1100092

नरेन्द्र मौर्य
हंडिया रोड हरदा (म.प्र.)

पृथ्वीराज मोंगा
378-सी, पाकेट जे एंड के, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095

पूरबी पंवार
113, शाहपुरजट, नई दिल्ली-110049

निर्मला सिंह
185 ए, सिविल लाइन्स, बरेली-243001 (उ.प्र.)

सिद्धनाथ सागर
इडियन, जनरल हास्पिटल, बिहिया-802152

नरेंद्र मोहन
239–डी. एम.आई.जी. फ्लैट्स राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

विष्णु सक्सेना
बी–43, एच. एम. टी. कालोनी, पिजौर-134101

राजेन्द्र उपाध्याय
62 ब, लॉ अपार्टमेंट्स, ए.जी.सी.आर. एनक्लेव, दिल्ली-110092

उपेन्द्र कुमार
189 साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली-110002

संगीता गुप्ता
सी-7, एम.सी.डी. फ्लैट्स, आर ब्लॉक, ग्रेटर कैलाश-I, नई दिल्ली-110048

सुरेश धींगड़ा
99 कादम्बरी, 19/IX रोहिणी, दिल्ली-110085

सुरेश ऋतुपर्ण
17 सी, विश्वविद्यालय मार्ग, दिल्ली विश्वविद्यालय क्षेत्र, दिल्ली—110007

शशि सहगल
एफ-101 राजौरी गार्डन, नई दिल्ली—110027

कुमार रवींद्र
क्षितिज, 310 अर्बन एस्टेट-2, हिसार-125005

किशोर सिन्हा
द्वारा एन.टी.पी.सी इस्टीच्यूशनल एरिया, लोदी एस्टेट, नई दिल्ली—110003

मधु नौटियाल
राजभाषा अधिकारी, एन.टी.पी.सी. इस्टीच्यूशनल एरिया, लोदी एस्टेट, नई दिल्ली—110003

कपिला वात्स्यायन
डी-1/23, सत्य मार्ग, नई दिल्ली-110021

मुकेश पचौरी
307, सतलज छात्रावास, जे.एन.यू. नई दिल्ली-110067

डॉ. सुमतीन्द्र नाडिग
द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016

पंकज चतुर्वेदी
सी-133, हनुमान रोड, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001

गिरीश पंकज
जी-31, नया पंचशील नगर, रायपुर-492001 (म.प्र.)

ईशान महेश
बी-324, प्रशान्त विहार, रोहिणी दिल्ली-110085

गोपाल राय

एच-40 ए, साकेत, नई दिल्ली-110017

वीरेन्द्र कुमार

डी-213, इला एपार्टमेंट्स बी-7, वसुंधरा, एनक्लेव, दिल्ली-1110096

डॉ. उषा ठाकुर

प्रो. हिन्दी विभाग त्रिभुवन, विश्वविद्यालय काठमाडू, नेपाल

अश्विनी कुमार दुबे

विद्या निकेतन स्कूल के पास, जांजगीर-495668

उल्फत मुखीबोवा

डिपार्टमेंट ऑफ ओरियंटल साउथ एशियन लेग्वेजिज ताशकंद स्टेट इंस्टिच्युट ऑफ ओरियंटल स्टडीज, ताशकद उज़बेकिस्तान-700047

रश्मि बजाज

154, विजय नगर, भिवानी (हरियाणा)

देव शंकर नवीन

नेशनल बुक ट्रस्ट ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016

प्रमोद त्रिवेदी

मन्वन्तर 205, सेठी नगर, उज्जैन-456010

शशिजा ओझा

97, सुन्दर ब्लॉक शकरपुर, दिल्ली-110092

लालित्य ललित

बी-3/43, शकुंतला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063